नेपाली क्रान्ति

इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार

आलोक रंजन

नेपाली क्रान्ति

इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार

बिगुल पुस्तिका–17

नेपाली क्रान्ति

इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार

आलोक रंजन

jkgqy Qkm.M'sku
लखनऊ

ISBN 978-93-80303-32-1

मूल्य : रु. 50.00

पहला संस्करण : जनवरी, 2010

प्रकाशक : राहुल फ़ाउण्डेशन
69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज,
लखनऊ–226 006 द्वारा प्रकाशित

आवरण : रामबाबू

टाइपसेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस–28, शक्तिनगर, लखनऊ

Nepali Kranti: Itihas, Vartmaan Paristithi aur Aage ke Raste Se Judi Kuchh Batein, Kuchh Vichar *by* ***Alok Ranjan***

अनुक्रम

भूमिका 7

नेपाल का कम्युनिस्ट आन्दोलन : एक संक्षिप्त इतिहास 11

नेकपा (मा) किस ओर? नेपाली क्रान्ति किस ओर? 54

अनुपूरक:
कोइराला वंश का पतन 63

नेपाली क्रान्ति : नये दौर की समस्याएँ और चुनौतियाँ, सम्भावनाएँ और दिशाएँ 67

नेपाली क्रान्ति किस ओर? नयी परिस्थितियाँ और पुराने सवाल 89

एकीकृत नेकपा (माओवादी) के संशोधनवादी विपथगमन के ख़तरे और नेपाली क्रान्ति का भविष्य : संकटों-समस्याओं-चुनौतियों के बारे में कुछ ज़रूरी बातें 95

परिशिष्ट
नेपाल के घटनाक्रम और कम्युनिस्ट आन्दोलन के लिए इसके मायने के बारे में 109

भूमिका

इस पुस्तिका में हम 'बिगुल' में मई, 2008 से लेकर जनवरी-फ़रवरी 2010 के अंक तक नेपाल के कम्युनिस्ट आन्दोलन और वहाँ जारी क्रान्तिकारी संघर्ष के बारे में लिखे गये आलोक रंजन के लेखों को कालक्रम से प्रकाशित कर रहे हैं।

भारत में और पूरी दुनिया में, ऐसे वाम बुद्धिजीवियों की कमी नहीं है जो अँधेरे में उम्मीदों का चिराग़ ढूँढ़ते हुए दुनिया के किसी कोने में भड़क उठने वाले क्रान्तिकारी संघर्ष के बारे में मनोगतवादी ढंग से अत्यधिक आशान्वित हो जाते हैं। उनका आशावाद तर्कविहीन, रूमानी आशावाद होता है। ऐसे लोग क्रान्ति के विचारधारात्मक प्रश्नों-समस्याओं और इतिहास की सूक्ष्म-सघन पड़ताल नहीं करते और तात्कालिक घटनाओं के आभासी प्रभाव को सारभूत यथार्थ मानकर "अहो-अहो" की भाषा में बातें करते हैं। फिर जब अपनी अन्दरूनी विचारधारात्मक कमज़ोरी या भटकाव के चलते देश-विशेष के क्रान्तिकारी संघर्ष में गतिरोध या पराजय का दौर आता है तो ऐसे लोग "हाय-हाय" करते हुए शोकसन्तप्त हो जाते हैं और फिर शीतनिद्रा में चले जाते हैं। सर्वहारा क्रान्ति एक सचेतन वैज्ञानिक क्रिया है और उसके भविष्य के बारे में विज्ञान की कसौटी पर उसे जाँचने-परखने के बाद ही जाना जा सकता है।

पाठक देख सकते हैं कि लेखक ने इन लेखों में शुरू से ही नेपाल की माओवादी पार्टी के उन भटकावों-विसंगतियों को इंगित किया है, जिनके नतीजे 2009 के अन्त और 2010 की शुरुआत तक काफ़ी स्पष्ट होकर सतह पर आ गये। नेपाली क्रान्ति की समस्याएँ गम्भीर हैं, लेकिन लेखक उसके भविष्य को अन्धकारमय मानने के निराशावादी निष्कर्षों तक नहीं पहुँचता। उसका मानना है कि दक्षिणपन्थी अवसरवाद की हावी प्रवृत्ति को निर्णायक विचारधारात्मक संघर्ष में शिकस्त देकर और मार्क्सवादी-लेनिनवादी-माओवादी क्रान्तिकारी लाइन पर नये सिरे से अपने को पुनगर्ठित करके ही एकीकृत नेकपा (माओवादी) नेपाली क्रान्ति को आगे बढ़ाने में नेतृत्वकारी भूमिका निभा सकती है। यदि वह ऐसा नहीं कर सकती तो फिलहाली तौर पर उसके बिखराव और क्रान्तिकारी प्रक्रिया के

विपयर्य की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। लेकिन आने वाले समय में बुर्जुआ जनवादी और संसदीय राजनीति में आकण्ठ धँसे सभी क़िस्म के संशोधनवादी वाम का 'एक्सपोज़र' काफ़ी तेज़ी से होगा। साथ ही, क्रान्तिकारी वाम के ध्रुवीकरण की प्रक्रिया नये सिरे से तेज़ हो जायेगी। नेपाली क्रान्ति की धारा कुछ समय के लिए बाधित या गतिरुद्ध हो सकती है, लेकिन उसका गला घोंट पाना अब मुमकिन नहीं है। वह धारा जीवित रहेगी और नये सिरे से गतिमान हो जायेगी। आगे जब कभी पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में क्रान्तिकारी संकट के विस्फोट की परिस्थितियाँ निर्मित होंगी, तो वह समय नेपाली क्रान्ति के भी तीव्र अग्रवर्ती विकास का होगा।

पुस्तिका के परिशिष्ट के रूप में हमने *रिवोल्यूशनरी कम्युनिस्ट पार्टी, यू.एस.ए.* के मुखपत्र *'रिवोल्यूशन'* (नं. 160, 28 अप्रैल 2009) में प्रकाशित एक लेख का अनुवाद भी छापा है। अक्टूबर 2005–नवम्बर 2008 के बीच आर.सी.पी., यू.एस.ए. ने नेकपा (माओवादी) के दक्षिणपन्थी भटकावों की आलोचना करते हुए तीन पत्र लिखे थे और इनके उत्तर में एक पत्र नेकपा (मा) ने भी लिखा था। ये पत्र आर.सी.पी., यू.एस.ए. की वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। 'रिवोल्यूशन' में प्रकाशित लेख उपरोक्त पत्र–व्यवहार की 'पोलेमिकल' अन्तर्वस्तु से संक्षेप में परिचित कराता है। चूँकि आर.सी.पी., यू.एस.ए. ने राज्यसत्ता और क्रान्ति के प्रश्न पर नेपाल की माओवादी पार्टी के, मार्क्स–लेनिन और माओ की अवस्थितियों से दक्षिण की ओर विचलन को कमोबेश सही ढंग से इंगित किया है और बुर्जुआ संसदीय राजनीति में उसके धँसते जाने की प्रवृत्ति को रेखांकित किया है, इसलिए इस लेख के अनुवाद को परिशिष्ट के तौर पर हमने इस पुस्तिका में शामिल किया है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी ज़रूरी है कि आर.सी.पी., यू.एस.ए. और उसके चेयरमैन *बॉब अवाकिएन* की सारी राजनीतिक अवस्थितियों से हमारी क़त्तई सहमति नहीं है। वे स्वयं वाम संकीर्णतावादी रुझान के (और बड़बोले "मुक्त चिन्तन" तथा 'कल्ट निर्माण' की प्रवृत्ति के भी) शिकार रहे हैं जो उनके अपने देश में जनसंघर्ष–विरत हरावलपन्थी आचरण के रूप में और तीसरी दुनिया के देशों में "वामपन्थी" दुस्साहसवाद की पैरोकारी के रूप में सामने आता रहा है। मिसाल के तौर पर, नेकपा (एकता केन्द्र) और नेपाल की उन सभी मा–ले पार्टियों को वे संशोधनवादी मानते हैं, जो माओवाद के बजाय माओ त्से–तुङ विचारधारा पदावली का इस्तेमाल करते हैं और जो 1996 में लोकयुद्ध की घोषणा के निर्णय से सहमत नहीं थे। आर.सी.पी., यू.एस.ए. और *'रिम' ('क्रान्तिकारी अन्तरराष्ट्रीयतावादी आन्दोलन'* नाम से आर.सी.पी., यू.एस.ए. की पहल पर एवं उसकी अगुवाई में गठित कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी

संगठनों का एक अन्तरराष्ट्रीय मंच) की "वाम" संकीर्णतावादी लाइन ने पेरू की माओवादी पार्टी की "वामपन्थी" संकीर्णतावादी सैन्यवादी लाइन को पुरज़ोर समर्थन दिया था और इस तरह वहाँ की क्रान्ति की पराजय के लिए किसी हद तक उसकी भूमिका भी ज़िम्मेदार थी। नेकपा (मा) "वामपन्थी" अवसरवाद से दोलन करते हुए जब दक्षिणपन्थी अवसरवाद की अवस्थिति पर जा पहुँची, तो आर.सी.पी., यू.एस.ए. ने उसकी आलोचना रखी। "वामपन्थी" संकीर्णतावादी अवस्थिति से रखी जाने के बावजूद इस आलोचना ने राज्य और क्रान्ति विषयक बुनियादी प्रस्थापनाओं की हिफ़ाज़त की है और नेपाल की माओवादी पार्टी के दक्षिणपन्थी भटकावों की सही शिनाख़्त की है, अतः उसे परिशिष्ट के तौर पर इस संकलन में शामिल कर लिया गया है।

नेपाल में जारी वर्ग संघर्ष से भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी असम्पृक्त नहीं रह सकते। यूँ तो अन्तरराष्ट्रीयतावादी होने के नाते कम्युनिस्ट, दुनिया में जहाँ कहीं भी मेहनतकश अपनी मुक्ति के लिए लड़ते हैं, उसका अध्ययन करते हैं और उसके प्रति एकजुटता ज़ाहिर करते हैं। लेकिन नेपाल तो हमारा पड़ोसी देश है और भारतीय उपमहाद्वीप का एक हिस्सा है। भारतीय उपमहाद्वीप के सभी देशों की जनता और उनकी मुक्ति संघर्षों की नियति परस्पर घनिष्ठता से जुड़ी हुई है। भारत और नेपाल में जारी वर्ग संघर्ष एक दूसरे को गहराई से प्रभावित करते हैं, इसलिए नेपाली क्रान्ति के सफ़रनामे से गहराई से परिचित होना भारत के जागरूक मुक्तिकामी जनों के लिए बेहद ज़रूरी है। साथ ही, नेपाल में क्रान्ति के रास्ते के प्रश्न पर संसदीय मार्ग बनाम क्रान्तिकारी मार्ग की जो बहस नये सिरे से उठ खड़ी हुई है, उसका सार्वभौमिक विचारधारात्मक महत्त्व है। इस बहस की विचारधारात्मक अन्तर्वस्तु को समझना भारत की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट क़तारों और सर्वहारा वर्ग के लिए भी उतना ही ज़रूरी है जितना नेपाल की पार्टी क़तारों और मेहनतकशों के लिए।

इस दृष्टिकोण से यह पुस्तिका पाठकों को बेहद उपयोगी लगेगी, इसका हमें पूरा भरोसा है।

— *राहुल फ़ाउण्डेशन*

20.1.2010

नेपाल का कम्युनिस्ट आन्दोलन : एक संक्षिप्त इतिहास

नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना 22 अप्रैल, 1949 को, निरंकुश दमनकारी राणाशाही के विरुद्ध व्यापक जनसंघर्षों के दौरान हुई।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद पूरी दुनिया में राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों की लहर तूफ़ानी गति से आगे बढ़ रही थी। दुनिया के अधिकांश उपनिवेशों–अर्द्धउपनिवेशों–नवउपनिवेशों में संघर्षरत मुक्ति–योद्धाओं की अग्रणी क़तारों में कम्युनिस्ट शामिल थे। फ़ासीवाद को परास्त करने में समाजवादी सोवियत संघ की प्रमुख भूमिका और बेमिसाल क़ुर्बानियों ने पूरी दुनिया की मुक्तिकामी जनता के बीच समाजवाद की व्यापक स्वीकार्यता स्थापित कर दी थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद समूचे पूर्वी यूरोप और पूर्वी जर्मनी में सर्वहारा वर्ग की अगुवाई में लोक जनवादी सत्ताएँ स्थापित हो चुकी थीं। चीनी नवजनवादी क्रान्ति की विजय आसन्न थी। वियतनाम, कोरिया, आदि देशों में कम्युनिस्ट नेतृत्व में राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष तेज़ी से विजय की दिशा में आगे बढ़ रहे थे। भारत में कम्युनिस्ट पार्टी अपनी विचारधारात्मक कमज़ोरियों और भटकावों के कारण और ठोस परिस्थितियों के सटीक आकलन के अभाव में राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथ में लेने में विफल रही थी, लेकिन 1947 के बाद तेभागा–तेलंगाना और पुनप्रा वायलार में कम्युनिस्ट नेतृत्व में किसान संघर्ष और मज़दूरों के व्यापक आन्दोलन जारी थे। रैडिकल मध्यवर्गीय शिक्षित नौजवानों का बड़ा हिस्सा उस समय कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रभाव में था।

नेकपा की स्थापना और प्रारम्भिक दौर : एक क्रान्तिकारी शुरुआत और फिर संशोधनवादी विचलन

यह पूरा विश्व परिवेश और पड़ोसी देश भारत की राजनीतिक सरगर्मियाँ नेपाल के शिक्षित मध्यवर्गीय युवाओं की एक छोटी–सी रैडिकल आबादी को गहराई से प्रभावित कर रही थीं। निरंकुश सामन्ती राणाशाही के विरुद्ध संघर्ष में

सक्रिय ऐसे ही कुछ युवाओं ने एक मार्क्सवादी अध्ययन–मण्डल संगठित किया। इनमें पुष्पलाल श्रेष्ठ, नरबहादुर कर्माचार्य, निरंजन गोविन्द वैद्य, और नारायण विलास जोशी की अग्रणी भूमिका थी। पार्टी के संस्थापकों में एक अन्य प्रमुख नाम मनमोहन अधिकारी का था जो 1938 में अध्ययन के लिए वाराणसी आये थे। वहाँ उन्होंने 'भारत छोड़ो आन्दोलन' (1942) में भाग लिया और जेल भी गये। इसके बाद मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर वे भारत की कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गये। नेपाल लौटने के बाद वे विराट नगर में ट्रेड यूनियन नेता के रूप में सक्रिय थे। 1949 में नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना में उन्होंने भी हिस्सा लिया।

स्थापना के समय, एक पैम्फ़लेट के रूप में वितरित अपनी पहली अपील में नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी ने नवजनवाद की आवश्यकता पर बल देते हुए उसके लिए सशस्त्र संघर्ष को अनिवार्य बताया तथा नवजनवादी क्रान्ति में कम्युनिस्ट पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका पर बल दिया। इसके बाद सितम्बर, 1949 में पार्टी का पहला घोषणापत्र प्रकाशित हुआ। घोषणापत्र में यह स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि "वर्तमान सामन्ती व्यवस्था और नेपाल पर साम्राज्यवादी–पूँजीवादी प्रभुत्व को उखाड़ फेंकने के लिए मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में मेहनतकश जनसमुदाय के जनवादी राज्य का निर्माण करना" नेपाली जनता की मुक्ति का रास्ता है। घोषणापत्र में कहा गया था कि सामन्ती व्यवस्था के विरुद्ध समझौताहीन संघर्ष करके ही नेपाली जनता मुक्ति हासिल कर सकती है और केवल कम्युनिस्ट पार्टी ही ऐसी क्रान्ति का नेतृत्व कर सकती है, इसलिए नेपाल की जनता को कम्युनिस्ट पार्टी के झण्डे तले लामबन्द हो जाना चाहिए। अपनी पहली अपील और पहले घोषणापत्र में ही पार्टी ने यह स्पष्ट कर दिया था कि साम्राज्यवाद और उसके पिछलग्गू नेपाली बुर्जुआ वर्ग के एजेण्ट क्रान्ति को गुमराह करने की भरपूर कोशिश करेंगे। उनका इशारा नेपाली कांग्रेस के नेताओं की ओर था। नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी ने राणाशाही–विरोधी संघर्ष में जमकर हिस्सा लिया, लेकिन संघर्ष का नेतृत्व नेपाली कांग्रेस के हाथों में होने के कारण यह क्रान्तिकारी दिशा में आगे नहीं बढ़ सका। 1951 के "दिल्ली समझौते" के बाद, राणाशाही को समाप्त करके राजा त्रिभुवन के शासन के अन्तर्गत बहुदलीय जनतन्त्र क़ायम हुआ, लेकिन इससे नेपाली समाज के बुनियादी आर्थिक–सामाजिक ढाँचे में कोई बदलाव नहीं आया। साम्राज्यवाद के अतिरिक्त भारतीय विस्तारवाद का प्रभाव (जिसका स्पष्ट प्रमाण नितान्त असमान शर्तों वाली 1950 की भारत–नेपाल सन्धि है और बाद में तो कई और ऐसी सन्धियाँ हुईं, साथ ही नेपाल पर थोपी गयी ब्रिटिशकालीन सन्धियों का अस्तित्व) भी बना रहा और गाँवों में सामन्ती

उत्पीड़न भी यथावत् जारी रहा। निरंकुश दमनकारी राणाशाही का अन्त और बहुदलीय जनतन्त्र की स्थापना एक अतिसीमित बुर्जुआ सुधार मात्र था, जिसका मूल लक्ष्य था नेपाली जनता की क्रान्तिकारी आकांक्षाओं पर ठण्डे पानी के छींटे मारना और क्रान्तिकारी संघर्ष के विकास की सम्भावनाओं को समाप्त कर देना। नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी ने "दिल्ली समझौते" को जनता के साथ धोखाधड़ी की संज्ञा दी। पार्टी का मानना था कि वास्तविक जनवाद शासक वर्ग द्वारा ऊपर से थोपा गया नहीं हो सकता बल्कि आम जनता की ताक़त, पहलक़दमी और फ़ैसले से ही स्थापित हो सकता है। उल्लेखनीय है कि वास्तविक जनवादी गणराज्य की स्थापना के लिए सार्विक मताधिकार के आधार पर संविधान सभा के चुनाव का रणनीतिक (स्ट्रैटेजिक) नारा नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी ने सबसे पहले 1950 में दिया था।

1951 में पार्टी का पहला महाधिवेशन हुआ जिसमें 'नवजनवाद के लिए नेपाली जनता का रास्ता' नामक दस्तावेज़ पारित किया गया। पार्टी के पहले महासचिव पुष्पलाल श्रेष्ठ चुने गये। इस दस्तावेज़ में सशस्त्र संघर्ष की अपरिहार्यता पर बल दिया गया था। कहा जा सकता है कि कई विचारधारात्मक-राजनीतिक प्रश्नों पर स्पष्टता के अभाव और अनुभवहीनता के बावजूद अपने प्रारम्भिक वर्षों में नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी क्रान्तिकारी दिशा में आगे बढ़ रही थी। इसके परिणामस्वरूप इसमें लगातार क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं की भरती हो रही थी, जनसंगठनों का विकास हो रहा था और इसके नेतृत्व में कई किसान संघर्ष और जनसंघर्ष आगे बढ़ रहे थे। कुछ एक वर्षों के भीतर ही पार्टी की राजनीतिक-सांगठनिक भूमिका राष्ट्रीय राजनीति में अहम हो गयी थी।

इसी बीच, 1951 में बहुदलीय संसदीय प्रणाली लागू हुई और कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अब पार्टी के सामने एक ओर तो यह चुनौती थी कि वह अपनी विचारधारात्मक राजनीतिक अवस्थिति पर अडिग रहते हुए अपने ऊपर प्रतिबन्ध के विरुद्ध संघर्ष करे, दूसरी ओर, प्रतिबन्ध जारी रहने की स्थिति में अपने क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के लिए उसे भूमिगत रहकर काम करने के लिए भी तैयार होना था। लेकिन पार्टी का अपरिपक्व, ग़ैर-सर्वहारा नेतृत्व इन दोनों चुनौतियों का सही ढंग से सामना नहीं कर सका। नतीजतन पार्टी में संविधानवादी, संसदवादी, सुधारवादी प्रवृत्तियों ने सिर उठाना शुरू किया। 1953 में, प्रतिबन्ध की परिस्थितियों में ही पार्टी की पहली कांग्रेस हुई। कांग्रेस ने नयी केन्द्रीय कमेटी का चुनाव किया जिसके महासचिव मनमोहन अधिकारी चुने गये। 1953 में ही नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन के एक अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्ति मोहन बिक्रम सिंह पार्टी में शामिल हुए। युवा मोहन बिक्रम सिंह ने नेपाली कांग्रेस

से अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत की थी और 1950–51 में जनवाद की स्थापना के लिए हुए जन–उभार में सक्रिय भागीदारी की थी। पार्टी की पहली कांग्रेस द्वारा राजतन्त्र के विरुद्ध अपनायी गयी अवस्थिति में स्पष्टता का अभाव था। पहली कांग्रेस ने पार्टी के पहले घोषणापत्र में सुधार करते हुए अपने क्रान्तिकारी कार्यक्रम को बदलने की दिशा में आगे क़दम बढ़ाया। यह प्रक्रिया 1955 में हुए पार्टी के दूसरे महाधिवेशन में भी जारी रही। पार्टी ने कार्यक्रम को ऐसा स्वरूप देने की शुरुआत की जो राजतन्त्रवाद और प्रतिक्रियावादी शक्तियों को भी स्वीकार्य हो। संशोधनवाद की दिशा में पार्टी का तेज़ी से बढ़ता झुकाव अब एकदम स्पष्ट हो चला था। 1955 में प्रतिक्रियावादियों की शर्तों के आगे झुकते हुए पार्टी महासचिव मनमोहन अधिकारी ने राजा को एक लिखित आवेदन दिया जिसमें शान्तिपूर्ण–आन्दोलन और संवैधानिक राजतन्त्र को मान्यता देने की शर्तों को स्वीकार किया गया था, ताकि पार्टी खुले तौर पर काम कर सके। पार्टी अब स्पष्टतः दक्षिणपन्थी अवसरवाद की दिशा में झुक चुकी थी। 1956 में पार्टी पर लगा प्रतिबन्ध हटा लिया गया।

संशोधनवादी भटकावों और उनके विरुद्ध संघर्षों का सिलसिला : गतिरोध और बिखराव के भँवर में नेकपा (1957–68)

1957 में मनमोहन अधिकारी जब चीन की यात्रा पर गये तो डॉ. केशरजंग रायमाझी पार्टी के कार्यकारी महासचिव बनाये गये। रायमाझी के नेतृत्वकाल में पार्टी नेतृत्व के भीतर राजतन्त्रवादी लाइन निर्णायक रूप से हावी हो गयी और संसदवादी प्रभाव तेज़ी से बढ़ा। 1956 में सोवियत संघ की पार्टी की बीसवीं कांग्रेस में ख्रुश्चेवी संशोधनवाद की विजय हो चुकी थी और शान्तिपूर्ण संक्रमण की लाइन पूरी दुनिया की पार्टियों के संशोधनवादियों का मन्त्र बन चुका था। नेपाल की पार्टी के भीतर भी संशोधनवाद को बढ़ावा देने में ख्रुश्चेवी लहर ने अहम भूमिका निभायी। संसद और चुनावों के आकर्षण में पार्टी नेतृत्व ने संविधान सभा की अपनी लाइन को भी तिलांजलि दे दी।

1957 में हुई पार्टी की दूसरी कांग्रेस में संसदवाद के विरुद्ध क़तारों की क्रान्तिकारी भावना मुखर होकर सामने आयी और उसके प्रभाव में एक बार फिर जनवादी गणराज्य की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया, लेकिन दूसरी ओर संशोधनवाद–विरोधी संघर्ष में क़तारों को दृढ़ नेतृत्व दे पाने वाले, सुस्पष्ट समझ वाले लोगों के अभाव में राजतन्त्रवादी डॉ. रायमाझी ही पार्टी के महासचिव चुने

गये। नतीजतन यह कांग्रेस सही और ग़लत लाइन के बीच विचारधारात्मक समझौते की कांग्रेस बनकर रह गयी। इसी कांग्रेस में मोहन बिक्रम सिंह को भी केन्द्रीय कमेटी में चुना गया था। रायमाझी के नेतृत्व में पार्टी दूसरी कांग्रेस में पारित लाइन को लागू कर ही नहीं सकती थी। उल्टे दक्षिणपन्थी दिशा में पार्टी को धकेलने की रायमाझी गुट की कोशिशें और तेज़ हो गयीं। दूसरी कांग्रेस के तुरन्त बाद से ही पार्टी में दो लाइनों का संघर्ष लगातार तीव्र से तीव्रतर होता जा रहा था। 1960 में राजा महेन्द्र ने एक सैनिक "तख़्तापलट" के जरिये सरकार और संसद को भंग कर दिया। संसदीय प्रणाली को समाप्त करके पंचायती प्रणाली लागू की गयी जिसके अन्तर्गत लगभग सभी अधिकार राजा के हाथों में केन्द्रित थे तथा पंचायत सदस्यों और मन्त्रिमण्डल का काम राजा की मर्ज़ी पर मुहर लगानेभर का रह गया था। रायमाझी गुट ने राजा के इस क़दम का स्वागत किया। इस गुट का ग़द्दार चरित्र अब एकदम सामने आ चुका था। केन्द्रीय कमेटी में पुष्पलाल, तुलसी लाल अमात्य, मोहन बिक्रम सिंह, आदि ने रायमाझी गुट का दृढ़तापूर्वक विरोध किया। फ़रवरी 1961 में दरभंगा में आयोजित पार्टी प्लेनम मुख्यतः नेतृत्व के एक हिस्से की राजतन्त्रवादी और दूसरे हिस्से की नेपाली कांग्रेस समर्थक लाइन के विरोध पर केन्द्रित था। प्लेनम ने एक बार फिर संविधान सभा के नारे को पारित किया। इसमें मोहन बिक्रम सिंह की एक अहम भूमिका थी। पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने, जिस पर रायमाझी गुट हावी था, दरभंगा प्लेनम के निर्णय को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। रायमाझी गुट ने यथाशीघ्र कांग्रेस बुलाने के प्लेनम के निर्णय को धता बताते हुए, और यहाँ तक कि पूरी केन्द्रीय कमेटी को दरकिनार करते हुए, बेशर्मी के साथ राजतन्त्रवादी गतिविधियाँ जारी रखीं। इस स्थिति में पार्टी की तीसरी कांग्रेस बुलाने के लिए एक 'इण्टर–ज़ोनल कोऑर्डिनेशन कमेटी' का गठन किया गया, जिसकी देखरेख में 1962 में पार्टी की तीसरी कांग्रेस हुई।

पार्टी की तीसरी कांग्रेस ने रायमाझी और उनके समर्थकों को निष्कासित करके राजतन्त्रवादी लाइन को पार्टी से उखाड़ फेंकने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी, लेकिन दूसरी ओर संशोधनवाद के साथ निर्णायक विच्छेद कर पाने में यह कांग्रेस विफल रही। पार्टी कांग्रेस में एक ऐसी धारा मौजूद थी जो राजा और पंचायती व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष में नेपाली कांग्रेस के प्रति समझौतावादी रुख अपनाने की पक्षधर थी। ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के प्रभाव में पार्टी ने "राष्ट्रीय जनवाद" का कार्यक्रम पारित किया। साथ ही, "सम्प्रभु संसद" का रणकौशलात्मक (टैक्टिकल) नारा पारित किया गया। बाद में पार्टी महासचिव तुलसी लाल अमात्य ने स्वयं यह कहकर जनवादी गणराज्य की भावना को

कमज़ोर कर दिया कि सम्प्रभु संसद का नारा गणराज्य का नारा नहीं था। तीसरी कांग्रेस के कार्यक्रम में राजतन्त्र के प्रति स्पष्टता का अभाव था और संशोधनवाद का प्रभाव मौजूद था। इसके कारण पार्टी क्रान्तिकारी सक्रियता के बजाय विश्रृंखलता और गतिरोध का शिकार हो गयी और उसकी एकता बस कहनेभर को ही रह गयी। पार्टी नेतृत्व के भीतर ग़ैर-सर्वहारा संस्कृति के प्रभाव ने समस्या को और अधिक गम्भीर बनाने का काम किया। नेतृत्वहीन और दिशाहीन पार्टी में विभाजन और बिखराव का सिलसिला शुरू हो गया।

लेकिन नेपाल में क्रान्ति जनता की प्रबल आकांक्षा थी और उसके वाहक कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन के गतिरोध को यूँ ही हाथ पर हाथ धरे बैठे देखते नहीं रह सकते थे। 1963 में ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के विरुद्ध चीन की पार्टी का विचारधारात्मक संघर्ष 'महान बहस' के रूप में पूरी दुनिया की कम्युनिस्ट क़तारों के सामने आया। 1966 में चीन की पार्टी और राज्य के भीतर मौजूद संशोधनवादियों के विरुद्ध पहले से ही जारी संघर्ष 'महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति' के रूप में फूट पड़ा। इन युगान्तरकारी घटनाओं ने पूरी दुनिया की कम्युनिस्ट क़तारों को संशोधनवाद के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष के लिए प्रेरित किया। नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी भी इससे अछूते नहीं रहे। एक क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण एवं गठन के लिए उन्हें नयी प्रेरणा और नयी दिशा मिली। 1968 से लेकर अगले एक दशक के दौरान एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के पुनर्गठन की दिशा में तीन महत्त्वपूर्ण प्रयास हुए। इनमें से पहला पुष्पलाल ग्रुप द्वारा किया गया प्रयास था। दूसरा प्रयास मोहन बिक्रम सिंह, निर्मल लामा आदि द्वारा गठित 'सेण्ट्रल न्यूक्लियस' ने किया। तीसरा प्रयास झापा किसान संघर्ष का नेतृत्व करने वाले युवा कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों द्वारा गठित तालमेल कमेटी ने किया। आगे हम इन तीनों प्रयासों की क्रमवार चर्चा करेंगे।

1968 के बाद – पार्टी पुनर्गठन की तीन महत्त्वपूर्ण कोशिशें

1968 में पार्टी को पुनस्संगठित करने के लिए पुष्पलाल ने एक महत्त्वपूर्ण पहल की और एक राष्ट्रीय महाधिवेशन का आयोजन किया। पुष्पलाल के नेतृत्व वाली इस पुनर्गठित नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी ने स्पष्ट शब्दों में ख्रुश्चेवी संशोधनवाद का विरोध किया, मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा को अपना मार्गदर्शक सिद्धान्त बनाया, राजतन्त्र का विरोध किया और नवजनवादी क्रान्ति के प्रति अपनी प्रतिबद्धता ज़ाहिर की, लेकिन नेपाली कांग्रेस-समर्थक राजनीति से यह अपने को मुक्त नहीं कर सकी। नेपाली कांग्रेस से अलग और स्वतन्त्र आन्दोलन के लिए कोई पहलक़दमी ले पाने में यह विफल रही और नेपाली

कांग्रेस–विरोधी संघर्ष को इसने पूरी तरह से दरकिनार कर दिया। नेपाली कांग्रेस द्वारा चलाये जा रहे आन्दोलन से अलग इसने किसी जुझारू संघर्ष को आगे बढ़ाने की कोई कोशिश नहीं की। नतीजतन, इस ग्रुप का जुझारू क्रान्तिकारी चरित्र भी क्षरित होने लगा, नेतृत्व में उदारवादी और संशोधनवादी रुझानें सिर उठाने लगीं और एक बार फिर अन्तर्पार्टी संघर्ष तीखा हो गया। अस्थायी तौर पर विभिन्न नये संगठनों के अस्तित्व में आने की प्रक्रिया में कुछ क्रान्तिकारी झापा आन्दोलन का सूत्रपात करने वाले तालमेल केन्द्र (कोऑर्डिनेशन सेण्टर) से जुड़ गये। कुछ अन्य उससे तब जुड़े जब तालमेल केन्द्र ने आगे चलकर नेकपा (माले) का गठन कर लिया। कुछ अन्य कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों ने क्रान्तिकारी संघर्ष विकसित करने के लिए पुष्पलाल के नेतृत्व वाली पार्टी से अलग होकर स्वतन्त्र संगठन बनाने की कोशिश शुरू की जिसका नेतृत्व रोहित कर रहे थे। पुष्पलाल की अन्य सुधारवादी नीतियों के अतिरिक्त रोहित का ग्रुप उनके द्वारा पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) में भारतीय सैन्य कार्रवाई के समर्थन का भी विरोध कर रहा था। रोहित ग्रुप ने 1978 में सर्वहारा क्रान्तिकारी संगठन, नेपाल और 'किसान समिति' के साथ मिलकर 'नेपाल वर्कर्स एण्ड पीजेण्ट्स ऑर्गनाइज़ेशन' (एन.डब्ल्यू.पी.ओ.) बनाया। 1981 में यह संगठन दो हिस्सों में विभाजित हो गया। रोहित के नेतृत्व वाले एन.डब्ल्यू.पी.ओ. (जिसने बाद में अपना नाम एन.डब्ल्यू.पी.पी. यानी 'नेपाल वर्कर्स एण्ड पीजेण्ट्स पार्टी' रख लिया) से अलग होकर हरे राम शर्मा के नेतृत्व वाले एन.डब्ल्यू.पी.ओ. ने 'प्रोलेतारियन कम्युनिस्ट लीग' नामक एक अन्य कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन के साथ, जो विपरीत परिस्थितियों में गठित होने के बाद क्रान्तिकारी दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रयासरत था, मिलकर 'सर्वहारा श्रमिक संगठन, नेपाल' (पी.एल.ओ., नेपाल) का गठन किया। पी.एल.ओ., नेपाल ने 1990 तक मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा की रोशनी में एक क्रान्तिकारी लाइन विकसित करने की ईमानदार कोशिशें कीं और फिर एक महत्त्वपूर्ण एकता–प्रक्रिया का भागीदार बन गया, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। पुष्पलाल के नेतृत्व वाली पार्टी से 1976 में एक महत्त्वपूर्ण छात्र नेता मदन कुमार भण्डारी भी अलग हो गये और 'मुक्ति मोर्चा समूह' का गठन किया। 'मुक्ति मोर्चा समूह' ने झापा आन्दोलन के बचे हुए लोगों द्वारा 1975 में गठित 'अखिल नेपाल कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी तालमेल कमेटी' (माले) के साथ मिलकर 1978 में नेकपा (माले) का गठन किया। इस धारा की विस्तृत चर्चा आगे की जायेगी। इन फूटों के बाद पुष्पलाल के नेतृत्व वाली पार्टी का प्रभाव काफ़ी कम हो गया। 1978 में पुष्पलाल की मृत्यु हो गयी। उनकी अन्त्येष्टि में उमड़ी भीड़ राजनीतिक विरोध–प्रदर्शन का एक माध्यम बन

गयी थी। पुष्पलाल नेपाल के कम्युनिस्ट आन्दोलन के संस्थापकों में सर्वप्रमुख थे। वे एक ईमानदार कम्युनिस्ट थे, विचार–सम्पन्न थे और सरल हृदय होने के नाते जनप्रिय थे, लेकिन उदारतावादी रुझानों और दक्षिणपन्थी विच्युतियों के कारण नेपाल के कम्युनिस्ट आन्दोलन को एकजुट, जुझारू और सही दिशा में गतिशील बना पाने में वे विफल रहे। फिर भी नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन उनके अवदानों की कभी उपेक्षा नहीं कर सकता। पुष्पलाल की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी सहाना प्रधान के नेतृत्व में पार्टी ने नेपाली कांग्रेस के साथ सहकार–सहयोग की नीतियों को ही लगातार आगे बढ़ाया, जिसकी तार्किक परिणति अन्ततः संशोधनवाद की धारा में जा मिलने के रूप में सामने आयी। इसकी चर्चा आगे की जायेगी।

1968–1978 के दशक में पार्टी को पुनस्संगठित करने की दूसरी महत्त्वपूर्ण पहल 'सेण्ट्रल न्यूक्लियस' ने की। अब हम संक्षेप में इसकी चर्चा करेंगे। मोहन बिक्रम सिंह और कुछ अन्य प्रमुख कम्युनिस्ट नेता सैनिक तख़्तापलट (1961) का विरोध करने के कारण 1962 से ही जेल में थे। 1971 में जेल से रिहाई के बाद मोहन बिक्रम सिंह ने निर्मल लामा, शम्भूराम श्रेष्ठ और मनमोहन अधिकारी के साथ मिलकर 'सेण्ट्रल न्यूक्लियस' का गठन किया। पुष्पलाल शुरू से ही इस प्रयास में शामिल नहीं हुए और जल्दी ही मनमोहन अधिकारी और शम्भूराम ने भी स्वयं को इस प्रक्रिया से अलग कर लिया। 'सेण्ट्रल न्यूक्लियस' ने नेकपा (पुष्पलाल गुट) के साथ एकता का लक्ष्य घोषित किया, लेकिन व्यवहार में ऐसा कोई क़दम नहीं उठाया गया। इसके विपरीत, 'सेण्ट्रल न्यूक्लियस' द्वारा 1974 में आयोजित पार्टी की चौथी कांग्रेस ने पुष्पलाल के उदारतावादी रुझान और, नेपाली कांग्रेस के प्रति समझौतावादी लाइन की दोस्ताना आलोचना करने और बहस चलाने के बजाय उन्हें "ग़द्दार" घोषित कर दिया। मोहन बिक्रम सिंह के इस संकीर्णतावादी रवैये से एकता–प्रक्रिया निश्चय ही प्रभावित हुई। "झापा आन्दोलन" में अति वामपन्थी भटकाव के शिकार क्रान्तिकारियों के प्रति भी 'सेण्ट्रल न्यूक्लियस' ने कमोबेश यही रुख अपनाया और उनके साथ सैद्धान्तिक वाद–विवाद चलाये बिना उनके ऊपर अन्तिम निर्णय सुनाकर असंवाद–सम्बन्ध बना लिया गया। यदि उनके प्रति सिद्धान्तनिष्ठ संघर्ष का रास्ता अपनाया जाता तो कम से कम उनके एक हिस्से को "वामपन्थी" दुस्साहसवादी भटकाव से और फिर दक्षिणपन्थी भटकाव के दूसरे छोर तक जाने से शायद बचाया जा सकता था। पर ऐसा नहीं हो सका। बावजूद इन ग़लतियों के, नेपाल के कम्युनिस्ट आन्दोलन में 'सेण्ट्रल न्यूक्लियस' ने महत्त्वपूर्ण सकारात्मक भूमिका निभायी, इसका प्रमाण यह तथ्य है कि आज जो भी नेपाल की क्रान्तिकारी वामधारा है, वह मुख्यतः 'सेण्ट्रल न्यूक्लियस' के प्रयासों से आगे बढ़ी एकता–प्रक्रिया की ही

उपज है। 1974 में 'सेण्ट्रल न्यूक्लियस' ने पार्टी की चौथी कांग्रेस बुलायी। चूँकि इस कांग्रेस को अन्य कम्युनिस्ट ग्रुपों ने मान्यता नहीं दी थी, इसलिए इस कांग्रेस के बाद मोहन बिक्रम सिंह के नेतृत्व वाली पार्टी को नेकपा (चौथी कांग्रेस) के नाम से जाना गया। चौथी कांग्रेस ने माओ त्से–तुङ विचारधारा का परचम उठाते हुए संशोधनवाद और राजतन्त्र–समर्थक नेपाली कांग्रेस समर्थक दक्षिणपन्थी राजनीति का विरोध किया। साथ ही, इसने कठमुल्लावाद, यान्त्रिक अंधानुकरण–वृत्ति और अतिवामपन्थी भटकाव का भी विरोध किया तथा सशस्त्र संघर्ष की अनिवार्यता और एक भूमिगत पार्टी–निर्माण पर ज़ोर दिया। इस तरह, पार्टी एकता की प्रक्रिया में संकीर्णतावादी रुख अपनाने के बावजूद नेकपा (चौथी कांग्रेस) उस समय सापेक्षतः सबसे सही क्रान्तिकारी धारा का प्रतिनिधित्व कर रही थी, क्योंकि "वामपन्थी" और दक्षिणपन्थी भटकावों के बारे में, मूल विचारधारात्मक प्रश्नों पर और लेनिनवादी सांगठनिक उसूलों के मामले में उसकी अवस्थिति मूलतः सही थी। इसलिए 1974 के बाद के कुछ वर्षों के दौरान इसने एक सकारात्मक एवं रचनात्मक भूमिका निभायी और महत्त्वपूर्ण प्रगति की। लेकिन पार्टी के न्यूनतम कार्यक्रम, प्रधान अन्तरविरोध, संयुक्त मोर्चा आदि प्रश्नों पर नेकपा (चौथी कांग्रेस) की अवस्थिति सही नहीं थी और सशस्त्र संघर्ष की प्रकृति के बारे में भी नेतृत्व की समझ स्पष्ट नहीं थी। फलतः कुछ वर्षों के तेज़ विकास और 1979 तक सबसे बड़ी क्रान्तिकारी वाम पार्टी बन जाने के बाद संगठन में आन्तरिक अन्तरविरोध बढ़ने लगे। मुख्यतः महासचिव मोहन बिक्रम सिंह की ग़ैर जनवादी, संकीर्णतावादी कार्य पद्धति के कारण ये अन्तरविरोध हल होने के बजाय 1985 में फूट की परिणति तक जा पहुँचे। इस विभाजन के केन्द्र में मुख्यतः मतभेद के तीन मुद्दे थे। पहला प्रधान अन्तरविरोध का सवाल था। मोहन बिक्रम सिंह ग्रुप का कहना था कि भारतीय विस्तारवाद और देशी प्रतिक्रियावाद – दोनों के साथ नेपाली जनता का अन्तरविरोध प्रधान अन्तरविरोध है। निर्मल लामा, प्रकाश आदि का कहना था कि बुनियादी अन्तरविरोध तो उक्त दोनों के साथ है, लेकिन प्रधान अन्तरविरोध देशी प्रतिक्रियावाद के साथ ही है। संयुक्त मोर्चे के सवाल पर मोहन बिक्रम सिंह का रुख वाम संकीर्णतावादी था। उनका मानना था कि स्थानीय स्तर पर तो संयुक्त मोर्चा बनाया जा सकता है, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर नहीं बनाया जा सकता। दूसरा धड़ा इस अवस्थिति का विरोध करते हुए विचारधारात्मक दृष्टि से अधिक सुसंगत अवस्थिति अपना रहा था। मतभेद का तीसरा मुद्दा चुनाव के इस्तेमाल को लेकर था। निर्मल लामा, प्रकाश आदि का धड़ा भण्डाफोड़ और क्रान्तिकारी प्रचार के लिए पंचायती चुनाव के भी इस्तेमाल का पक्षधर था जबकि मोहन बिक्रम सिंह का धड़ा इस

अवस्थिति का विरोध कर रहा था। इसके अतिरिक्त दोनों धड़ों के बीच इतिहास के मूल्यांकन (विशेषकर, नेपाल में 1950 में हुए बदलाव और नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास के कुछ मुद्दों) को लेकर भी मतभेद था। 1985 में निर्मल लामा, प्रकाश आदि का धड़ा मोहन बिक्रम सिंह के धड़े से अलग हो गया। पहले धड़े ने नेकपा (चौथी कांग्रेस) नाम से ही काम जारी रखा जबकि दूसरे ने अपना नाम नेकपा (मसाल) रखा। इसके कुछ ही समय बाद मोहन बिक्रम सिंह के नेतृत्व वाला नेकपा (मसाल) भी दो हिस्सों में विभाजित हो गया। संगठन का बड़ा हिस्सा किरण वैद्य, प्रचण्ड आदि के नेतृत्व में अलग हो गया और उसने नेकपा (मशाल) के नाम से काम करना शुरू कर दिया। इस फूट के समय 'मसाल' और 'मशाल' के बीच कोई बुनियादी विचारधारात्मक-राजनीतिक मतभेद नहीं था। मूल मुद्दा महासचिव मोहन बिक्रम सिंह की कार्यशैली और नेतृत्व दे पाने की उनकी विफलता से संगठन में पैदा होने वाले ठहराव को लेकर था। अलग होने के बाद नेकपा (मशाल) ने कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के एक अन्तरराष्ट्रीय मंच 'क्रान्तिकारी अन्तरराष्ट्रीयता- वादी आन्दोलन' (रिम) और विशेषकर आर.सी.पी., यू.एस.ए. व पेरू की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के विचारधारात्मक प्रभाव में 'माओ विचारधारा' की जगह माओवाद को अपना मार्गदर्शक सिद्धान्त घोषित किया। पहले 'मसाल' और 'मशाल' दोनों ही ग्रुप 'रिम' से जुड़े हुए थे। बाद में मोहन बिक्रम सिंह के नेतृत्व वाला 'मसाल' ग्रुप माओवाद के प्रश्न पर 'रिम' से अलग हो गया। अब पश्चदृष्टि से देखते हुए कहा जा सकता है कि 1985-90 के दौरान मुख्य अन्तरविरोध, संयुक्त मोर्चा, न्यूनतम कार्यक्रम आदि बुनियादी प्रश्नों पर नेकपा (चौथी कांग्रेस) की अवस्थिति सर्वाधिक सुसंगत थी जबकि नेकपा (मसाल) और नेकपा (मशाल) की अवस्थितियाँ विसंगतिपूर्ण रही थीं और समय-समय पर बदलती रही थीं। नेकपा (मशाल) के नेता पहले किरण थे, बाद में प्रचण्ड ने नेतृत्व की बागडोर सँभाली। 1990 के बाद नेकपा (मशाल) और नेकपा (चौथी कांग्रेस) की एकता और फिर फूट तथा उत्तरवर्ती घटनाक्रम की चर्चा हम आगे करेंगे।

1970 के दशक में पार्टी एकता की तीसरी महत्त्वपूर्ण पहल झापा संघर्ष से निकले कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों की युवा पीढ़ी ने की। झापा आन्दोलन 1971 में भारत के सीमावर्ती क्षेत्र में कुछ युवा कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों ने भारत के नक्सलबाड़ी किसान उभार के प्रभाव में शुरू किया था, पर शुरू से ही इस आन्दोलन में चारु मजूमदार की "वामपन्थी" दुस्साहसवादी लाइन लागू की गयी। मई 1971 में सी.पी. मैनाली, राधाकृष्ण मैनाली, मोहन चन्द्र अधिकारी आदि नेकपा की झापा ज़िला कमेटी के युवा नेताओं ने भूस्वामियों सहित अन्य

वर्गशत्रुओं की "सफ़ाये" की लाइन लागू करनी शुरू की। पार्टी ने इस कार्रवाई का विरोध किया और यह ग्रुप पार्टी से अलग हो गया। झापा आन्दोलन ज़बरदस्त दमन के द्वारा कुचल दिया गया लेकिन यह ग्रुप झापा के किसानों के बीच भूमिगत रूप से सक्रिय रहा। 1975 में इसी ग्रुप की पहल पर 'अखिल नेपाल कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी तालमल कमेटी' (माले) का गठन हुआ जिसमें कई अन्य छोटे-छोटे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुप भी शामिल हुए। 1976 में नेकपा (पुष्पलाल) से अलग होकर मदन कुमार भण्डारी ने 'मुक्ति मोर्चा समूह' बनाया जो फिर तालमेल कमेटी से जुड़ गया। तालमेल कमेटी ने 26 दिसम्बर 1978 को स्थापना कांग्रेस आयोजित करके नेकपा (माले) का गठन किया। जिसके प्रथम महासचिव सी.पी. मैनाली चुने गये। नेकपा (माले) शुरू से ही विनोद मिश्र के नेतृत्व वाली भा.क.पा. (माले) के साथ घनिष्ठ सम्पर्क में रही और उसी के नक्शेक़दम पर चलती हुई उससे कालान्तर में अतिवामपन्थी भटकाव से दक्षिणपन्थी भटकाव के दूसरे छोर तक की यात्रा की। "वामपन्थी" भटकाव को ठीक करने के नाम पर नेकपा (माले) धीरे-धीरे पूरी तरह से एक संसदीय वामपन्थी पार्टी में तब्दील हो गयी और 1990 के बाद नेपाल की प्रमुख संशोधनवादी पार्टियों की मुख्य धुरी बनकर उभरी। ऊपर हम चर्चा कर चुके हैं कि सेण्ट्रल न्यूक्लियस द्वारा पार्टी-पुनर्गठन के प्रयासों से मनमोहन अधिकारी के ग्रुप ने अपने को अलग कर लिया था। 1979 में उसने स्वयं को एक अलग पार्टी के रूप में संगठित किया। उधर पुष्पलाल की मृत्यु के बाद उनके नेतृत्व वाली ने. क.पा का नेतृत्व सहाना प्रधान ने सँभाला। 1978-79 से आगे के वर्षों में इन पार्टियों के संसदीय विपथगमन की प्रक्रिया तेज़ गति से आगे बढ़ी और 1986 में इनकी एकता के बाद नेकपा (मार्क्सवादी) अस्तित्व में आयी जो काफ़ी हद तक भाकपा (मार्क्सवादी) जैसी ही संशोधनवादी पार्टी थी और भाकपा (मा) से उसके निकट सम्बन्ध भी थे। 1991 में नेकपा (मा) और नेकपा (माले) की एकता के बाद नेकपा (एकीकृत मा-ले) अस्तित्व में आयी जिसके महासचिव मदन कुमार भण्डारी चुने गये, जो पहले नेकपा (माले) के महासचिव थे। मनमोहन अधिकारी पार्टी के चेयरमैन चुने गये। 1993 में मदन कुमार भण्डारी की एक दुर्घटना में मृत्यु के बाद से पार्टी महासचिव माधवकुमार नेपाल हैं। मनमोहन अधिकारी की अप्रैल, 1999 में मृत्यु हो गयी। 1991 से लेकर अब तक के समय में नेकपा (माले) में कई फूटें हुईं और कई छोटी-मोटी संशोधनवादी पार्टियों के साथ उनकी एकता भी हुई। आज नेपाल में कई संशोधनवादी वामपन्थी पार्टियाँ मौजूद हैं, लेकिन उनमें नेकपा (माले) ही सबसे बड़ी है और संशोधनवादी ध्रुवीकरण का केन्द्र है। इसकी संक्षिप्त चर्चा हम आगे करेंगे।

कुल मिलाकर, निबन्ध के इस हिस्से में हमने नेपाल में 1968 के बाद पार्टी–पुनर्गठन की दिशा में हुए तीन प्रयासों की चर्चा की है। इनमें से पुष्पलाल की धारा अपनी विचारधारात्मक कमज़ोरियों की तार्किक परिणति के तौर पर अन्ततः संशोधनवादी पंककुण्ड में जा गिरी। झापा–संघर्ष के उत्तराधिकारी भी अतिवामपन्थी छोर से दक्षिणपन्थी छोर तक जा पहुँचे और फिर मुख्य संशोधनवादी धाराएँ एक हो गयीं। 'सेण्ट्रल न्यूक्लियस' के प्रयास विभिन्न भटकावों एवं समस्याओं तथा फूटों और एकताओं के बीच से आगे बढ़े। 1991 में नेपाल की क्रान्तिकारी वामधारा का जो नया उभार सामने आया, उसके ज़्यादातर संघटक संगठनों का अतीत 'सेण्ट्रल न्यूक्लियस' से ही जुड़ा रहा है। इसकी चर्चा हम निबन्ध के अगले भाग में करेंगे।

1990 का जनान्दोलन और क्रान्तिकारी वाम का नया उभार

1990 का राजतन्त्र–विरोधी देशव्यापी जनान्दोलन नेपाल के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण मोड़–बिन्दु और एक मील का पत्थर था। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप नेपाल में बहुदलीय जनतन्त्र की स्थापना हुई और एक दशक के भीतर नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) सहित सभी बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों का घटिया अवसरवादी, सत्ताभोगी चेहरा जनता के सामने एकदम नंगा हो गया। यह स्पष्ट हो गया कि यह नेपाली कांग्रेस 1950 के दशक की नेपाली कांग्रेस का विकृत, पतित संस्करण है जो राजशाही के साथ समझौते करके व्यवस्था की हिफ़ाज़त और जनता के दमन के लिए प्रतिबद्ध है। साथ ही, नेकपा (एमाले) का असली चेहरा भी नंगा हो गया। हर संशोधनवादी पार्टी की तरह सत्तासीन होते ही नेकपा (एमाले) ने कुर्सी के लिए हरसम्भव जोड़–तोड़ की, यहाँ तक कि राजतन्त्रवादी दलों और राजा की बेशर्मी से ख़िदमत कर रहे शेर बहादुर देउबा के नेतृत्व वाली ने.कां. के धड़े के साथ भी गठबन्धन किया। जनान्दोलनों के दमन में यह किसी भी बुर्जुआ दल से पीछे नहीं रही और उसने सीमित बुर्जुआ सुधारों तक के लिए कोई पहल नहीं की। पार्टी में ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया। नेपाल की क्रान्तिकारी वामधारा की एक विशिष्टता यह रही कि अपनी कई विचारधारात्मक–राजनीतिक कमियों–कमजोरियों के बावजूद उसने इस पूरी अवधि के दौरान ज़्यादातर सही समय पर सटीक पहलक़दमी का परिचय दिया और नेपाली जनता उसे एकमात्र सही विकल्प के रूप में देखने लगी। बुर्जुआ चुनाव और संसद का क्रान्तिकारी प्रचार एवं भण्डाफोड़ के लिए काफ़ी हद तक सही ढंग से इस्तेमाल किया गया। नेकपा (माओवादी) हालाँकि "वामपन्थी" भटकाव का एक हद तक शिकार

थी, लेकिन चुनावी राजनीति की गन्दगी से त्रस्त जनता ने उसके द्वारा छेड़े गये क्रान्तिकारी लोकयुद्ध को काफ़ी उम्मीद और अपेक्षाओं के साथ समर्थन दिया। फ़रवरी, 2005 के राजदरबार हत्याकाण्ड और उसके बाद क़ायम ज्ञानेन्द्र के निरंकुश दमनकारी शासन ने राजशाही के आधार को अत्यधिक कमज़ोर कर दिया। शासक वर्ग एकदम अलग-थलग पड़ गया और उसके आपसी अन्तरविरोध भी तीखे हो गये। बुर्जुआ और संशोधनवादी दलों के अस्तित्व को बनाये रखने की यह विवशता थी कि वे राजशाही-विरोधी संघर्ष में शामिल हों। इन स्थितियों में क्रान्तिकारी वाम और विशेषकर नेकपा (माओवादी) द्वारा प्रस्तुत ठोस विकल्प का एजेण्डा जनता का अपना एजेण्डा हो गया, जिसकी तार्किक परिणति संविधान सभा के चुनाव और उसमें नेकपा (माओवादी) के सबसे बड़े दल के रूप में उभरने के तौर पर सामने आयी। इस पूरी प्रक्रिया में सही समय पर त्वरित, सटीक पहलक़दमी की सर्वोपरि भूमिका रही। अब नेपाल में क्रान्ति की जारी प्रक्रिया आगे कैसे बढ़ती है, यह मुख्यत: इस बात पर निर्भर करता है कि आगे भी क्रान्तिकारी वाम की शक्तियाँ सही समय पर सही निर्णय और पहल की अपनी क्षमता किस हद तक प्रदर्शित करती हैं, तथा क्रान्तिकारी वामधारा अपनी विचारधारात्मक कमज़ोरियों-विचलनों से विशेषकर, दक्षिणपन्थी 'प्रैग्मेटिज़्म' के ख़तरों से मुक्त होने के लिए कितना निर्णायक क़दम उठाती है और अपनी एकता की दिशा में कितनी तेज़ गति से आगे बढ़ती है। इसके बावजूद, नेपाली क्रान्ति का आगे का रास्ता भी काफ़ी कठिन है क्योंकि आज की विपरीत विश्व-परिस्थितियों में नेपाल जैसे एक छोटे देश में सर्वहारा क्रान्ति का अग्रवर्ती विकास निश्चय ही ऐतिहासिक चुनौतियों और कठिनाइयों से जूझकर ही सम्भव हो सकेगा।

नेपाली क्रान्ति की मनोगत समस्याओं को और अधिक ठोस रूप में जानने-समझने के लिए हम नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास के 1990 के बाद के कालखण्ड की आगे चर्चा करेंगे।

1990 के जनान्दोलन में नेकपा (चौथी कांग्रेस) ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और नेकपा (एमाले) सहित अन्य वामपन्थी और संशोधनवादी पार्टियाँ के साथ मिलकर संयुक्त वाम मोर्चा का गठन किया। उस समय जनान्दोलन और संयुक्त वाम मोर्चे जैसे किसी संयुक्त मोर्चे के बारे में प्रचण्ड के नेतृत्व वाले नेकपा (मशाल) का रुख नकारात्मक था। संयुक्त मोर्चा के बारे में मोहन बिक्रम सिंह के नेतृत्व वाले नेकपा (मसाल) का रुख भी नकारात्मक था। मोहन बिक्रम सिंह संविधान सभा की माँग और राजतन्त्र के ख़ात्मे के लिए सशस्त्र संघर्ष पर बल दे रहे थे। नेकपा (मसाल), नेकपा (मशाल) और नेकपा (मार्क्सवादी-

लेनिनवादी–माओवादी) ने एक साथ मिलकर 'संयुक्त राष्ट्रीय जनान्दोलन समिति' का गठन किया। नेकपा (मा–ले–मा.) का गठन कृष्ण दास श्रेष्ठ के नेतृत्व में 1981 में हुआ था। यह धड़ा नेकपा से 1969 में अलग हुआ था (तब यह पार्टी की बागमती ज़िला कमेटी था) और तभी से स्वतन्त्र रूप से काम कर रहा था।

1991 में नेकपा (चौथी कांग्रेस), ने नेकपा (मशाल) और रूपलाल विश्वकर्मा के नेतृत्व वाला सर्वहारा श्रमिक संगठन, नेपाल (पी.एल.ओ., नेपाल) की एकता के बाद नेकपा (एकता केन्द्र) अस्तित्व में आया। 1990 में गठित नेकपा (जनमुखी) भी इस एकता–प्रक्रिया में शामिल था। कुछ ही समय बाद डॉ. बाबूराम भट्टराई के नेतृत्व में एक ग्रुप मोहन बिक्रम सिंह के नेतृत्व वाले नेकपा (मसाल) से अलग होकर नेकपा (एकता–केन्द्र) में शामिल हो गया।

नेकपा (एकता केन्द्र) के भीतर शुरू से ही कई अहम विचारधारात्मक–राजनीतिक प्रश्नों पर मतभेद मौजूद था जो जल्दी ही तीखे संघर्ष के रूप में सामने आया। ऊपर हमने 1985 के पूर्व नेकपा (चौथी कांग्रेस) के भीतर मतभेद के मुद्दों की चर्चा की है। 1991 में नेकपा(एकता केन्द्र) में शामिल होने के बाद प्रधान अन्तरविरोध के प्रश्न पर तो प्रचण्ड आदि की राय बदल चुकी थी, लेकिन संयुक्त मोर्चे के प्रश्न पर मतभेद बरकरार था। नेकपा (एकता केन्द्र) के गठन के बाद डॉ. बाबूराम भट्टराई संयुक्त जनमोर्चा के संयोजक बने। उस सयम प्रचण्ड का जनान्दोलन के प्रति रुख नकारात्मक था। हालाँकि आगे चलकर फिर अलग होने के बाद संयुक्त जनान्दोलन समिति गठित करके उन्होंने उसमें हिस्सा लिया। उस समय दो प्रमुख संशोधनवादी दलों – नेकपा (मा) और नेकपा (माले) की एकता अभी नहीं हुई थी। विचारधारात्मक मुद्दों पर एकदम अलग अवस्थिति के बावजूद संयुक्त मोर्चा के अन्दर नेकपा (एकता केन्द्र) की निकटता मदन भण्डारी की नेकपा (माले) के साथ बनती थी।

नेकपा (एकता केन्द्र) के भीतर संघर्ष का पहला मुद्दा यह था कि आज का सही मार्क्सवाद क्या है – यानी अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के आकलन का सवाल। प्रकाश, निर्मल लामा आदि के पक्ष का कहना था कि समाजवादी संक्रमण के दौरान वर्ग–संघर्ष जारी रहता है और पूँजीवादी पुनर्स्थापना का वस्तुगत आधार मौजूद रहता है, लेकिन हमें विपर्यय के आत्मगत कारणों की भी पड़ताल और विश्लेषण करना होगा। आज का सही मार्क्सवाद वही हो सकता है जो प्रतिक्रान्ति को रोकने की शिक्षाओं से लैस हो। प्रचण्ड, किरण, बाबूराम भट्टराई आदि का कहना था कि इन प्रश्नों का उत्तर मार्क्सवाद पहले ही दे चुका है और इन पर अध्ययन की ज़रूरत नहीं है। प्रकाश धड़े ने प्रचण्ड धड़े को जड़सूत्रवादी

और प्रचण्ड धड़े ने प्रकाश धड़े को विसर्जनवादी बताया। प्रकाश धड़ा प्रतिक्रान्ति का एक आत्मगत कारण यह मानता था कि पार्टी और समाज का वैचारिक सांस्कृतिक स्तर नीचे था और पार्टी ने पहले से इस पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। दूसरा आत्मगत कारण यह था कि पार्टी के भीतर और समाज में सर्वहारा जनवाद के अमल और विस्तार पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। लेनिन ने इस प्रश्न पर ध्यान दिया था, लेकिन उन्हें व्यवहार का अवसर नहीं मिला। तीसरे, लेनिन ने सोवियत सत्ता पर बल दिया था, पार्टी की सत्ता पर नहीं। पार्टी का काम विचारधारात्मक–राजनीतिक मार्गदर्शन है, न कि सत्ता संचालन। लेकिन लेनिन के बाद, व्यवहारतः पार्टी ही सत्ता चलाती रही और सोवियतों की भूमिका कठपुतली की हो गयी। सर्वहारा जनवाद के विस्तार का काम होने के बजाय उसकी सीमा और संकुचित हो गयी। इस ऐतिहासिक मूल्यांकन से प्रचण्ड, भट्टराई, किरण आदि सहमत नहीं थे।

नेकपा (एकता केन्द्र) के भीतर मतभेद का दूसरा महत्त्वपूर्ण मुद्दा नेपाली क्रान्ति के मार्ग का सवाल था। प्रकाश धड़े का कहना था कि हर देश के कम्युनिस्टों को यान्त्रिक ढंग से अतीत की किसी क्रान्ति के मार्ग का अनुकरण करने के बजाय, परिस्थितियों का अध्ययन करके मौलिक ढंग से अपना रास्ता निकालना चाहिए। उनका कहना था कि नेपाल में दीर्घकालिक लोकयुद्ध और आम बग़ावत के तत्त्वों का शुरू से संश्लेषण करना होगा। प्रचण्ड गुट इस सोच से असहमत था। उसने प्रकाश गुट पर सार–संग्रहवाद का आरोप लगाया, हालाँकि बाद में इन्हीं बातों को 'प्रचण्ड पथ' की अवधारणा में शामिल कर लिया।

पार्टी–निर्माण के प्रश्न पर भी दोनों पक्षों की अलग राय थी। प्रकाश आदि का कहना था कि पार्टी की लेनिनवादी अवधारणा के साथ महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं का समावेश करना होगा। सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाएँ केवल समाजवादी संक्रमण की अवधि के लिए ही प्रासंगिक नहीं है, बल्कि क्रान्ति के पहले भी समाज में और पार्टी के भीतर सर्वहारा सांस्कृतिक आन्दोलन चलाना होगा। इस सोच को प्रचण्ड का धड़ा आदर्शवादी बता रहा था। उसका कहना था कि वर्ग–संघर्ष में जाने के बाद ये प्रश्न स्वतः हल हो जाते हैं। प्रकाश धड़ा प्रचण्ड आदि पर सचेतनता की उपेक्षा का आरोप लगा रहा था और उन्हें यान्त्रिक भौतिकवादी भटकाव का शिकार बता रहा था।

बहस का चौथा मुद्दा जनयुद्ध शुरू करने के सवाल को लेकर था। प्रचण्ड के पक्ष का कहना था कि जनयुद्ध तत्काल शुरू कर देना चाहिए, जबकि प्रकाश के पक्ष का विचार था कि तत्कालीन (यानी 1992–94 की) राष्ट्रीय–अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियाँ क़तई इसके लिए अनुकूल नहीं हैं। हमें पहले राजनीतिक–वैचारिक

संघर्ष तेज़ करना चाहिए और जनान्दोलन को आगे बढ़ाना चाहिए, इसके बाद जनयुद्ध की परिस्थितियाँ बन सकती हैं।

इन सभी मतभेदों के बाद दोनों धड़ों के एक पार्टी में बने रहने की वस्तुगत परिस्थितियाँ नहीं रह गयी थीं। 1994 में प्रचण्ड, बाबूराम भट्टराई, किरण आदि ने अलग होकर समान्तर नेकपा (एकता केन्द्र) के रूप में काम करना शुरू किया। 1996 में संगठन का नाम बदलकर नेकपा (माओवादी) हो गया।

बहुदलीय लोकतन्त्र की बहाली और 1992 के चुनाव में नेपाली कांग्रेस के सत्तासीन होने के तुरन्त बाद, पूरे देश में गम्भीर आर्थिक संकट की स्थिति थी। क़ीमतें आसमान छू रही थीं। भ्रष्टाचार चरम पर था। इस अनुकूल समय में नेकपा (एकता केन्द्र) और संयुक्त जनमोर्चा ने राजनीतिक आन्दोलन के लिए पहल की। नेकपा (मसाल), नेपाल कम्युनिस्ट लीग और नेकपा (मा–ले–मा.) के साथ मिलकर एक 'संयुक्त जनान्दोलन समिति' गठित की गयी जिसके तत्त्वावधान में 6 अप्रैल की प्रसिद्ध आम हड़ताल हुई। पुलिस ने हड़ताल का बर्बर दमन किया। इस घटना ने ने.कां. और विपक्षी नेकपा (एमाले) की संसदीय राजनीति के चरित्र को एकदम नंगा कर दिया। आगे चलकर मनमोहन अधिकारी के नेतृत्व में जब नेकपा (एमाले) सत्तासीन हुई और फिर उसने शेर बहादुर देउबा के साथ अवसरवादी गँठजोड़ किया तो उसका चेहरा और अधिक नंगा हो गया। व्यापक मोहभंग और जनाक्रोश को 1996 तक देशव्यापी जन–उभार में परिणत कर पाने में क्रान्तिकारी वाम की शक्तियाँ विफल रहीं। इसका बुनियादी कारण राजनीतिक मतभेदों के चलते जारी बिखराव की प्रक्रिया थी। पहल ले पाने में सक्षम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पार्टी नेकपा (एकता केन्द्र) थी, लेकिन 1994 में वह फिर फूट का शिकार हुई। कभी अतिवामपन्थी तो कभी दक्षिणपन्थी अवस्थिति अपनाते रहने वाले मोहन बिक्रम सिंह अपनी पुरानी साख–प्रतिष्ठा का काफ़ी हिस्सा खो चुके थे और पहले से ही सिकुड़ती जा रही नेकपा (मसाल) अब अपनी काफ़ी शक्ति और आधार खो चुकी थी। अन्य छोटी–छोटी क्रान्तिकारी वामपार्टियाँ अपनी पहल पर प्रभावी ढंग से कुछ हस्तक्षेप कर पाने में सफल नहीं थीं।

इन्हीं परिस्थितियों में नेकपा (माओवादी) ने जनयुद्ध की शुरुआत की। 4 फ़रवरी 1996 को बाबूराम भट्टराई ने प्रधानमन्त्री शेर बहादुर देउबा को एक चालीस–सूत्री माँगपत्रक दिया और उन माँगों को न माने जाने की स्थिति में गृहयुद्ध की चेतावनी दी। सभी असमान सन्धियों को रद्द करना, नेपाली उद्योग, वाणिज्य और वित्तीय भूस्वामियों की ज़मीन जब्त करके उसका भूमिहीनों और ग़रीबों में वितरण करना आदि माँगपत्रक की प्रमुख माँगें थीं। 26 अप्रैल, 1996

को प्रचण्ड ने पर्वतीय क्षेत्रों और पश्चिमी नेपाल में अपना नियन्त्रण क्षेत्र स्थापित करने के उद्देश्य से सामरिक प्रयासों के लिए निर्देश जारी किया। व्यापक नेपाली जनसमुदाय ने जनयुद्ध की घोषणा को कुछ आशंकाओं के बावजूद नयी उम्मीदों के साथ देखा। जनयुद्ध के आगे बढ़ने के साथ ही ये उम्मीदें भी बढ़ती गयीं और जनता में माओवादियों का समर्थन आधार तेज़ी से बढ़ता चला गया।

आगे बढ़ता जनयुद्ध और सीमाएँ

नेपाल में जारी जनयुद्ध की बारह वर्ष की अवधि के दौरान नेकपा (माओवादी) ने राजनीतिक और सामरिक मामलों में क्रमशः ज़्यादा से ज़्यादा परिपक्वता हासिल की। अपनी सोच में मौजूद सैन्यवादी "वामपन्थी" विचलन से भी उसने काफ़ी हद तक छुटकारा पा लिया और जो जनयुद्ध कमोबेश पेरू के माओवादियों के जनयुद्ध के रास्ते के दुहराव के रूप में शुरू हुआ था, वह आगे चलकर अपनी नेपाली विशिष्टताओं के साथ विकसित हुआ। नेपाल के माओवादियों ने युद्ध में कम से कम नुक़सान उठाकर जीत हासिल करने तथा रणकौशल के मामले में ज़्यादा से ज़्यादा लचीलापन अपनाने में महारत हासिल कर ली। इस प्रक्रिया में उनकी राजनीतिक अवस्थितियों में भी काफ़ी बदलाव आये और नेकपा (एकता केन्द्र) के साथ उनके अधिकांश बुनियादी मतभेद हल हो गये। इस तरह क्रान्तिकारी वाम एकता का एक नया आधार होने तैयार होने लगा, हालाँकि नेकपा (माओवादी) की नयी अवस्थितियों में दक्षिणपन्थी व्यवहारवाद ('प्रैग्मेटिज़्म') की एक नयी प्रवृत्ति भी उभरकर सामने आयी जिस पर बहस-मुबाहसे का सिलसिला एकता की प्रक्रिया के आगे बढ़ने के साथ-साथ आज भी जारी है। एकता और मतभेद के इन बिन्दुओं की हम आगे चर्चा करेंगे।

जनयुद्ध की शुरुआत रोल्पा, रुकुम और जाजरकोट नामक मध्य-पश्चिम नेपाल के तीन दुर्गम पर्वतीय ज़िलों से हुई जो कुछ ही वर्षों में सल्यान, प्यूठान और कालीकोट ज़िलों तक फैल गयी। इन ज़िलों में सरकार की मौजूदगी जिला मुख्यालयों तक सिमटकर रह गयी और लगभग पूरा इलाक़ा माओवादी नियन्त्रण के अन्तर्गत आ गया। नेपाली गृह मन्त्रालय ने इन ज़िलों को 'अ' श्रेणी के संवेदनशील ज़िले घोषित कर दिया। सरकारी आकलन के अनुसार, दोलाखा, रामेछाप, सिन्धुली, काव्रेपालांचौक, सिन्धुपाल चौक, गोरखा, दांग, सुरखेत और अछाम ज़िले संवेदनशीलता की दृष्टि से 'ब' श्रेणी में रखे गये। 'स' श्रेणी में खोतांग, ओखालधुंगा, उदयपुर, मकवानपुर, ललितपुर, नुवाकोट, धादिंग, तनाहु,

लामजुंग, पर्बत, बागलुंग, गुल्मी, अर्घाखाची, बार्डिया, दापलेख, जुमला और डोल्पा नामक सत्रह ज़िले शामिल थे। अलग–अलग अंशों में माओवादी छापामार नेपाल के कुल 75 में से 68 जिलों में सक्रिय थे और लगभग 70 प्रतिशत हिस्से पर उनका पूरा या आंशिक नियन्त्रण था। पश्चिमी और मध्य–पश्चिम क्षेत्र में तथा पूर्वी क्षेत्र के एक हिस्से में उनके मज़बूत आधार–क्षेत्र स्थापित हो चुके थे।

जनयुद्ध की शुरुआत थोड़े से छापामारों के दस्तों ने देसी हथियारों से की थी। लेकिन नेपाल सरकार के आकलन के हिसाब से 2003 की शुरुआत तक माओवादी छापामार सैनिकों की संख्या 5,500 और मिलिशिया के जवानों की संख्या 8,000 तक पहुँच गयी थी जो पिछड़े हथियारों के साथ ही ए.के. 47, एस.एल.आर, 303 राइफलों, मोर्टारों, लाइन मशीनगनों, हथगोलों और उन्नत विस्फोटकों से लैस थे। इनमें से 85 प्रतिशत हथियार पुलिस और शाही नेपाल सेना से छीने गये थे। इस जनसेना के पीछे 4,500 पार्टी कार्यकर्ताओं, 33,000 दृढ़ एवं सक्रिय पार्टी समर्थकों और दो लाख पार्टी हमदर्दों की ताक़त थी (यह 2003 में सरकार का आकलन था)। माओवादी सशस्त्र बल का साठ प्रतिशत हिस्सा पश्चिम और मध्य–पश्चिम नेपाल के सुदृढ़ आधार इलाक़ों में तैनात था, जबकि दस प्रतिशत हिस्सा सुदूर पश्चिम में, दस प्रतिशत गोरखा जिले में और शेष हिस्सा काठमाण्डो घाटी में और इसके पूर्व में स्थित क्षेत्र में तैनात था।

नेपाल के सशस्त्र संघर्ष की सफलता का एक प्रमुख आन्तरिक कारण यह था कि पर्वतीय भूभाग, विशेषकर पश्चिम और मध्य–पश्चिम के जिलों में यातायात–संचार के साधन बहुत कम विकसित हैं और विशाल दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र छापामार संघर्ष की दृष्टि से बहुत अनुकूल हैं। प्रशासन तन्त्र यहाँ जिला मुख्यालयों पर केन्द्रित है और गाँवों तक पुलिस–तन्त्र की पकड़ भी काफ़ी कमज़ोर है। ग्रामीण जनता सदियों से सामन्ती उत्पीड़न, पिछड़ेपन और गतिरुद्ध जीवन का शिकार रही है। सामन्ती अभिजात और मुट्ठीभर भ्रष्ट नौकरशाह जनता को निचोड़कर काठमाण्डो और प्रमुख नगरों में विलासिता का जीवन बिताते रहे हैं। छापामार संघर्ष का मुक़ाबला करने जब शाही सेना सामने आयी, उस समय तक सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में क्रान्तिकारी अपना मज़बूत आधार क़ायम कर चुके थे। आधार इलाक़ों में पार्टी ने कई स्थानों पर भूस्वामियों से छीनी गयी ज़मीन के एक हिस्से पर भूमिहीनों की सामूहिक खेती की व्यवस्था क़ायम की, बड़े पैमाने पर ज़मीनें बाँटी गयीं और छोटी जोत वाले किसानों को सहकारी खेती के लिए प्रोत्साहित किया गया। इन क्रान्तिकारी भूमिसुधारों के साथ ही जन प्रतिनिधियों की चुनी हुई कमेटियों की देखरेख में शिक्षा, स्वास्थ्य और प्रशासन का

वैकल्पिक ढाँचा खड़ा करने की दिशा में भी महत्त्वपूर्ण प्रयोगों की शुरुआत हुई। इन पहलक़दमियों ने आधार क्षेत्रों को मज़बूत बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

स्त्रियों की आधी आबादी की क्रान्तिकारी ऊर्जा और पहलक़दमी को निर्बन्ध करना भी नेकपा (माओवादी) की सफलता का एक महत्त्वपूर्ण कारण रहा है। एक अनुमान के अनुसार पार्टी कार्यकर्ताओं और जनमुक्ति सेना में लगभग एक तिहाई संख्या स्त्रियों की है। 18 अप्रैल 2003 को दिये गये बाबूराम भट्टराई के एक बयान के अनुसार निचली पार्टी क़तारों में 50 प्रतिशत, सैनिकों में 30 प्रतिशत और पार्टी की केन्द्रीय कमेटी में 10 प्रतिशत संख्या स्त्रियों की है। 'ऑल नेपाल विमेन्स एसोसिएशन' (रिवोल्यूशनरी) नेकपा (माओवादी) से जुड़ा स्त्री जन-संगठन माना जाता है जो गाँवों के अतिरिक्त शहरों की मध्यवर्गीय युवा स्त्री समुदाय में भी काफ़ी प्रभावी है और नेपाल का सबसे बड़ा स्त्री संगठन है। नेकपा (एकता केन्द्र) से अलग होते समय मतभेद का एक अहम मुद्दा यह था कि नेकपा (माओवादी) इस बात का विरोध कर रही थी कि नेपाल की ठोस परिस्थितियों में दीर्घकालिक लोकयुद्ध के साथ ही जनविद्रोह की सामरिक रणनीति का भी संश्लेषण करना होगा (इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है)। लेकिन बाद में उसने इस धारणा को 'प्रचण्ड पथ' के एक घटक के रूप में अपना लिया और उस पर अमल करते हुए शहरी क्षेत्रों में कई बार हड़तालों और बन्द की सफल कार्रवाइयाँ कीं। इन कार्रवाइयों में मज़दूरों और छात्रों की बड़ी आबादी उनके साथ लामबन्द हुई। 'ऑल नेपाल ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशन' (रिवोल्यूशनरी) और 'ऑल नेपाल नेशनल फ़्री स्टूडेण्ट्स यूनियन' (रिवोल्यूशनरी) क्रमशः मज़दूरों और छात्रों के सबसे बड़े और जुझारू जन संगठनों के रूप में उभरकर सामने आये। पार्टी की युवा शाखा 'युवा कम्युनिस्ट लीग' ने देशव्यापी स्तर पर अपना विस्तार किया और उसकी जुझारू कार्रवाइयों ने पार्टी का आधार मज़बूत करने में अहम भूमिका निभायी।

एक ओर जहाँ नेकपा (माओवादी) ने जनयुद्ध को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया, वहीं क्रान्तिकारी वाम धारा की अन्य शक्तियों के प्रति संकीर्णतावादी रुख अपनाते हुए जनयुद्ध के बाद के दो-तीन वर्षों तक उसने उन्हें मित्र शक्ति भी नहीं माना और यहाँ तक कि उनके विरुद्ध बल-प्रयोग भी किया, लेकिन नेकपा (एकता केन्द्र) ने उनके प्रति धैर्यपूर्ण दोस्ताना रुख अपनाते हुए बहस चलायी। 2001 के अपने राष्ट्रीय सम्मेलन में नेकपा (एकता केन्द्र) ने जनयुद्ध के सकारात्मक पक्षों का उल्लेख करते हुए अपना यह मूल्यांकन रखा कि

(1) जनयुद्ध ने प्रतिक्रियावादी राज्य को कमज़ोर किया है, (2) इसने प्रतिक्रियावादी शक्तियों के आपसी अन्तरविरोधों को तीखा कर दिया है, (3) इसने जनता की आकांक्षाओं को उभारा और स्वर दिया है, और (4) सकारात्मक बदलाव के लिए परिस्थितियाँ तैयार की हैं। लेकिन नेकपा (एकता केन्द्र) का मूल्यांकन था कि इससे उत्साहित होकर यदि माओवादी केन्द्रीय सत्ता पर क़ब्ज़ा करने के लिए जनयुद्ध तेज़ करेंगे तो यह बेहद ख़तरनाक़ और नुक़सानदेह सिद्ध होगा। नेकपा (एकता केन्द्र) का मानना था कि उन्हें जनयुद्ध के सकारात्मक पक्षों की रक्षा करने और क्षति को कम करने की कोशिश करनी चाहिए और सरकार के साथ वार्ता की प्रक्रिया में जाने की कोशिश करनी चाहिए। दूसरी ओर नेकपा (एमाले) माओवादियों का विरोध करने में नेपाली कांग्रेस के कोइराला और देउबा गुटों से एक क़दम भी पीछे नहीं थी। यहाँ तक कि उसने उनके दमन में भी भरपूर सहयोग दिया। एक के बाद एक सरकारें चलाकर ये सभी पार्टियाँ अपने भ्रष्ट, अवसरवादी और दमनकारी चरित्र को उजागर करके जनता में अपनी साख पहले ही खो चुकी थीं। जनयुद्ध–विरोधी उनके रवैये ने जनता में माओवादियों की साख को और मज़बूत बनाने का ही काम किया।

जून 2001 में रहस्यमय राजदरबार हत्याकाण्ड में राजा वीरेन्द्र के पूरे परिवार की हत्या के बाद ज्ञानेन्द्र राजा बने और कुख्यात भ्रष्ट और गुण्डा राजकुमार पारस उनका उत्तराधिकारी बना। जनता ने कभी भी इन सामूहिक हत्याओं के लिए राजकुमार दीपेन्द्र को ज़िम्मेदार मानने की सूचना पर यक़ीन नहीं किया और ज्ञानेन्द्र और पारस की भूमिका हमेशा ही शक के घेरे में रही। जनता का जो पिछड़ा हिस्सा राजाशाही में धार्मिक आस्था रखता था, अब उसका भी मोहभंग हो चुका था। यह स्थिति जनयुद्ध के सर्वथा अनुकूल थी, लेकिन दूसरी ओर आसन्न क्रान्ति के ख़तरे को टालने के लिए न केवल बुर्जुआ संसदीय ताक़तें बल्कि भारतीय शासक वर्ग, चीनी शासक वर्ग और अमेरिकी साम्राज्यवाद भी पूरी तरह से राजा के साथ खड़े थे। जुलाई में जनयुद्ध और अधिक तेज़ हो गया। संकटग्रस्त कोइराला सरकार के इस्तीफ़े के बाद देउबा सरकार सत्तारूढ़ हुई। माओवादियों ने लचीला रुख अपनाते हुए अगस्त में चार महीने के युद्धविराम की घोषणा की और देउबा सरकार के साथ शान्ति वार्ता की शुरुआत की। इस पहल के पीछे नेकपा (एकता केन्द्र) के प्रयासों की विशेष भूमिका थी जिसकी कोशिश थी कि क्रान्तिकारी वाम के अतिरिक्त नेकपा (एमाले) को भी साथ लेकर जनयुद्ध को आक्रमण से बचाया जाये। राजदरबार हत्याकाण्ड के बाद की परिस्थितियों में नेकपा (एमाले) की भी यह विवशता थी कि वह अपनी खोई साख की बहाली

के लिए इस पहल में हिस्सा ले। इन्हीं कारणों से अगस्त 2001 में सिलीगुड़ी में नेकपा (माओवादी), नेकपा (एकता केन्द्र) और नेकपा (एमाले) के नेताओं की बैठक सम्भव हुई जिसके बाद देउबा सरकार के साथ माओवादियों की शान्तिवार्ता हुई। कई चक्रों की इस वार्ता की विफलता के बाद नवम्बर 2001 में माओवादियों ने युद्धविराम समाप्त करने की घोषणा की तथा सेना और पुलिस की चौकियों पर ज़ोरदार आक्रमणों की शुरुआत की। राजा ने आपातकाल घोषित कर दिया और सेना को विद्रोहियों को कुचलने के निर्देश जारी कर दिये। जन मुक्ति सेना के छापामार दस्तों ने सेना का भी डटकर मुक़ाबला किया और आधार इलाक़ों के बहुलांश पर उनका नियन्त्रण बना रहा। व्यापक जनसमुदाय ने जमकर उनका साथ दिया। केवल नवम्बर के महीने में ही सेना और छापामारों के बीच की झड़पों में सैकड़ों लोग मारे गये। लेकिन सैनिक दमन और शहादतों ने क्रान्तिकारियों के जनाधार को और अधिक पुख़्ता और व्यापक बनाने का काम किया। मई 2002 में राजा ने संसद भंग कर दी और नये चुनावों की घोषणा की। शेरबहादुर देउबा के नेतृत्व वाली अन्तरिम सरकार ने आपातकाल को जारी रखने का निर्णय किया, जिसका संसदीय बुर्जुआ दलों और संशोधनवादियों ने भी विरोध किया। व्यवस्था का संकट और अधिक गहरा हो गया। शासक वर्गों के आपसी अन्तरविरोध तीखे हो गये। अक्टूबर 2002 में राजा ज्ञानेन्द्र ने देउबा सरकार को बर्ख़ास्त कर दिया और लोकेन्द्र बहादुर चन्द को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। नवम्बर में तय चुनावों को अनिश्चित काल के लिए टाल दिया गया। जनवरी, 2003 में एक बार फिर राज्य और नेकपा (माओवादी) के बीच बातचीत के बाद युद्धविराम की घोषणा हुई। मई–जून में लोकेन्द्र बहादुर चन्द के इस्तीफ़े के बाद राजा ने सूर्य बहादुर थापा को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। अगस्त में माओवादियों ने युद्धविराम समाप्त करते हुए एक बार फिर जनयुद्ध को तेज़ करने का ऐलान किया। अब गाँवों में जारी सशस्त्र संघर्ष के साथ ही शहरों में भी पुलिस और कार्यकर्ताओं–छात्रों के बीच झड़पें होने लगीं। बन्द और हड़तालों का सिलसिला आम हो गया।

2003–2004 के दौरान नेकपा (माओवादी) का आकलन था कि रणनीतिक प्रतिरक्षा के दौर से रणनीतिक सन्तुलन के दौर में कुछ वर्षों पहले ही प्रविष्ट हो चुका जनयुद्ध अब निर्णायक दौर में प्रवेश कर सकता है और रणनीतिक आक्रमण शुरू करने की परिस्थितियाँ अब लगभग तैयार हैं। आगे चलकर समय ने उनके इस आकलन को ग़लत साबित किया। आज की विश्व परिस्थिति में नेपाल जैसे देश की भू–राजनीतिक परिस्थिति में लाल सत्ता की स्थापना के निर्णायक संघर्ष का कम अवधि में विजयी हो पाना सम्भव नहीं था। संघर्ष की प्रक्रिया अभी काफ़ी

जटिल और दीर्घकालिक होनी थी। क्रान्तिकारी वाम को संघर्ष का दबाव बनाने, समझौता करके विराम लेने और फिर संघर्ष का दबाव बनाने के कई चक्रों से गुज़रना पड़ सकता था। रणनीतिक सन्तुलन का दौर अभी काफ़ी लम्बा होना था। इस दौर में आरज़ी सरकार के गठन और अन्तरिम संविधान की भी सम्भावना थी। यह सम्भव था कि क्रान्ति को कुचलने के लिए राजा के साथ जा खड़ी हुई बुर्जुआ संसदीय ताक़तें भी अन्ततः राजाशाही की समाप्ति के लिए तैयार हो जायें और जनवादी क्रान्ति का एक कार्यभार पूरा होने के बाद वर्ग संघर्ष अगले दौर में प्रविष्ट हो जाये। साम्राज्यवाद से निर्णायक विच्छेद और क्रान्तिकारी भूमि सुधार के राष्ट्रीय जनवादी कार्यभारों को पूरा करने के लिए क्रान्तिकारी वाम को वर्ग संघर्ष के किन रूपों और कितने लम्बे दौर से गुज़रना होगा, यह तो बता पाना मुश्किल है लेकिन यह बात 2003 में भी स्पष्ट थी कि जनवादी क्रान्ति की निर्णायक विजय नेपाल में अभी दूर है। नेकपा (एकता केन्द्र) की धारणा भी कुछ ऐसी ही थी और इसीलिए उनका कहना था कि माओवादियों द्वारा अभी केन्द्रीय सत्ता पर क़ब्ज़े का निर्णायक प्रयास ख़तरनाक़ होगा।

मई 2004 में देशव्यापी जनप्रदर्शनों और हड़तालों के हफ़्तों जारी सिलसिलों के बाद राजतन्त्रवादी प्रधानमन्त्री सूर्य बहादुर थापा ने इस्तीफ़ा दे दिया। राजा ने शेर बहादुर देउबा को एक बार फिर प्रधानमन्त्री नियुक्त किया और उन्हें शीघ्र चुनाव कराने की ज़िम्मेदारी सौंपी। लेकिन इससे जनज्वार रुका नहीं। अन्ततः राजा ने 1 फ़रवरी 2005 को देउबा सरकार को बर्ख़ास्त करके आपातकाल घोषित कर दिया और सारी सत्ता अपने हाथ में ले ली। माओवादी विद्रोहियों को कुचलने के लिए उन्होंने ऐसा करना अपरिहार्य बताया। राजा के इस निर्णय से उनके सरपरस्त पश्चिमी साम्राज्यवादी और भारतीय बुर्जुआ वर्ग भी सहमत नहीं थे। उनका मानना था कि इससे जनयुद्ध को जनता का और अधिक समर्थन मिलने लगेगा और बुर्जुआ संसदीय ताक़तें भी राजाशाही के विरुद्ध जनान्दोलन में भागीदार बनने को विवश हो जायेंगी। इस अन्तरराष्ट्रीय दबाव के चलते अप्रैल में राजा ने आपातकाल तो हटा लिया, लेकिन राजा का प्रत्यक्ष निरंकुश शासन जारी रहा। जो संसदीय बुर्जुआ ताक़तें नेपाली क्रान्ति के निरन्तर अग्रवर्ती विकास से भयाक्रान्त होकर राजा और राजतन्त्रवादी सामन्ती ताक़तों के साथ खड़ी होकर माओवादियों के दमन में भरपूर सहयोग कर रही थीं, उन्हें राजा की निरंकुश तानाशाही ने विवश कर दिया कि वे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए राजतन्त्र के विरुद्ध आवाज़ उठायें। जनयुद्ध के प्रेरणादायी प्रभाव और ज्ञानेन्द्र की आत्मघाती राजनीतिक ग़लतियों के चलते 2005 में व्यापक जनसमुदाय के बीच गहरी विद्रोह भावना जड़ें जमा चुकी थी। 2006 के इतिहास–प्रसिद्ध 'जनान्दोलन–दो' की परिस्थितियाँ (1990 में बहुदलीय

जनतन्त्र बहाली के लिए हुए देशव्यापी आन्दोलन को 'जनान्दोलन–एक' कहा जाता है) तैयार हो चुकी थीं। अपने अस्तित्व की रक्षा और जनता में खोई साख हासिल करने के लिए ज़रूरी था कि नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) सहित सभी बुर्जुआ और संसदीय वाम की शक्तियाँ राजतन्त्र–विरोधी मोर्चा में शामिल हों। सात पार्टियों का गठबन्धन इन्हीं स्थितियों में बना जिसमें नेकपा (माओवादी) से अलग सक्रिय क्रान्तिकारी वाम पार्टियों के साथ ही संसदीय वाम की पार्टियाँ और मुख्य बुर्जुआ पार्टियाँ शामिल थीं। गठबन्धन में शामिल कुल पार्टियाँ थीं : नेपाली कांग्रेस, नेपाली कांग्रेस (लोकतान्त्रिक), सद्भावना पार्टी (आनन्दी देवी), नेकपा (एमाले), नेपाल मज़दूर–किसान पार्टी, नेकपा (एकता केन्द्र) का जनमोर्चा और संयुक्त वाम मोर्चा। संयुक्त वाम मोर्चा की तीन घटक पार्टियाँ थीं : नेकपा (मा. ले.मा. केन्द्र), नेकपा (युनाइटेड मार्क्सिस्ट) और सी.पी. मैनाली के नेतृत्व वाली नेकपा (माले)। इनमें से पहली क्रान्तिकारी वाम धारा की पार्टी थी, जबकि शेष दो संसदीय वाम धारा की पार्टियाँ थीं। सात पार्टियों के इस गठबन्धन के साथ नेकपा (माओवादी) को वार्ता के लिए तैयार करने और लोकतन्त्र बहाली के आन्दोलन के लिए व्यापक संयुक्त मोर्चा बनाने में नेकपा (एकता केन्द्र) की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। नेकपा (एकता केन्द्र) ने इसके लिए औपचारिक प्रस्ताव पारित किया और उसके नेतृत्व के एक प्रतिनिधिमण्डल ने रोल्पा जाकर प्रचण्ड, बाबूराम भट्टराई और नेकपा (माओवादी) की केन्द्रीय कमेटी के अन्य सदस्यों से बातचीत की। साथ ही उन्होंने गिरिजा प्रसाद कोइराला और माधव कुमार नेपाल से भी कई दौर की बातचीत की। उनका मानना था कि लोकतन्त्र बहाली के लिए और राजतन्त्र की समाप्ति के लिए क्रान्तिकारी वाम की पार्टियों, संसदीय वाम की पार्टियों और नेपाली कांग्रेस सहित प्रमुख बुर्जुआ संसदीय पार्टियों का संयुक्त मोर्चा सम्भव और ज़रूरी है क्योंकि ज्ञानेन्द्र के शासनकाल में राजा की साख जनता में समाप्त हो चुकी है और संसदीय बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों की यह विवशता है कि अपने अस्तित्व के लिए वे राजतन्त्र–विरोधी आन्दोलन में शामिल हों। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप नवम्बर 2005 में सात पार्टियों के गठबन्धन और नेकपा (माओवादी) के बीच बारह–सूत्री क़रार हुआ और दिल्ली में उस पर हस्ताक्षर हुआ।

अप्रैल 2006 में नेपाल में जन सैलाब सड़कों पर उमड़ पड़ा। 1990 के बाद यह दूसरा व्यापक और ज़बरदस्त जनउभार था जिसे 'जनान्दोलन–दो' कहा जाता है। इस जनान्दोलन ने भारतीय शासक वर्ग और साम्राज्यवादियों के सामने भी यह स्पष्ट कर दिया कि राजा की सत्ता को अब बहुत दिनों तक बचाये रख पाना सम्भव नहीं है और नेपाली जनक्रान्ति को रोकने का एकमात्र रास्ता यही हो सकता है कि नेपाल में बहुदलीय लोकतन्त्र बहाल हो, राजा की सत्ता या तो मात्र

अनुष्ठानिक हो जाये या समाप्त हो जाये और नेपाली कांग्रेस तथा नेकपा (एमाले) के हाथ मज़बूत करके क्रान्तिकारी वाम की अग्रवर्ती बढ़त को थामने की यथासम्भव कोशिश की जाये। इन परिस्थितियों ने राजा ज्ञानेन्द्र को संसद की बहाली के लिए विवश कर दिया। गिरिजा प्रसाद कोइराला अन्तरिम सरकार के प्रधानमन्त्री नियुक्त हुए और माओवादियों ने तीन महीने के लिए युद्धविराम घोषित किया। मई 2006 में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित करके संसद ने राजा के राजनीतिक अधिकारों में कटौती कर दी। तीन वर्षों बाद सरकार और माओवादियों के बीच शान्ति वार्ता की शुरुआत हुई। जून 2006 में पहली बार कोइराला और प्रचण्ड के बीच सीधी वार्ता हुई और अन्तरिम सरकार में माओवादी विद्रोहियों के शामिल होने पर सहमति बनी। इस सहमति की शर्त यह थी कि नेपाल को जनवादी गणराज्य घोषित करने और राजशाही के भविष्य पर अन्तिम निर्णय के लिए अन्तरिम सरकार यथाशीघ्र संविधान सभा का चुनाव करायेगी जो नेपाल के संघात्मक गणराज्य का नया संविधान बनायेगी। जिस संविधान सभा की माँग 1950 से ही नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी कर रही थी, उसे दस वर्षों से जारी जनयुद्ध और 2006 के जनान्दोलन ने व्यापक जनता का एजेण्डा बना दिया, जिसे सभी बुर्जुआ संसदीय ताक़तों को भी मानने के लिए विवश होना पड़ा। यह एक ऐतिहासिक विजय थी।

जनयुद्ध की समाप्ति से लेकर संविधान सभा के चुनावों तक

नवम्बर 2006 में सरकार और माओवादियों के बीच एक शान्ति समझौता हुआ और दस वर्षों से जारी जनयुद्ध के औपचारिक अन्त की घोषणा हुई। माओवादी अन्तरिम सरकार में शामिल होने पर सहमत हुए। इस अन्तरिम सरकार में नेपाली कांग्रेस, सद्भावना पार्टी, नेकपा (एमाले) आदि के साथ नेकपा (एकता केन्द्र) से जुड़ा जनमोर्चा और क्रान्तिकारी वाम धारा की अन्य महत्त्वपूर्ण पार्टियाँ भी शामिल थीं। माओवादी अपने हथियारों को संयुक्त राष्ट्र संघ की देखरेख में रखने के लिए तैयार हो गये। यह तय हुआ कि संविधान सभा के चुनाव और नयी व्यवस्था क़ायम होने तक शाही सेना और जनमुक्ति सेना दोनों ही बैरकों में रहेंगी और चुनाव के बाद राष्ट्रीय सैन्य बल में जनमुक्ति सेना को शामिल करने के तौर–तरीक़ों को ठोस रूप में तय किया जायेगा। जनवरी 2007 में एक अस्थायी संविधान की शर्तों के अन्तर्गत माओवादी संसद में प्रविष्ट हुए और अप्रैल 2007 में वे सरकार में शामिल हुए।

जनवरी 2007 से लेकर अप्रैल 2008 में हुए संविधान सभा के चुनाव तक का समय नेपाल में एक अनिश्चितता और तनाव भरा संक्रमण का समय था।

जनवरी 2007 में नेपाल के तराई क्षेत्र में 'एक मधेस एक प्रदेश' के नारे के साथ क्षेत्रीय स्वायत्तता की माँग का आन्दोलन हिंसात्मक रूप में भड़क उठा। हालाँकि माओवादी और क्रान्तिकारी वामधारा की अन्य पार्टियाँ भी नेपाल के भावी संघात्मक गणराज्य के ढाँचे में अलग-अलग राष्ट्रीयताओं और जनजातियों की स्वायत्तता की बात करती थीं और तराई में माओवादियों का व्यापक समर्थन-आधार भी था, लेकिन मधेस समस्या पर कुछ व्यावहारिक चूकें हुईं और व्यापक जनता को इस प्रश्न पर अपना दृष्टिकोण समझा पाने में क्रान्तिकारी वाम शक्तियाँ विफल रहीं। तराई क्षेत्र के कुछ इलाक़ों में थारू और कुछ अन्य जनजातियों की भी आबादी होने के चलते 'एक मधेस एक प्रदेश' का नारा उचित और व्यवहार्य नहीं हो सकता था, लेकिन मधेसी जनता के एक बड़े हिस्से को संकीर्णतावादी राष्ट्रवादी मधेसी ताक़तें अपने साथ लेने में सफल रहीं, जिसके चलते आगे चलकर तराई क्षेत्र में मधेसी जनाधिकार मंच, और तराई मधेस जनतान्त्रिक पार्टी जैसी नवगठित पार्टियों को चुनावों में भारी सफलता मिली और वे चौथी सबसे बड़ी ताक़त के रूप में उभरकर सामने आयीं। मधेसी आन्दोलन के पीछे तराई के भूस्वामियों की सत्ता में भागीदारी की महत्त्वाकांक्षा की भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही, इसे हवा देने में भारतीय शासक वर्ग और साम्राज्यवादियों की भी एक अहम भूमिका रही है, ताकि नयी सत्ता संरचना में उत्पन्न अन्तरविरोधों का वे ज़्यादा से ज़्यादा लाभ उठा सकें।

मिली-जुली अन्तरिम सरकार में नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) का अपवित्र गठबन्धन लगातार अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने और माओवादियों की स्थिति कमज़ोर करने के लिए कुचक्र रचता रहा। कामचलाऊ सरकार का मुख्य काम संविधान सभा के चुनाव की परिस्थितियाँ तैयार करना था, लेकिन वह माओवादियों की सहमति के बग़ैर महत्त्वपूर्ण नीतिगत फ़ैसले लेती रही और यह भी कोशिश करती रही कि संवैधानिक राजतन्त्र की अनुष्ठानिक मौजूदगी की परिस्थितियाँ तैयार हो जायें। जनभावना के भारी दबाव को देखते हुए राजतन्त्र की समाप्ति को स्वीकारना तो अन्ततः उनकी मजबूरी हो गयी लेकिन माओवादियों को अलग-थलग करने के कुचक्र जारी रहे। उधर नारायणहिती महल में बैठा राजा भी शाही सेना के अधिकारियों में मौजूद राजतन्त्रवादियों की मदद से एक बार फिर सत्ता पर क़ाबिज़ होने की घात में था। उसके तार नेपाली कांग्रेस के नेताओं के साथ ही पश्चिमी साम्राज्यवादी ताक़तों, भारत सरकार के प्रतिनिधियों और विश्व हिन्दू महासभा के ज़रिये नेपाल की सीमा से लगे भारतीय क्षेत्र में सक्रिय धार्मिक मूलतत्त्ववादियों के साथ भी जुड़े हुए थे। सभी उचित मौक़े की ताक में थे। क्रान्तिकारी वाम शक्तियाँ और विशेषकर माओवादी कठिन परिस्थिति

का सामना कर रहे थे, पर जागृत जनसमुदाय उनके साथ था और जनवादी गणराज्य की स्थापना की माँग से वह एक क़दम भी पीछे हटने को तैयार नहीं था। मई 2007 में संविधान सभा का चुनाव नवम्बर तक के लिए टाल दिया गया। षड्यन्त्रों का मुक़ाबला करते हुए दबाव बनाने के लिए सितम्बर में माओवादियों ने संविधान सभा के चुनाव से पहले राजतन्त्र को समाप्त करने की माँग रखी और अन्तरिम सरकार से बाहर आ गये। नवम्बर में होने वाला संविधान सभा का चुनाव फिर आगे के लिए टाल दिया गया। एक बार फिर गृहयुद्ध का संकट मँडराने लगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव ने शान्ति प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए नेपाल की पार्टियों से अपने मतभेदों को हल करने की अपील की। इस दौरान सभी बुर्जुआ दल और मीडिया भूस्वामियों और भ्रष्ट अधिकारियों के विरुद्ध क्रान्तिकारी कार्रवाइयों को "माओवादियों के अत्याचार" के रूप में जमकर प्रस्तुत करते रहे और युवा कम्युनिस्ट लीग की "गुण्डागर्दी" का हौआ खड़ा करते रहे, लेकिन इसका जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दिसम्बर 2007 में संसद ने शान्ति समझौते के एक हिस्से के तौर पर राजतन्त्र के उन्मूलन का प्रस्ताव पारित किया और माओवादी फिर सरकार में शामिल हो गये। 10 अप्रैल, 2008 को संविधान सभा के चुनाव की घोषणा हुई, फिर भी अनिश्चितता का माहौल और प्रतिक्रान्ति की आशंका अन्तिम क्षण तक बनी रही।

संविधान सभा के चुनाव में नेकपा (माओवादी) कुल 220 सीटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरकर सामने आयी, हालाँकि क्रान्तिकारी वाम धारा की अन्य पार्टियों को साथ लेकर भी वह सरकार बनाने लायक़ बहुमत पाने की स्थिति में नहीं थी। क्रमशः 110 और 103 सीटों के साथ नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) दूसरे और तीसरे स्थान पर रहीं। मधेस जनाधिकार मंच और तराई मधेस जनतान्त्रिक पार्टी क्रमशः 52 और 20 स्थान पाकर चौथे और पाँचवे स्थान पर रहे। संविधान सभा की इस त्रिशंकु स्थिति ने नेपाल के नये जनतान्त्रिक संघात्मक गणराज्य के संविधान- निर्माण के काम को अत्यधिक जटिल बना दिया है। राजा की सत्ता की समाप्ति और गणराज्य की घोषणा तो अवश्यम्भावी थी, क्योंकि इसमें अड़ंगा डालने वालों को समूची जनता का महाकोप झेलना पड़ता और तब पूरी जनता और अधिक मज़बूती के साथ माओवादियों के साथ लामबन्द हो जाती। इसीलिए नवनिर्वाचित संसद/संविधान सभा ने अपनी पहली ही बैठक में राजतन्त्रवादियों के 4 मतों के मुक़ाबले 571 मतों से राजतन्त्र की समाप्ति और गणराज्य की घोषणा कर दी। लेकिन अब बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों तथा क्रान्तिकारी वाम धारा के बीच संघर्ष की एक कठिन, जटिल, दीर्घकालिक और एक हद तक

अनिश्चिततापूर्ण चक्र की शुरुआत हो चुकी है। नयी सरकार का गठन अभी तक नहीं हो सका है। वर्तमान संसद का मुख्य काम एक संक्रमणकालीन सरकार बनाकर नये संविधान का निर्माण करना है, लेकिन विगत अन्तरिम संविधान के अन्तर्गत ही माओवादियों को सबसे बड़ी पार्टी के रूप में सरकार चलाने का अवसर देने के बजाय नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) हर दिन उन पर नयी–नयी शर्तें थोपने लगे। अन्तरिम संविधान में प्रधानमन्त्री को हटाने के लिए दो–तिहाई बहुमत के प्रावधान को हटाकर वे सामान्य बहुमत से ही उसे हटाने का प्रावधान रखने पर ज़ोर देने लगे। फिर उन्होंने सत्ता का वैकल्पिक केन्द्र बनाने की गुंजाइश रखने के लिए राष्ट्रपति का पद सृजित करने का प्रस्ताव रखा, जो हालाँकि औपचारिक होगा, फिर भी उसके पास सेना के सर्वोच्च कमाण्डर का अधिकार और आपातकालीन अधिकार तो होंगे ही, जिनका आगे सत्ता–संघर्ष की परिस्थिति में इस्तेमाल किया जा सकेगा। इसके बाद उन्होंने यह भी शर्त रखी कि माओवादी जनता द्वारा छीनी गयी सम्पत्ति वापस करें, युवा कम्युनिस्ट लीग को भंग करें और प्रधानमन्त्री बनने से पहले प्रचण्ड जनमुक्ति सेना के सर्वोच्च कमाण्डर का पद छोड़ दें। ये सारी नयी शर्तें शान्ति समझौते की सहमति के एकदम उलट थीं। बुर्जुआओं और संशोधनवादियों ने अपना असली रंग दिखा दिया और सरासर अन्धेरगर्दी पर उतर आये। शुरुआती दौर में पुरज़ोर विरोध के बाद नेकपा (माओवादी) ने राष्ट्रपति पद और सामान्य बहुमत से प्रधानमन्त्री को हटाने के प्रावधानों पर अब सहमति के संकेत दिये हैं, लेकिन राष्ट्रपति पद कोइराला को सौंपने के प्रस्ताव को सिरे से ख़ारिज करते हुए उन्होंने किसी ग़ैर–राजनीतिक सम्मानित नागरिक को राष्ट्रपति बनाने की शर्त रखी है। युवा कम्युनिस्ट लीग को भंग करने, प्रचण्ड द्वारा जनमुक्ति सेना के अध्यक्ष पद से इस्तीफ़ा देने और भूस्वामियों से छीनकर बाँटी गयी ज़मीन को उन्हें वापस करने की शर्तों को मानने से उन्होंने इन्कार किया है। उनका कहना है कि भूस्वामियों से ज़मीन "अन्यायपूर्वक" नहीं ली गयी है, बल्कि किसानों को उनका वाजिब हक़ दिलाया गया है। गतिरोध अभी भी बरक़रार है, हालाँकि समाधान की दिशा में कुछ प्रगति अवश्य हुई है। माओवादियों के पक्ष में जो सबसे बड़ी बात है वह यह कि नये गणराज्य के संविधान–निर्माण के काम में बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियाँ जितना अधिक अड़ंगा डाल रही हैं और शान्ति समझौते के प्रावधानों को ताक पर रखकर जितना अधिक नयी–नयी शर्तें थोप रही हैं, उतना ही अधिक जनता की नज़रों में वे नंगी हो रही हैं और माओवादियों की स्थिति मज़बूत हो रही है।

और इन सबके ऊपर, सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न तो यह है कि एक अल्पमत

सरकार चलाते हुए माओवादी नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) के दबावों का सामना करते हुए कुछ तात्कालिक प्रगतिशील क़दम भी किस प्रकार उठा सकेंगे तथा संविधान सभा में बहुमत न हो पाने की स्थिति में नये गणराज्य का संविधान किस हद तक एक जनवादी संविधान बन पायेगा? प्रश्न यह भी है कि संविधान सभा द्वारा बनने वाला नया संविधान यदि सोवियतों या कम्यूनों जैसी सर्वहारा जनवादी प्रणाली के बजाय पूँजीवादी संसदीय प्रणाली के चुनाव और बहुदलीय जनवाद का ही प्रावधान करेगा तो नेपाल की जनवादी क्रान्ति अपने अग्रवर्ती विकास के लिए कौन-सा रास्ता पकड़ेगी। क्या माओवादी नये सिरे से जनयुद्ध को आगे बढ़ायेंगे? बहुदलीय जनवाद के प्रति नेकपा (माओवादी) के झुकाव को और उनके कुछ अन्य विचलनों को देखते हुए क्या यह ख़तरा नहीं है कि वे पूँजीवादी संसदीय प्रणाली में ही रच-पच जायें? यदि ऐसा नहीं भी होता है, तो यह सवाल फिर भी अहम है कि सर्वहारा सत्ता के किसी वैकल्पिक केन्द्र का या सर्वहारा जनवाद के, सोवियतों जैसे किसी वैकल्पिक मंच का विकास किस रूप में होगा? इन सभी प्रश्नों का कोई सुनिश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता, लेकिन भविष्य के गर्भ में छिपी सम्भावनाओं का आकलन करने के लिए यह ज़रूरी है कि हम नेकपा (माओवादी) की विचारधारात्मक-राजनीतिक अवस्थितियों में विगत लगभग एक दशक के दौरान आने वाले परिवर्तनों, क्रान्तिकारी वाम की दूसरी प्रमुख शक्ति नेकपा (एकता केन्द्र) द्वारा प्रस्तुत आलोचना तथा दोनों पार्टियों के बीच जारी बहस और एकता की प्रक्रिया पर एक सरसरी नज़र डालें।

नेकपा (माओवादी) और नेकपा (एकता केन्द्र) के बीच मतभेद के मुद्दे, राजनीतिक वाद-विवाद और क़दम-ब-क़दम एकता की ओर अग्रवर्ती विकास

पिछले लगभग दो दशकों के दौरान नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर में बिखराव, एकता और ध्रुवीकरण की जो प्रक्रिया चलती रही है उसमें दो पार्टियाँ प्रमुख शक्तियों के रूप में उभरकर सामने आयीं – पहली, नेकपा (माओवादी) और दूसरी नेकपा (एकता केन्द्र)। राजनीतिक विश्लेषक पिछले एक दशक के दौरान नेपाल में माओवादी जनयुद्ध की विकास-प्रक्रिया और उसकी उपलब्धियों-विशिष्टताओं पर काफ़ी कुछ लिखते रहे हैं, लेकिन इस दौरान नेकपा (माओवादी) की अवस्थितियों में आये महत्त्वपूर्ण और नाटकीय बदलाव पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। जनयुद्ध की पूरी अवधि के दौरान

माओवादियों की नीतियों में आये बहुतेरे बदलावों के पीछे क्रान्तिकारी वाम शिविर की इन दो प्रमुख धाराओं के बीच जारी बहसों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन बहसों को पश्चदृष्टि से देखने पर हम पाते हैं कि 1994 में नेकपा (एकता केन्द्र) से अलग होने और 1996 में जनयुद्ध शुरू करने के समय से लेकर बाद के लगभग एक दशक के दौरान नेकपा (माओवादी) ने क्रान्तिकारी व्यवहार के दौरान अपनी बहुत सारी पूर्ववर्ती अवस्थितियों को छोड़कर नेकपा (एकता केन्द्र) की अवस्थितियों को अपना लिया। 2007 तक स्थिति यह हो चुकी थी कि मतभेद के अधिकांश मुद्दे हल हो गये थे। ऊपर हम चर्चा कर आये हैं कि 1994 की फूट के समय नेकपा (एकता केन्द्र) में मतभेद का पहला मुद्दा समाजवादी संक्रमण से जुड़े अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के अनुभवों के आकलन को लेकर था। इस प्रश्न पर आगे चलकर नेकपा (माओवादी) ने मूलतः और मुख्यतः नेकपा (एकता केन्द्र) की अवस्थिति को अपना लिया। मतभेद का दूसरा मुद्दा सर्वहारा जनवाद की समझदारी और उससे जुड़ी समस्याओं को लेकर था। इस प्रश्न पर भी आगे चलकर नेकपा (माओवादी) नेकपा (एकता केन्द्र) के निष्कर्षों पर आ गयी और इस मुद्दे पर दस्तावेज़ भी निकाला। लेकिन इस समस्या के उपचार को लेकर माओवादियों की जो सोच है, उसमें नेकपा (एकता केन्द्र) दक्षिणपन्थी भटकाव का एक नया ख़तरा देख रही है। नेकपा (एकता केन्द्र) का मानना है कि बहुदलीय लोकतन्त्र की भूमिका को नेकपा (माओवादी) बहुत बढ़ा–चढ़ाकर देखती है और उसकी सीमाओं की अनदेखी कर रही है। बहुदलीय प्रतिस्पर्द्धा की बात तो मार्क्स और एंगेल्स ने भी की थी, लेकिन समाजवाद की रक्षा और निर्माण बहुदलीय जनवाद से नहीं बल्कि सोवियत जनवाद से ही हो सकता है। बहुदलीय संसदीय मंच उसका सहायक अंग ही हो सकता है। एकता केन्द्र को माओवादियों की सोच में मदन भण्डारी द्वारा प्रस्तुत बहुदलीय लोकतन्त्र की अवधारणा की ओर झुकाव का ख़तरा दिखायी देता है। उसका मानना है कि सर्वहारा जनवाद या नवजनवाद को स्वीकार करने वाली पार्टियों के बीच प्रतिस्पर्द्धा हो सकती है, लेकिन समाजवादी संक्रमण के दौरान आने वाली जनवाद की समस्या का समाधान उससे नहीं हो सकता। समाधान केवल सोवियत मॉडल में है – कठपुतली सोवियतें नहीं बल्कि प्रभावी सोवियतों में है। उल्लेखनीय है कि इस प्रश्न पर नेकपा (माओवादी) पहले जड़सूत्रवादी अवस्थिति पर खड़ी थी जबकि अब उसकी अवस्थिति में दक्षिणपन्थी भटकाव का ख़तरा दिख रहा है।

मतभेद के तीसरे मुद्दे, यानी क्रान्ति के रास्ते के प्रश्न पर नेकपा (एकता केन्द्र) ने जब लोकयुद्ध के साथ आम बग़ावत के कुछ घटकों के भी संश्लेषण

की बात कही थी तो नेकपा (माओवादी) ने सारसंग्रहवादी कहकर उनकी आलोचना की थी लेकिन बाद में उन्होंने इसी धारणा को अपना लिया और इसे 'प्रचण्ड पथ' का एक घटक बना लिया।

लेकिन 'प्रचण्ड पथ' के प्रश्न पर नेकपा (एकता केन्द्र) का दृष्टिकोण अभी भी तीव्र आलोचनात्मक है। फ़र्क़ यह है कि नेकपा (माओवादी) अब कम से कम उसकी आलोचना पर विचार करने के लिए तैयार है। सन् 2000 में मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओवाद के साथ 'प्रचण्ड पथ' को भी नेपाली क्रान्ति का मार्गदर्शक सिद्धान्त घोषित करते हुए नेकपा (माओवादी) ने एक बार फिर अपनी ही उस अवस्थिति को पलट दिया था, जिस पर खड़े होकर उसने कभी पेरू की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) द्वारा 'गोंज़ालो विचारधारा' को विचारधारात्मक मार्गदर्शक सिद्धान्त बनाने का विरोध किया था। 'प्रचण्ड पथ' के सार्वभौमिक महत्त्व की व्याख्या पार्टी के तीन नेता तीन अलग–अलग तरीक़ों से करते हैं। बाबूराम भट्टराई कहते हैं कि मुख्यतः नेपाली विशिष्टता के बावजूद इसका एक सार्वभौमिक चरित्र भी है। प्रचण्ड का कहना है कि विश्व क्रान्ति को दिशा देने के लिए 'प्रचण्ड पथ' को अभी लम्बा रास्ता तय करना होगा। इस प्रकार सार्वभौमिकता पर उनका ज़ोर भट्टराई से कुछ अधिक है। लेकिन सबसे आगे बढ़कर, केन्द्रीय कमेटी के तीसरे प्रमुख सदस्य किरण इसे 'इक्कीसवीं सदी की विश्व क्रान्ति की आधारशिला' ही घोषित कर देते हैं। इससे अधिक हास्यास्पद बड़बोलापन कुछ और नहीं हो सकता। नेपाल में जारी राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति वस्तुतः इतिहास का एक छूटा हुआ कार्यभार है जो अब पूरा हो रहा है। यह बीसवीं सदी की क्रान्ति है जो इक्कीसवीं सदी में हो रही है। पिछड़ी उत्पादक शक्तियों वाले नेपाल में क्रान्ति के मार्ग का सामान्य अनुभव किसी भी रूप में पूँजीवादी विकास के रास्ते पर आगे बढ़ चुके भारत, चीन, द. अफ़्रीका, नाइजीरिया, मिस्र, इण्डोनेशिया, मलेशिया, ब्राज़ील, चीले, अर्जेण्टीना, मेक्सिको आदि तीसरी दुनिया के उन अधिकांश देशों की क्रान्तियों का मार्गदर्शक नहीं हो सकता जहाँ आधारभूत–अवरचनागत उद्योगों और वित्तीय पूँजी की शक्ति का काफ़ी विकास हो चुका है, भूमि–सम्बन्धों में पूँजीवादी बदलाव के बाद वर्ग–संश्रय बदल चुका है और जहाँ सर्वहारा–अर्द्धसर्वहारा आबादी की जनसंख्या आज आबादी के अन्य वर्गों की अपेक्षा सबसे अधिक हो चुकी है। स्पष्ट है कि बदली विश्व–परिस्थितियों के बारे में नेकपा (माओवादी) की सोच निहायत सतही, यान्त्रिक और बचकानी रही है। 'प्रचण्ड पथ' की अवधारणा के बड़बोलेपन को समझने के लिए संक्षेप में यह भी जान लेना ज़रूरी है कि इसके कौन से संघटक अवयव गिनाये जाते हैं!

'प्रचण्ड पथ' का एक संघटक अवयव यह बताया गया कि इसने दक्षिणपन्थी संशोधनवाद और कठमुल्लावादी संशोधनवाद – इन दोनों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए क्रान्तिकारी मार्क्सवाद को आभ्यन्तरीकृत किया। लेकिन यह 'प्रचण्ड पथ' की नयी विशिष्टता नहीं, मार्क्सवाद की पुरानी विशिष्टता है। मार्क्सवाद अपने जन्मकाल से ही इन दोनों प्रकार के संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष करते हुए विकसित हुआ है।

'प्रचण्ड पथ' का दूसरा संघटक अवयव यह बताया गया कि इसने स्तालिन द्वारा प्रस्तुत एकाश्मी पार्टी की धारणा को ख़ारिज करके दो लाइनों के संघर्ष और आन्तरिक संघर्ष की सजीव प्रक्रिया से लैस पार्टी की धारणा को स्थापित किया। यह भी एक निहायत हास्यास्पद बात है। दो लाइनों के संघर्ष की सजीव आवयविक व्यवस्था से लैस पार्टी की सोच पार्टी की लेनिनवादी अवधारणा का बुनियादी सूत्र है, जिससे स्तालिन काल में कुछ विचलन पैदा हुआ। पुनः माओ त्से-तुङ ने इस अवधारणा को न केवल स्थापित किया बल्कि सांस्कृतिक क्रान्ति के दौर तक आते-आते नयी ऊँचाइयों तक विकसित किया। प्रचण्ड का इसमें कोई भी मौलिक अवदान नहीं माना जा सकता। पार्टी गठन के सन्दर्भ में नेकपा (माओवादी) का यह दावा है कि नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास के वस्तुपरक विश्लेषण के द्वारा उसने पार्टी एकता को नयी ऊँचाइयों तक विकसित किया और यह भी 'प्रचण्ड पथ' की एक विशिष्टता है। इस दावे की सच्चाई क्या है? मोहन बिक्रम सिंह द्वारा पुष्पलाल को 'ग़द्दार' घोषित करने से अलग हटकर नेकपा (माओवादी) ने उनकी सकारात्मक भूमिका का सही मूल्यांकन रखा, लेकिन साथ ही उसने पुष्पलाल के दक्षिणपन्थी भटकावों की पूरी तरह से अनदेखी की। इस मायने में भी नेकपा (एकता केन्द्र) द्वारा प्रस्तुत मूल्यांकन अधिक सन्तुलित है। जहाँ तक पार्टी एकता का प्रश्न है, 'प्रचण्ड पथ' के सूत्रीकरण ने उसके रास्ते में कुछ नयी बाधाएँ ही पैदा कीं।

नेकपा (माओवादी) ने दक्षिण एशिया सोवियत संघ के अपने प्रस्ताव को भी एक सकारात्मक अवदान मानते हुए इसे 'प्रचण्ड पथ' का एक घटक तत्त्व बताया। इस सन्दर्भ में पहली बात तो यह है कि आज इस प्रस्ताव की कोई व्यावहारिक उपयोगिता नहीं है और यह केवल एक मंसूबावादी विचार ही हो सकता है। ऐसा कोई संघ दक्षिण एशिया के देशों में सर्वहारा क्रान्ति के बाद ही बन सकता है और वह भी तब, जबकि उन सभी देशों की सर्वहारा सत्ताएँ उसे स्वीकार करें। दूसरी बात यह कि ऐसे किसी क्षेत्रीय संघ का गठन विश्व सर्वहारा क्रान्ति के अग्रवर्ती विकास की अपरिहार्य शर्त या एकमात्र रास्ता नहीं हो सकता। ऐसी सम्भावना हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है। तीसरी बात यह कि क्रान्ति के पहले और

क्रान्ति के बाद दुनियाभर की कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा अन्तरराष्ट्रीयतावादी भावना से एक दूसरे की मदद करना और किसी प्रकार के अन्तरराष्ट्रीय मंच का गठन करना एक बात है और दक्षिण एशिया सोवियत संघ जैसी किसी चीज़ का निर्माण सर्वथा अलग बात है। चौथी बात यह कि दक्षिण एशिया के बड़े, विकसित देशों में क्रान्तिकारी वाम की शक्तियाँ अभी क्रान्ति को नेतृत्व दे पाने की स्थिति से काफ़ी दूर हैं और आज ऐसे किसी संघ की बात सोचना ख़याली पुलाव से अधिक कुछ भी नहीं है। पाँचवी बात यह कि आज इस प्रकार की बातें करना बड़े देशों की पार्टियों के 'बड़े भाइयों जैसे रवैये' को और क्रान्ति के आयात-निर्यात की धारणा को बढ़ावा देने का काम कर सकता है।

'प्रचण्ड पथ' की एक मुख्य विशेषता यह बतायी गयी कि इसने सशस्त्र विद्रोह की कतिपय रणनीतियों को दीर्घकालिक लोकयुद्ध के क्रान्ति-मार्ग के फ़्रेमवर्क में समाहित कर लिया। सच्चाई यह है कि नेकपा (एकता केन्द्र) ने जब इस प्रकार के संश्लेषण की बात की थी तो माओवादी नेतृत्व ने सारसंग्रहवादी कहते हुए उनकी आलोचना की थी। नेकपा (एकता केन्द्र) ने 1996 के अपने पहले राष्ट्रीय सम्मेलन में ही यह बात कही थी। साथ ही, 'प्रचण्ड पथ' इस प्रकार के संश्लेषण को इक्कीसवीं सदी की सर्वहारा क्रान्तियों की एक सार्वभौमिक विशिष्टता बताता है जबकि ऐसा मानने का कोई भी तर्कसंगत आधार नहीं है।

रणनीतिक दृढ़ता और रणकौशलात्मक लचीलेपन को नेकपा (माओवादी) 'प्रचण्ड पथ' की एक और विशिष्टता बताती है। यह विशिष्टता लेनिन के ज़माने से ही सर्वहारा पार्टियों की परिपक्वता की निशानी मानी जाती रही है। यह कोई मौलिक खोज नहीं है। सच्चाई यह है कि 'रणकौशलात्मक लचीलेपन' के नाम पर नेकपा (माओवादी) अपनी नीतियों में अक्सर बेहद अस्थिरता का संकेत देती रही है और उसका नेतृत्व अक्सर निहायत ग़ैरज़िम्मेदाराना ढंग से विचारधारात्मक-रणनीतिक उसूली मसलों को भी रणकौशल और कूटनीति का मसला बना देता रहा है। यह प्रवृत्ति यदि बनी रही तो ख़तरनाक ढंग से दक्षिणपन्थी विपथगमन का सबब बन सकती है। 1999 में नेकपा (माओवादी) ने वामपन्थियों, देशभक्तों और जनवादी ताक़तों की संयुक्त क्रान्तिकारी सरकार का रणकौशलात्मक नारा दिया। बाद में तत्कालीन संविधान को रद्द करने, संसद भंग करने, अन्तरिम सरकार के गठन और संविधान सभा का रणकौशलात्मक नारा आया। उसके बाद उन्होंने सर्व-पार्टी सम्मेलन, अन्तरिम सरकार और एक 'लोक संविधान की गारण्टी' का नारा दिया। इसके बाद एक केन्द्रीय लोक सरकार का रणकौशलात्मक नारा दिया गया, जिसे ढाई वर्ष बाद पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन ने

मुख्य रणनीतिक नारा बना दिया।

नेकपा (माओवादी) रणकौशल ही नहीं, बल्कि विचारधारा और राजनीति के बुनियादी उसूली प्रश्नों पर भी ग़ैरउसूली लचीला रुख़ अपनाती रही है। 2003 तक उनका आकलन था कि जनयुद्ध अब जल्दी ही रणनीतिक आक्रमण के दौर में प्रविष्ट हो जायेगा, फिर इस आकलन से पीछे हटते हुए उन्हें संविधान सभा के चुनाव और संघात्मक गणराज्य की स्थापना के रणकौशलात्मक नारे तक आना पड़ा। लेकिन फिर इस रणकौशलात्मक अवस्थिति से आगे बढ़कर उनका नेतृत्व सर्वहारा जनवाद की ही नयी अवधारणा प्रस्तुत करने लगा और बहुदलीय संसदीय जनवादी प्रणाली और बहुदलीय प्रतिस्पर्द्धा को उसका प्रमुख आधार बताते हुए प्रकारान्तर से सोवियत और कम्यून व्यवस्था की ग्रासरूट से लेकर शीर्ष तक की सर्वहारा जनवादी प्रणाली की अपरिहार्यता को ख़ारिज करने की दक्षिणपन्थी अवस्थिति के निकट जा पहुँचा। नेकपा (माओवादी) के नेतृत्व की एक विशिष्टता यह रही है कि आलोचना होने पर वह अपनी अवस्थितियों को बार–बार बदलने वाले बयान भी देता रहा है। एक दूसरी विशिष्टता यह रही है कि विगत दस वर्षों के दौरान उन्होंने अपनी कई पुरानी अवस्थितियों को बिना खुली आत्मालोचना या आत्मविश्लेषण के बदल लिया है और नेकपा (एकता केन्द्र) की अवस्थितियों को चुपचाप अपना लिया है। अपनी "वामपन्थी" ग़लतियों को कोई भी पार्टी जब इस प्रकार की पैबन्दसाज़ी से या इंच–इंच पीछे खिसककर ठीक करने की कोशिश करती है तो क़तारों की राजनीतिक शिक्षा नहीं हो पाती है और पेण्डुलम के दूसरे छोर तक जा पहुँचने और पार्टी के दक्षिणपन्थी 'प्रैगमेटिज़्म' के पंककुण्ड में जा गिरने का ख़तरा पैदा हो जाता है।

नेकपा (एकता केन्द्र) नेकपा (माओवादी) की कमोबेश इसी आशय की आलोचना लगातार रखती रही है। अधिकांश मामलों में नेकपा (माओवादी) ने धीरे–धीरे नेकपा (एकता केन्द्र) की ही अवस्थितियों को अपना लिया है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि रणकौशलात्मक नारे के रूप में संविधान सभा और गणतन्त्र के नारे को सबसे पहले नेकपा (एकता केन्द्र) ने ही आगे बढ़ाया (रणनीतिक नारे के रूप में तो यह बात 1950 से ही नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी कर रही थी)। माओवादियों ने गणतन्त्र के संस्थागत विकास का नारा दिया। एकता केन्द्र ने अन्तरिम सरकार, संविधान सभा और गणतन्त्र का नारा इस तर्क के साथ दिया कि इससे राजनीतिक प्रणाली का फैसला स्वयं जनता करेगी तथा इस नारे का साम्राज्यवादी और अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएँ भी विरोध नहीं कर सकेंगी। माओवादियों के विपरीत एकता केन्द्र निर्णायक युद्ध द्वारा केन्द्रीय सत्ता पर क़ब्ज़ा सम्भव नहीं मानती थी। बाद में माओवादी भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे और क्रान्ति

की दीर्घकालिकता की नयी समझ के साथ संविधान सभा, गणतन्त्र और अन्तरिम सरकार की माँग को स्वीकार कर वे सात पार्टियों के गठबन्धन के साथ समझौते की मेज़ पर आये।

चुनाव प्रणाली को लेकर नेकपा (एकता केन्द्र) का शुरू से ही स्टैण्ड था कि पूर्ण समानुपातिक प्रणाली से चुनाव होना चाहिए। एक महीने तक नेकपा (माओवादी) इस माँग से सहमत थी, लेकिन नवम्बर में चुनाव की तिथि घोषित होने के बाद उन्होंने अन्तरिम संसद से गणतन्त्र की घोषणा और पूर्ण समानुपातिक प्रणाली की माँग छोड़ दी और गठबन्धन के अन्य दलों के साथ हो लिये। लेकिन कुछ समय बाद फिर नेकपा (माओवादी) के प्लेनम ने यह प्रस्ताव पारित किया कि अगर गणतन्त्र की घोषणा नहीं हुई और पूर्ण समानुपातिक प्रणाली के आधार पर चुनाव नहीं कराया गया तो उसमें वे भागीदारी नहीं करेंगे। फिर कुछ समय बाद वे कहने लगे कि जून 2007 के बाद संविधान सभा के चुनाव के लिए परिस्थिति अनुकूल नहीं रह गयी है। नेकपा (एकता केन्द्र) का तब मानना था कि क्रान्तिकारी वाम के समक्ष तीन विकल्प हैं : पहला, संविधान सभा के चुनाव में भागीदारी, दूसरा, जनउभार के द्वारा क्रान्तिकारी वाम नेतृत्व में गणतन्त्र की स्थापना और तीसरा, राजनीतिक तबाही। अप्रैल 2006 का जनादेश पहले विकल्प के लिए है और परिस्थितियाँ भी इसी के लिए अनुकूल हैं। यदि साम्राज्यवादियों–प्रतिक्रियावादियों की साज़िशों से पहला विकल्प सफल नहीं हो सकेगा तो जनता इसे स्वयं समझकर दूसरे विकल्प का रास्ता पकड़ेगी। नेकपा (माओवादी) भी आख़िरकार इसी निष्कर्ष पर पहुँची।

जनयुद्ध के दौरान माओवादी क़तारों के बीच सामाजिक फासीवादी और सैन्यवादी प्रवृत्तियाँ विकसित होने और उनके द्वारा बल–प्रयोग की अवधारणा को ग़लत ढंग से लागू करने की (यानी कई मामलों में मित्र शक्तियों और जनता के ख़िलाफ़ भी बल प्रयोग करने की) नेकपा (एकता केन्द्र) आलोचना करती रही। उसका कहना था कि इसकी विचारधारात्मक जड़ सर्वहारा जनवाद के प्रति माओवादियों के ग़लत दृष्टिकोण में निहित है। पार्टी–निर्माण की प्रक्रिया को लेकर भी नेकपा (एकता केन्द्र) ने सवाल उठाया और यह आलोचना रखी कि पार्टी के भीतर वैचारिक–राजनीतिक शिक्षा पर ज़ोर न देने और कम्युनिस्ट मूल्यों का प्रचार नहीं करने के कारण माओवादी क़तारों में वीरता और जुझारूपन के बावजूद नैतिक पतन की घटनाएँ सामने आती रही हैं। कालान्तर में नेकपा (माओवादी) के नेतृत्व ने भी इन आलोचनाओं को एक हद तक स्वीकार किया और 'क्रान्ति के भीतर क्रान्ति' की आवश्यकता पर बल देना शुरू किया। नेकपा (एकता केन्द्र) माओवादियों के राजनीतिक व्यवहार की विसंगतियों पर बल देते

हुए यह मानती रही है कि उनके भीतर फ़िलहाल तीन प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं : संकीर्णतावादी जड़सूत्रवादी प्रवृत्ति, दक्षिणपन्थी 'प्रैग्मेटिज़्म' की प्रवृत्ति और क्रान्तिकारी प्रवृत्ति। फ़िलहाल क्रान्तिकारी प्रवृत्ति प्रधान है, लेकिन दक्षिणपन्थी भटकाव का भी पर्याप्त ख़तरा मौजूद है।

इन मतभेदों के बावजूद, संविधान सभा के चुनाव के एक वर्ष पहले तक लाइन और रणनीति के बुनियादी सवालों पर दोनों संगठनों के बीच बुनियादी एकता बनने लगी थी और स्थिति ऐसी बन चुकी थी कि अन्य मतभेदों पर एक पार्टी के भीतर संघर्ष चलाया जा सकता था। इस आकलन के आधार पर, क्रान्ति के दीर्घकालिक हित में एक वर्ष पहले नेकपा (एकता केन्द्र) ने पार्टी एकता के लिए पहल की। नेकपा (माओवादी) ने शुरू में तो इसे गम्भीरता से नहीं लिया, लेकिन फिर वार्ता आगे बढ़ी। नेकपा (एकता केन्द्र) का आकलन था कि दोनों पार्टियों में एकता या कम से कम तालमेल की स्थिति में क्रान्तिकारी वाम के पक्ष में देशव्यापी लहर पैदा की जा सकती थी, अन्य छोटी क्रान्तिकारी वाम पार्टियों और नेकपा (एमाले) को भी गठबन्धन में आने को विवश किया जा सकता था और क्रान्तिकारी वाम धारा दो तिहाई बहुमत भी हासिल कर सकती थी। आगे चलकर चुनाव परिणामों ने सिद्ध कर दिया कि यह आकलन काफ़ी हद तक सही था। चुनाव के ठीक पहले एकता के लिए नीतिगत सहमति पर प्रचण्ड और प्रकाश का संयुक्त वक्तव्य जारी हुआ, चुनाव के लिए संयोजन समिति बनी और तालमेल का निर्णय हुआ। लेकिन नेकपा (माओवादी) के संकीर्णतावादी रुख़ के कारण यह प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ सकी और चुनाव में क्रान्तिकारी वाम के मतों में बँटवारे के चलते भारी नुक़सान हुआ। नेकपा (माओवादी) ने चुनाव में कुल 220 सीटें हासिल कीं, जबकि नेकपा (एकता केन्द्र) के जनमोर्चा, नेपाल को 7 सीटें मिलीं। क्रान्तिकारी वाम धारा के अन्य दलों – मोहन बिक्रम सिंह के राष्ट्रीय जनमोर्चा को 4, नेपाल मज़दूर किसान पार्टी को 4 और नेकपा (एकीकृत) को 2 सीटें मिलीं। चूँकि जनता ने नेकपा (माओवादी) को ही जीत की सम्भावना की दृष्टि से बेहतर विकल्प मानते हुए मत दिया, इसलिए सीटों की दृष्टि से नेकपा (एकता केन्द्र) की शक्ति और जनाधार का अनुमान लगाना ग़लत होगा। बहरहाल, क्रान्तिकारी वाम धारा के मतों के विभाजन के कारण ही त्रिशंकु संसद की स्थिति पैदा हुई, इतना तय है।

नये संविधान के निर्माण के बारे में नेकपा (एकता केन्द्र) का चुनाव के पहले से ही यह नज़रिया था कि ऐसी स्थिति में जबकि बुर्जुआ ताक़तें पारम्परिक

बुर्जुआ गणतन्त्र स्थापित करने की हरचन्द कोशिश कर रही हैं, एक नवजनवादी संविधान सम्भव नहीं होगा। अतः वर्तमान संक्रमणकालीन परिस्थिति का इस्तेमाल करके ज़्यादा से ज़्यादा जनोन्मुखी गणतन्त्र बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसमें तीन बातों पर ज़ोर दिया जाना चाहिए : (1) राष्ट्रीय स्वाधीनता/सम्प्रभुता का प्रश्न, सभी असमान सन्धियों को ख़ारिज करना, (2) राजनीतिक अधिकार ही नहीं बल्कि आर्थिक लोकतन्त्र भी, और (3) राज्य और समाज के पुनर्गठन का काम। वर्तमान परिस्थितियों में नेकपा (माओवादी) भी कमोबेश इस दृष्टिकोण से सहमत है और आम सहमति के इस आधार पर दोनों संगठनों के बीच एकता की प्रक्रिया एक बार फिर आगे बढ़ रही है।

यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि सुदृढ़–सुसंगत विचारधारात्मक स्थिति और परिस्थितियों के अधिक सटीक आकलन के बावजूद आख़िरकार नेकपा (एकता केन्द्र) के पीछे छूट जाने के कारण क्या हो सकते हैं? यह स्पष्ट होना चाहिए कि लाइन का सही होना पार्टी की सफलता की बुनियादी गारण्टी तो है, लेकिन वही अपनेआप में सबकुछ नहीं होती। एक बार लाइन तय होने के बाद क़तारें निर्णायक होती हैं, पर यह स्वतः नहीं होता। क़तारों और ग्रासरूट संगठनकर्ताओं को उस लाइन पर अमल के लिए शिक्षित–प्रशिक्षित करना नेतृत्व की प्रमुख ज़िम्मेदारी होती है। यदि ऐसा सही ढंग से न किया जाये तो जनता को गोलबन्द और संगठित करने के स्तर पर क़तारों और ग्रासरूट संगठनकर्ताओं में पहलक़दमी, त्वरित निर्णय–क्षमता और जुझारूपन का अभाव पैदा होने लगता है। हमें प्रतीत होता है कि एक हद तक नेकपा (एकता केन्द्र) के साथ यह बात रही है। दूसरी बात, क्रान्तिकारी संकट के विस्फोट के बारे में पार्टी के आकलन में यदि थोड़ी भी ग़लती हो और वह सही समय पर सटीक पहल लेने से चूक जाये तो फिर वर्षों के लिए पीछे छूट जाती है। संयुक्त मोर्चा और जनान्दोलन को विकसित करने के मामले में नेकपा (एकता केन्द्र) काफ़ी आगे थी, लेकिन जन मुक्ति सेना गठित करने और जनयुद्ध शुरू करने के मामले में नेकपा (माओवादी) ने एकदम सही समय पर सटीक पहल की और इस मामले में नेकपा (एकता केन्द्र) का परिस्थितियों का आकलन ठीक नहीं निकला। वह जनयुद्ध का कोई वैकल्पिक मॉडल भी नहीं खड़ा कर सकी। ख़ासतौर पर 2001 के दरबार हत्याकाण्ड के बाद देश की परिस्थितियाँ इसके लिए अनुकूल थीं कि जनान्दोलन के साथ–साथ नेकपा (एकता केन्द्र) जनयुद्ध भी शुरू कर दे, पर वह ऐसा नहीं कर सकी। सही आकलन, त्वरित निर्णय और पहलक़दमी के इस अभाव के चलते वह पीछे छूट गयी और नेकपा (माओवादी) के नेतृत्व और क़तारों के सैन्यवादी–दुस्साहसवादी भटकाव और अन्य विचारधारात्मक–

राजनीतिक ग़लतियों की आलोचना करके उन्हें ठीक करने का अवसर देने तथा राजतन्त्रवादी एवं बुर्जुआ ताक़तों के हमलों से जनयुद्ध की उपलब्धियों को बचाने की कोशिश करना उनका क्रान्तिकारी कार्यभार बनकर रह गया। नेकपा (माओवादी) के तमाम भटकावों के बावजूद, क़तारों की पहलक़दमी और जुझारूपन उनकी एक बहुत बड़ी विशिष्टता रही है। जनयुद्ध शुरू करने का उनका निर्णय सही था और व्यवस्था के संकट का उन्हें भरपूर लाभ मिला। जनयुद्ध को निर्णायक विजय की दिशा में आगे बढ़ाने के ग़लत आकलन को उन्होंने समय रहते बदल लिया और संविधान सभा के चुनाव में भागीदारी के लिए तैयार हो गये। इसका उन्हें भरपूर लाभ मिला। एक क्रान्तिकारी विकल्प के तौर पर जनता को उन्हीं की सफलता में विश्वास था, इसलिए नेकपा (एकता केन्द्र) और कुछ अन्य क्रान्तिकारी वाम दलों की राजनीति का समर्थन करने वाले जनसमुदाय के एक बड़े हिस्से ने भी चुनाव में नेकपा (माओवादी) को ही अपना वोट दिया। अब नेपाल की जनवादी क्रान्ति के अग्रवर्ती विकास का काफ़ी कुछ दारोमदार इस बात पर निर्भर है कि भविष्य में क्रान्तिकारी वाम धारा की ये दो मुख्य पार्टियाँ कितनी जल्दी और कितनी दृढ़ता के साथ अपनी एकता-प्रक्रिया को अंजाम तक पहुँचाती हैं। माओ द्वारा निर्दिष्ट क्रान्ति के तीन चमत्कारी हथियारों में से नेकपा (माओवादी) ने पार्टी और जनमुक्ति सेना के गठन के मामले में अनुभव हासिल किया है और क़तारों की पहलक़दमी और जुझारूपन उसकी विशिष्टता है। नेकपा (एकता केन्द्र) ने पार्टी और संयुक्त मोर्चे के निर्माण तथा जनान्दोलन के मामले में महारत हासिल की है और इसके नेतृत्व की विचारधारात्मक- राजनीतिक समझ की सुसंगति और दृढ़ता इसकी विशिष्टता है। भविष्य में यदि इनकी एकता हो जाती है तो एक पार्टी के भीतर तमाम भटकावों के विरुद्ध दो लाइनों का संघर्ष चलाना और पार्टी को आगे बढ़ाना सुगम होगा। यदि ऐसा नहीं होता तो नेकपा (माओवादी) की सर्वहारा जनवाद विषयक धारणा में आज जो दक्षिणपन्थी विच्युति दीख रही है और बहुदलीय जनतन्त्र के प्रति जो अतिरिक्त आग्रह या झुकाव पैदा हुआ है, वह उसे विपथगामी भी बना सकता है। ऐसी स्थिति में, नेकपा (एकता केन्द्र) यदि अपनी क़तारों और संगठनकर्ताओं को जुझारूपन की क्षमता से लैस कर सके, सही समय पर सही निर्णय त्वरित ढंग से ले सके और हथियारबन्द संघर्ष की सही ढंग से तैयारी कर सके तो नया क्रान्तिकारी नेतृत्वकारी विकल्प के रूप में सामने आ सकता है और नेपाली क्रान्ति को आगे की मंज़िलों में विकसित कर सकता है। लेकिन अभी तो यही आशा है और यही अपेक्षा भी, कि इन दोनों पार्टियों का नेतृत्व वक़्त के तक़ाज़े को समझेगा और नेपाली जनता की क्रान्तिकारी आकांक्षाओं को साकार

करने के लिए अपनी एकता की प्रक्रिया को गम्भीरता से और तेज़ गति के साथ आगे बढ़ायेगा।

इस समूची तस्वीर को और अधिक साफ़ करने के लिए हम आज नेपाल में मौजूद प्रमुख संशोधनवादी पार्टियों और क्रान्तिकारी वामपन्थी पार्टियों की और उनके बीच जारी ध्रुवीकरण की प्रक्रिया की आगे संक्षेप में चर्चा करेंगे।

नेपाल में संशोधनवादी और क्रान्तिकारी वाम शिविर और ध्रुवीकरण की जारी प्रक्रिया

अब तक की चर्चा से स्पष्ट है कि नेकपा (माओवादी) और नेकपा (एकता केन्द्र) ही नेपाली क्रान्तिकारी वाम शिविर की दो सर्वप्रमुख शक्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त एक अन्य प्रमुख पार्टी मोहन बिक्रम सिंह के नेतृत्व वाली नेकपा (मसाल) है, जिसका जनसंगठन राष्ट्रीय जनमोर्चा है। राष्ट्रीय जनमोर्चा ने विगत चुनाव में चार सीटें हासिल की हैं। इस पार्टी की 1991 तक की चर्चा लेख में ऊपर आ चुकी है। 1990 के जनान्दोलन के समय मोहन बिक्रम सिंह नेपाली कांग्रेस के साथ सहयोग के प्रश्न पर संयुक्त वाम मोर्चा से असहमत थे। उन्होंने संविधान सभा की माँग करते हुए राजशाही के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष पर ज़ोर दिया, लेकिन इसके लिए कभी कोई तैयारी नहीं की। 1991 के आम चुनाव का उन्होंने बहिष्कार किया, लेकिन 1994 में मध्यावधि चुनाव में हिस्सा लिया। 2002 में नेकपा (मसाल) का नेकपा (एकता केन्द्र) में विलय हो गया और मोहन बिक्रम सिंह नेकपा (एकता केन्द्र–मसाल) के महासचिव बने। 2006 में मोहन बिक्रम सिंह सात पार्टियों के गठबन्धन में शामिल होने के विचार का विरोध करते हुए पुनः अलग हो गये। 2007 में सातवीं पार्टी कांग्रेस करके मोहन बिक्रम धड़े ने फिर से नेकपा (मसाल) के तौर पर काम करना शुरू किया। मोहन बिक्रम सिंह दक्षिणपन्थी और "वामपन्थी" अतियों के बीच अननुमेय ढंग से दोलन करते हुए आज काफ़ी हद तक अपनी साख गँवा चुके हैं। नेकपा (चौथी कांग्रेस) के संस्थापक के रूप में सही विचारधारात्मक अवस्थिति अपनाकर तथा कम्युनिस्ट क़तारों की एक पीढ़ी तैयार कर उन्होंने कम्युनिस्ट आन्दोलन की जितनी महत्त्वपूर्ण सेवा की, उससे कहीं अधिक उन्होंने इतिहास के एकांगी मूल्यांकन की अपनी पद्धति और नौकरशाहाना संकीर्णतावादी सांगठनिक कार्यशैली के चलते नुक़सान पहुँचाया। इन दिनों दूसरे अतिवादी छोर पर खड़े होकर नेकपा (माओवादी) के विरोध को उन्होंने अपना प्रमुख कार्यभार बनाया हुआ है। लेकिन दो प्रमुख पार्टियों में एकता की प्रक्रिया यदि आगे बढ़ती है तो इस पार्टी को भी

देर–सबेर उस प्रक्रिया का भागीदार बनना पड़ेगा, या फिर नेतृत्व को किनारे लगाकर क़तारों का बहुलांश मुख्य धारा में शामिल हो जायेगा।

एक अन्य संगठन नेपाल मज़दूर–किसान पार्टी की ऊपर चर्चा की जा चुकी है। इस संगठन का नेतृत्व नेपाल की सामाजिक–आर्थिक संरचना में आये बदलावों के बारे में तो संजीदगी से सोचता है, लेकिन साथ ही विचारधारात्मक मामलों में दक्षिणपन्थी भटकाव का शिकार है तथा पार्टी गठन के सन्दर्भ में संकीर्ण ग्रुप–मानसिकता और अलगाववादी मानसिकता का शिकार है। इसका आधार संकीर्ण क्षेत्रीय ढंग से मुख्यतः काठमाण्डो घाटी में भक्तपुर तक सिमटा हुआ है।

क्रान्तिकारी वाम शिविर का एक अन्य संगठन नेकपा (एकीकृत) है। विगत चुनाव में इस संगठन ने भी दो सीटें हासिल की थीं। इसका गठन 2007 में तीन ग्रुपों के विलय से हुआ था : ऋषि कत्तल के नेतृत्व में नेकपा (माले) (सी.पी. मैनाली) से अलग हुआ एक ग्रुप, राजबीर के नेतृत्व में नेकपा (एकता केन्द्र) से अलग हुआ एक ग्रुप और सीताराम तमांग के नेतृत्व में नेकपा (मालेमा–केन्द्र) से अलग हुआ एक ग्रुप।

एक अन्य कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन नेकपा (मालेमा) की स्थापना 1981 में कृष्ण दास श्रेष्ठ ने की थी जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। बीच में इससे अलग होकर एक अन्य ग्रुप नन्द कुमार परसाई के नेतृत्व में नेपाल साम्यवादी पार्टी (मालेमा) बनी थी जिसका 2005 में फिर नेकपा (मालेमा) के साथ विलय हो गया और नेकपा (मालेमा–केन्द्र) अस्तित्व में आया। इसमें से अलग होकर सीताराम तमांग ग्रुप नेकपा (एकीकृत) में शामिल हो गया। नेकपा (मालेमा–केन्द्र) का मार्च 2007 में नेकपा (माओवादी) में विलय हो गया।

इनके अतिरिक्त भी छोटी–छोटी क्रान्तिकारी वामपन्थी पार्टियाँ हैं जो नेपाल की राष्ट्रीय राजनीति में अपना विशेष स्थान या महत्त्व नहीं रखतीं। इनका भविष्य मुख्य पार्टियों के बीच एकता प्रक्रिया के अग्रवर्ती विकास पर निर्भर करता है।

जहाँ तक संशोधनवादी वाम शिविर की बात है, वहाँ भी ध्रुवीकरण की प्रक्रिया जारी रही है। ज़ाहिर है कि नेकपा (एमाले) ही सबसे बड़ी संशोधनवादी पार्टी है। दूसरे नम्बर पर सी.पी. मैनाली के नेतृत्व वाली नेकपा (माले) आती है।

1986 में सहाना प्रधान के नेतृत्व वाली नेकपा (पुष्पलाल) और नेकपा (मनमोहन अधिकारी) की एकता के बाद नेकपा (मार्क्सवादी) के अस्तित्व में आने और फिर 1991 में नेकपा (माले) के साथ उसकी एकता के बाद नेकपा (एमाले) के गठन की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। पुनः 1991 में ही नेकपा (एमाले) से अलग होकर प्रभुनाथ चौधरी ने नेकपा (मार्क्सवादी) का गठन

किया। 2005 में नेकपा (युनाइटेड) के साथ इसकी एकता के बाद नेकपा (युनाइटेड मार्क्सिस्ट) अस्तित्व में आया। नेकपा (युनाइटेड) 1991 में विष्णु बहादुर मानन्धर के नेतृत्व वाले नेकपा (डेमोक्रेटिक), नेकपा (बर्मा) और नेकपा (तुलसीलाल अमात्य) नामक तीन पुरानी संशोधनवादी पार्टियों के विलय से गठित हुई थी। नेकपा (युनाइटेड मार्क्सिस्ट) नेपाल की तीसरी प्रमुख संशोधनवादी पार्टी है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य छोटी-छोटी संशोधनवादी पार्टियाँ भी हैं।

यदि क्रान्तिकारी वाम शिविर की मुख्य दो पार्टियों की एकता-प्रक्रिया सही दिशा में आगे बढ़ती है और यदि क्रान्तिकारी वाम वर्तमान संक्रमण काल का सही ढंग से लाभ उठाने में सफल रहता है तो निश्चय ही सत्ता का अवसरवादी खेल ज़्यादा से ज़्यादा नंगे रूप में खेलते हुए नेकपा (एमाले) और नेकपा (माले) का नेतृत्व न केवल जनता बल्कि अपनी क़तारों के सामने भी ज़्यादा से ज़्यादा बेनक़ाब होता चला जायेगा। इन दो संशोधनवादी पार्टियों की क़तारों में अभी भी ईमानदार आम कार्यकर्ता काफ़ी हैं, जो फिर टूटकर क्रान्तिकारियों के साथ आ खड़े होंगे। यह प्रक्रिया जनयुद्ध के बारह वर्षों के दौरान और संविधान सभा के चुनाव के दौरान एक हद तक चली भी थी। आगे भी इसकी सम्भावना है।

चुनाव-परिणामों का विश्लेषण : कुछ और महत्त्वपूर्ण पहलू

ऊपर हम इस बात की चर्चा कर आये हैं कि संविधान सभा के चुनाव के पूर्व यदि नेकपा (एकता केन्द्र) और नेकपा (माओवादी) के बीच एकता या कम से कम तालमेल भी हो जाता तो क्रान्तिकारी वाम सरकार बनाने लायक़ बहुमत आसानी से हासिल कर सकता था। यदि क्रान्तिकारी वाम शिविर के बीच तालमेल हो पाता तो दो-तिहाई बहुमत भी हासिल किया जा सकता था। ऐसा न हो पाने के लिए नेकपा (माओवादी) की अहम्मन्यता व अतिआत्मविश्वास एक हद तक ज़िम्मेदार था। साथ ही, मोहन बिक्रम सिंह के नेतृत्व वाली नेकपा (मसाल) व ने.म.कि.पा., नेकपा (यूनिफ़ायड) जैसी छोटी क्रान्तिकारी वाम पार्टियों की संकीर्ण गुटवादी मानसिकता की भी महत्त्वपूर्ण नकारात्मक भूमिका थी।

लेकिन बात केवल इतनी ही नहीं थी। चुनाव परिणामों का विश्लेषण व्यापक सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए। संविधान सभा का चुनाव पूँजीवादी संसदीय चुनाव-प्रणाली के फ़्रेमवर्क के अन्तर्गत हुआ। इस फ़्रेमवर्क में निर्वाचक मण्डल का निर्धारण जिस प्रकार होता है, चुनावों में पूँजी,

जोड़तोड़–तिकड़म और पूँजीवादी प्रचार तन्त्र की जो भूमिका होती है, उसका ज़्यादा से ज़्यादा लाभ बुर्जुआ संसदीय पार्टियों को मिलता है। इस बात को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। रूस में 1917 की अक्टूबर क्रान्ति के समय सोवियतों में बोल्शेविकों के नेतृत्व वाले गठबन्धन का बहुमत था, लेकिन संविधान सभा में बोल्शेविक बहुमत नहीं हासिल कर पाये। महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि दोहरी सत्ता की मौजूदगी के उस काल में भी अन्तिम निर्णय बलात् सत्ता पर क़ब्ज़ा करने के द्वारा ही हुआ। स्पष्ट है कि नेपाल में संविधान सभा के चुनावों में नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) द्वारा दूसरे और तीसरे क्रम पर अधिक सीटें हासिल कर पाने का एक अहम् कारण पूँजीवादी जनवादी चुनाव प्रणाली भी रही है। ऐसी स्थिति में यदि सत्ता के बँटवारे का कोई फ़ार्मूला निकल भी आता है और नेकपा (माओवादी) एक अल्पमत सरकार बना पाने में सफल हो भी जाती है, तो सच्चे अर्थों में एक नवजनवादी संविधान का बन पाना सम्भव नहीं है। आगे चलकर, एक ज़्यादा से ज़्यादा जनोन्मुख पूँजीवादी जनवादी संविधान के अन्तर्गत भी यदि चुनाव पूँजीवादी संसदीय प्रणाली के अन्तर्गत होंगे तो पूँजीवादी पार्टियों के उनसे लाभान्वित होने की स्थिति किसी न किसी हद तक बनी रहेगी। फिर इस सच्चाई की भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि नौकरशाही, सेना–पुलिस और न्यायपालिका का ढाँचा जब तक आमूल रूप से नहीं बदलेगा, तब तक संसद में क्रान्तिकारी वाम के बहुमत पा लेने और सरकार बना लेने मात्र से सर्वहारा राज्यसत्ता या नवजनवादी राज्यसत्ता के अस्तित्व में आ जाने की बात नहीं सोची जा सकती। आगे नये संविधान के अन्तर्गत होने वाले चुनाव में यदि क्रान्तिकारी वाम बहुमत पा भी लेता है तो प्रतिक्रान्ति की सम्भावनाएँ बनी रहेंगी। ऐसी स्थिति में सबकुछ इस बात पर निर्भर करता है कि जनता की समान्तर क्रान्तिकारी वैकल्पिक सत्ता नेपाल में किस रूप में विकसित होगी और दोहरी सत्ता की स्थिति किस रूप में पैदा होगी। एक महत्त्वपूर्ण सकारात्मक बात यह है कि नेकपा (माओवादी) अपनी सशस्त्र शक्ति को बनाये रखने और युवा कम्युनिस्ट लीग को बनाये रखने के सवाल पर दृढ़ है। वर्गों के बीच जारी संघर्ष में अन्तिम निर्णय तो बल–प्रयोग के द्वारा ही होना है!

नेपाली क्रान्ति का लम्बा रास्ता : भविष्य के गर्भ में छिपी सम्भावनाएँ

240 साल पुराने राजतन्त्र की समाप्ति और पूँजीवादी बहुदलीय संसदीय लोकतन्त्र की बहाली नेपाली नवजनवादी क्रान्ति की एक महत्त्वपूर्ण विजय है, एक ऐतिहासिक मुकाम है और एक अहम मोड़बिन्दु है। यह आंशिक–अधूरी

जनवादी क्रान्ति है। क्रान्ति की प्रक्रिया अभी जारी है और यह अवधि अभी लम्बी होगी। संक्रमण की यह अवधि अनेक मोड़ों–घुमावों से भरी होगी, जिनका पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता।

ज़ाहिर है कि पूँजीवादी संसदीय पार्टियाँ त्रिशंकु संविधान सभा का लाभ उठाकर सत्ता की बन्दरबाँट और जोड़तोड़ का घिनौना खेल खेलेंगी और भावी संविधान को पूँजीवादी परिधि के भीतर सीमित रखने की हरचन्द कोशिश करेंगी। बहुमत न हो पाने की स्थिति में क्रान्तिकारी वाम धारा की पार्टियाँ यदि सरकार बना भी लेती हैं तो राष्ट्रीय स्वतन्त्रता–सम्प्रभुता की बहाली, असमान सन्धियों को रद्द करना और राज्य के ढाँचे के पुनर्गठन के काम को अंजाम दे पाना उनके लिए कठिन होगा। ऐसी स्थिति में सरकार से बाहर आकर फिर से जनयुद्ध की राह पकड़ना ही एकमात्र क्रान्तिकारी विकल्प होगा। और तब जनता पूरी ताक़त के साथ इस विकल्प के साथ होगी, क्योंकि बुर्जुआ संसदीय पार्टियों और संशोधनवादियों का चरित्र उनके सामने पूरी तरह नंगा हो चुका रहेगा।

अस्थिरता का दौर लम्बा खिंचने पर बुर्जुआ वर्ग द्वारा सैन्य प्रतिक्रान्ति की सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। इस स्थिति में भी प्रतिक्रियावादियों को देशव्यापी जनउभार का सामना करना पड़ेगा, जनयुद्ध को नया संवेग प्राप्त हो जायेगा और नेपाली क्रान्ति नयी मंज़िल में प्रविष्ट हो जायेगी।

ऐसा भी हो सकता है कि जनता को कुछ अधिक जनवादी अधिकार देने वाला संविधान और एक पूँजीवादी गणतन्त्र अस्तित्व में आये और नये संविधान के अन्तर्गत फिर से चुनाव हों। यदि क्रान्तिकारी वाम की शक्तियाँ एकजुट हों तो उस चुनाव में भी वे बहुमत हासिल कर सकती हैं। साथ ही, संसद से बाहर जनसंघर्ष और वैकल्पिक क्रान्तिकारी सत्ता के विकास की प्रक्रिया जारी रहे, तो क्रान्तिकारी संघर्ष को आगे बढ़ाकर क्रान्ति एक नवजनवादी गणराज्य स्थापित करने का और समाजवादी संक्रमण के दौर में प्रविष्ट होने का लक्ष्य हासिल कर सकती है।

यदि किन्हीं परिस्थितयों में बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों का कोई गँठजोड़ इस दीर्घ संक्रमण अवधि के दौरान सत्तारूढ़ होने में सफल होता है (जिसकी सम्भावना कम है), तो वर्तमान विश्व परिस्थितियों में वह भी साम्राज्यवाद के सहयोग से देश में ऊपर से पूँजीवादी विकास और 'प्रशियाई मार्ग' से पूँजीवादी भूमि सुधार को ही अन्ततोगत्वा लागू करने की कोशिश करेगा। ऐसी स्थिति में वर्ग सम्बन्ध बदलने लगेंगे और नेपाल की क्रान्ति जनवादी क्रान्ति से आगे बढ़कर समाजवादी क्रान्ति की मंज़िल में प्रविष्ट हो जायेगी। क्रान्ति की मंज़िल बदल सकती है, लेकिन प्रतिकूलतम स्थितियों में भी नेपाली क्रान्ति की

विकास–प्रक्रिया अब पीछे नहीं लौट सकती है। वह कुछ समय को रुक सकती है, लेकिन अन्ततः उसे आगे ही जाना है।

नेपाल में वर्ग संघर्ष जारी है। उसका एक मंच संविधान सभा है और दूसरा मंच संसद–सरकार के बाहर है। अन्तिम निर्णय दूसरे मंच पर ही होना है।

ऐसी स्थिति में, जैसा कि हमने ऊपर भी उल्लेख किया है, काफ़ी कुछ दारोमदार इस बात पर है कि सर्वहारा वर्ग की हरावल शक्तियों की एकता की प्रक्रिया कितनी तेज़ गति से आगे बढ़ती है। दूसरा महत्त्वपूर्ण निर्णायक उपादान यह है कि नेकपा (माओवादी) के सर्वहारा जनवाद विषयक "मुक्त चिन्तन" और बहुदलीय जनतन्त्र विषयक धारणा में दक्षिणपन्थी भटकाव के जो ख़तरे मौजूद हैं, उनसे वह कितनी जल्दी छुटकारा पा लेती है और छुटकारा पाती भी है या नहीं।

नेपाल में जारी क्रान्ति बीसवीं सदी का छूटा हुआ कार्यभार है, जो इक्कीसवीं सदी में पूरा हो रहा है। भारत जैसे तीसरी दुनिया के अग्रणी देशों में नेपाल से परिस्थितियाँ काफ़ी भिन्न हैं, लेकिन फिर भी दुनिया के एक देश में बीहड़ परिस्थितियों में जारी सर्वहारा क्रान्ति आज हर देश के सर्वहारा क्रान्तिकारियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रेरणास्रोत का काम कर रही है। साथ ही, यदि भारत, बंगलादेश और "बाज़ार समाजवादी" चीन जैसे देशों में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शक्तियों का पुनरुत्थान होगा, तो इससे नेपाली क्रान्ति को एक नया संवेग प्रदान होगा।

आज विश्व पूँजीवाद का गहराता संकट दुनिया के अलग–अलग कोनों में जिस प्रकार नये विस्फोटों की ज़मीन तैयार कर रहा है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि नेपाली क्रान्ति का मार्ग बीहड़ और मोड़ों–घुमावों से भरा ज़रूर होगा, लेकिन उसका भविष्य उज्जवल है।

(बिगुल, मई व जून 2008)

नेकपा (मा) किस ओर?
नेपाली क्रान्ति किस ओर?

कॉ. लक्ष्मण पन्त के लेख की वैचारिक अवस्थितियाँ हमारे लिए चिन्ता-परेशानी का सबब हैं, हम इनसे क़तई सहमत नहीं हैं!

(नेकपा (मा) के विदेश ब्यूरो के सदस्य लक्ष्मण पन्त का लेख 'फ़ॉल ऑफ़ कोइराला डायनेस्टी' नेकपा (मा) से जुड़े ऑनलाइन पत्र 'रेड स्टार' के अंक 15 में प्रकाशित हुआ था। 'बिगुल' के अगस्त-सितम्बर 2008 के अंक में इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ था तथा उसके जवाब में लिखा आलोक रंजन का यह लेख भी उसी अंक में छपा था। पाठकों की सुविधा के लिए हम लक्ष्मण पन्त का वह लेख भी इस लेख के अनुपूरक के तौर पर प्रकाशित कर रहे हैं। देखें पृष्ठ 63 – सम्पादक)

कॉ. लक्ष्मण पन्त नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के विदेश ब्यूरो के सदस्य हैं। 'बिगुल' को प्रकाशनार्थ भेजे गये लेख 'कोइराला वंश का पतन' में निहित विचारधारात्मक-राजनीतिक अवस्थितियाँ, यदि मोटे तौर पर भी पार्टी की अवस्थितियाँ हैं, तब तो यह वाक़ई हमारे लिए चिन्ता और परेशानी का सबब है। लेख की मूल अवस्थितियाँ नयी परिस्थितियों में नेपाल के वर्ग-संघर्ष के अनुभवों के सैद्धान्तिक निचोड़ के नाम पर, राज्य और क्रान्ति विषयक मूल लेनिनवादी निष्पत्तियों का निषेध करती हैं और संशोधनवादी विपथगमन के स्पष्ट संकेत प्रस्तुत करती हैं। इन विचारधारात्मक विभ्रमों-ग़लतियों-भटकावों को यदि समय रहते ठीक नहीं किया गया तो नेपाली क्रान्ति की अग्रवर्ती विकास-प्रक्रिया पर निश्चय ही इनका गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

कुछ छूट देते हुए यह सोचा जा सकता है कि कॉ. लक्ष्मण पन्त की अवस्थिति नेकपा (मा) की आधिकारिक अवस्थिति नहीं होकर, उनकी निजी

राय है या पार्टी में मौजूद तमाम विचारों में से एक विचार है। लेकिन तब भी कई गम्भीर सवाल उठते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि नेकपा (मा) का पार्टी–नेतृत्व रणकौशल (टैक्टिक्स) के नाम पर जिस तरह और जितनी तेज़ी से (और प्रायः पूर्व–अवस्थिति और उसमें बदलाव के कारणों की कोई चर्चा–व्याख्या किये बिना) अपनी राजनीतिक अवस्थितियाँ बदलता रहता है, और जिस तरह वह रणनीति और यहाँ तक कि बुनियादी उसूली दायरे के प्रश्नों को भी रणकौशल का सवाल बना देता है, उससे क़तारों और मध्यवर्ती नेतृत्व के स्तरों तक विचारधारात्मक विभ्रम फैल रहा हो, लाइन और परिस्थिति के बारे में चीज़ें स्पष्ट न हो रही हों और पार्टी के भीतर संशोधनवादी विपथगमन का पूर्वाधार तैयार हो रहा हो? दूसरी बात, यह सही है कि कोई पार्टी एकाश्मी नहीं होती और उसमें कई विचार लगातार मौजूद रहते हैं, लेकिन उसमें क्या क्रान्तिकारी और संशोधनवादी विचारों का शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व लम्बे समय तक सम्भव होगा और यदि ऐसा होगा तो क्या यह कालान्तर में पार्टी के चरित्र को ही नहीं प्रभावित करेगा? तीसरी बात, कॉ. लक्ष्मण पन्त के इस लेख में प्रस्तुत विचार यदि निजी हैं, या पार्टी में मौजूद किसी धड़े के विचार हैं, तो भी अन्तर्पार्टी जनवाद का कोई भी रूप क्या इस बात की इजाज़त देता है कि किसी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के विदेश ब्यूरो का सदस्य ऐसे विचारों को (चाहे निजी लेख के तौर पर ही सही) अन्तर्पार्टी मंच की बहसों के बजाय बाहर प्रकाशित करे? इससे क्या अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की क़तारों में भारी विभ्रम नहीं फैलेगा?

बहरहाल, अब हम संक्षेप में उन मुद्दों की चर्चा करेंगे, जिन पर कॉ. लक्ष्मण पन्त के लेख से हमारी गम्भीर असहमति है।

●

कॉ. लक्ष्मण पन्त का मानना है कि प्रधानमन्त्री पद पर कॉ. प्रचण्ड की विजय नेपाल में एक नये युग की शुरुआत है। एक सौ साठ वर्षों के विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ है कि सर्वहारा वर्ग की एक अलग सेना अपनी कमान में रखने वाली पार्टी ने खुले और गुप्त, बुलेट और बैलट, लोकयुद्ध और जनान्दोलन – इन दोनों तरह के तरीक़ों का इस्तेमाल करते हुए सरकार बनाने में क़ामयाबी हासिल की है। नेपाल की नयी माओवादी सरकार सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग के संयुक्त अधिनायकत्व पर आधारित है और राज्यसत्ता में दो परस्पर शत्रु वर्गों का संयुक्त अधिनायकत्व मार्क्सवादी विज्ञान के लिए भी एक नयी चीज़ है।

कॉ. लक्ष्मण पन्त के लेख की सबसे बड़ी भ्रान्ति यह है कि उन्होंने सरकार

को ही राज्यसत्ता समझ लिया है। राज्यसत्ता किसी एक वर्ग द्वारा (अकेले या सहयोगी वर्गों के साथ मिलकर) विरोधी वर्गों पर बलात् शासन का केन्द्रीय यन्त्र होती है, इसी के द्वारा शासक वर्ग मुख्यतः अपने वर्ग–हितों की पोषक सामाजिक–आर्थिक संरचना को बनाये रखते हैं और इसका मुख्य अंग सैन्य–अर्द्धसैन्य बल और विराट नौकरशाही तन्त्र होता है। सरकार या मन्त्रिमण्डल (कार्यपालिका) उसका एक गौण अंग होता है। सरकार की भूमिका शासक वर्ग की 'मैनेजिंग कमेटी' की होती है। नेपाली क्रान्ति की "विश्व ऐतिहासिक उपलब्धियों" की बेचैनी से तलाश करते हुए कॉ. लक्ष्मण पन्त इन सभी चीज़ों को एकदम भुला देते हैं।

यह मानना एकदम हवाई बात होगी कि नेपाल में शासक वर्गों की पुरानी राज्य–मशीनरी का ध्वंस करके एक नयी राज्य–मशीनरी स्थापित हो चुकी है। नेपाल में अभी हुआ केवल यह है कि कोइराला सरकार की जगह पर माओवादी नेतृत्व में एक नयी, मिली–जुली सरकार अस्तित्व में आयी है। नौकरशाही मशीनरी का ढाँचा अभी, लगभग ज्यों का त्यों, बरक़रार है। सेनाओं का एकीकरण अभी नहीं हुआ है, और प्रश्न यह भी है कि क्या एकीकरण के बाद अस्तित्व में आने वाली सेना एक जन–सेना होगी। जैसी सत्ता–संरचना और जैसा संवैधानिक ढाँचा होगा, और जैसी सेना की ढाँचागत संरचना होगी, एकीकरण के बाद सेना का वर्ग–चरित्र भी कालान्तर में वैसा ही बन जायेगा (भले ही बुर्जुआ सेना के सभी आम जवान भी किसानों के बेटे क्यों न हों)। एक क्रान्तिकारी सेना भी बुर्जुआ सेना में रूपान्तरित हो जाती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि सत्तासीन पार्टी क्या नीतियाँ अपनाती है! वैसे यह बात भी भुलाई नहीं जा सकती कि एकीकृत सेना में भी जन–सेना का समानुपातिक हिस्सा काफ़ी छोटा होगा और उसकी सामरिक शक्ति का अनुपात भी सापेक्षतः छोटा होगा। सारा दारोमदार इस बात पर है कि संयुक्त सरकार (जिसे कॉ. लक्ष्मण पन्त "परस्पर शत्रु वर्गों की संयुक्त तानाशाही" समझते हैं) के अन्तर्गत, वैधिक–संवैधानिक ढाँचे के बाहर, पार्टी के राजनीतिक वर्चस्व के अन्तर्गत समान्तर लोक सत्ता किस रूप में उभरती, क़ायम रहती है और मज़बूत बनती है तथा शासकीय सैन्य ढाँचे के बाहर पार्टी जनता की हथियारबन्द ताक़त को सुगठित–सुदृढ़ीकृत कर पाती है या नहीं! परिवर्तन राज्यसत्ता का नहीं हुआ है, मात्र सरकार का हुआ है और उसे भी एक माओवादी सरकार कहना ग़लत होगा (जैसाकि कॉ. लक्ष्मण कहते हैं)। यह एक मिली–जुली सरकार है, जिसमें माओवादियों का बहुमत है क्योंकि वह संसद (संविधान सभा) की सबसे बड़ी पार्टी है (पर अकेले या क्रान्तिकारी वाम को मिलाकर भी बहुमत से काफ़ी दूर है)। माओवादी ज़्यादा से ज़्यादा यह कर सकते

हैं कि कोई प्रतिक्रियावादी गृहनीति, भूमिनीति, उद्योग नीति या सामाजिक नीति न बनने दें और संविधान सभा के रूप में काम करने वाली वर्तमान संसद में अन्य बुर्जुआ और संशोधनवादी दलों की यथास्थितिवादी बुर्जुआ जनवादी नीतियों को संविधान में संहिताबद्ध न होने दें। लेकिन बुर्जुआ और संशोधनवादी भी (सरकार में शामिल नेकपा (एमाले) और मधेसी जनाधिकार फोरम भी इनमें शामिल हैं) एक रैडिकल क्रान्तिकारी जनवादी भूमि सुधार नीति, उद्योग एवं वित्त नीति, शिक्षा–स्वास्थ्य सम्बन्धी नीति, विदेश नीति या सत्ता–संरचना के सच्चे जनवादीकरण की नीति को लागू होने से रोकने के लिए, और नये संविधान में संहिताबद्ध होने से रोकने के लिए, एकजुट हो जायेंगे। इस बाबत कोई भी भ्रम सांघातिक होगा। ऐसी स्थिति में, जैसाकि हम पहले से कहते आये हैं, माओवादियों सहित पूरा क्रान्तिकारी वाम, ज़्यादा से ज़्यादा, जनोन्मुख बुर्जुआ जनवादी संविधान बनाने के लिए ही संघर्ष कर सकता है, एक नवजनवादी संविधान क़तई नहीं हासिल कर सकता। शासन चलाते हुए, वह जनहित की नीतियों को लागू करने की हरचन्द कोशिश करते हुए, इसका विरोध करने वालों का जनता की नज़रों में पर्दाफ़ाश कर सकता है और अपने जनाधार का विस्तार कर सकता है। इससे ज़्यादा कुछ सम्भव हो ही नहीं सकता। माओवादी संसदीय जनवाद के व्यामोह में फँसे बग़ैर, या कोई समझौता किये बग़ैर, यदि सिद्धान्तनिष्ठ ढंग से संघर्ष चलायें, तो कई सम्भावनाएँ हो सकती हैं। मुमकिन है कि कोई भी जनोन्मुख क़दम उठाना सम्भव न हो पाने की स्थिति में माओवादियों को बीच में ही सरकार और संसद को छोड़कर बाहर आ जाना पड़े और जनयुद्ध के रास्ते पर फिर से आगे बढ़ना पड़े (जोकि नेपाल की स्थितियों में निश्चित ही दुष्कर और लम्बा रास्ता होगा और उसकी सफलता काफ़ी हद तक भारतीय उपमहाद्वीप की और चीन की अन्दरूनी परिस्थितियों पर निर्भर करेगी)। यह भी सम्भव है कि एक अपेक्षतया अधिक जनवादी बुर्जुआ संघात्मक गणतन्त्र मुहैया कराने वाला संविधान दो वर्षों के भीतर अस्तित्व में आ जाये, इस दौरान प्रगतिशील नीतियों के अमल में बाधक पार्टियों के विरुद्ध जनता में व्यापक प्रचार करके माओवादी अपना आधार माबूत करें और नये संविधान के अन्तर्गत होने वाले चुनाव में स्पष्ट और भारी बहुमत हासिल करें। इस स्थिति में वे आमूलगामी भूमि–सुधार व अन्य सामाजिक–आर्थिक नीतियों को लागू करें, संविधान संशोधन के द्वारा अधिक जनवादी संवैधानिक ढाँचा स्थापित करें और जनवादी क्रान्ति के प्रोग्राम को आगे बढ़ायें। इस सूरत में भी प्रतिक्रियावादी ताक़तें सामाजिक प्रतिक्रान्ति की कोशिश करेंगी और अन्ततोगत्वा निर्णय संसद से बाहर सड़कों पर ही होगा। तब सारा दारोमदार इस बात पर होगा कि स्वयं सरकार में होते हुए भी

माओवादियों ने वैकल्पिक, समान्तर लोकसत्ता के विविध 'आर्गन्स' विकसित किये हैं या नहीं, केन्द्रीकृत शासकीय सैन्य तन्त्र का किस हद तक जनवादीकरण किया है, किस हद तक उसमें राजनीतिक काम किया और किस हद तक उस औपचारिक ढाँचे के बाहर शस्त्रबद्ध जनता के रूप में क्रान्ति की सामरिक शक्ति मौजूद है!

तात्पर्य यह कि किसी भी सूरत में एक बुर्जुआ संसदीय जनवादी व्यवस्था सर्वहारा राज्यसत्ता का 'आर्गन' नहीं हो सकती, या उसे शान्तिपूर्ण रूपान्तरण के द्वारा ऐसा नहीं बनाया जा सकता। एक सर्वहारा या नवजनवादी ढाँचे में कार्यकारी और विधायी शक्तियाँ मिली हुई ही हो सकती हैं, एक "कार्यशील" विधायिका ही हो सकती हैं। इस प्रणाली तक पहुँचने का रास्ता यदि "संवैधानिक सुधारों" का रास्ता होगा भी तो उसके पीछे अवश्यम्भावी तौर पर सामाजिक वर्ग संघर्ष में जनता की सशस्त्र शक्ति की निर्णायक विजय या श्रेष्ठता का दबाव काम करता रहेगा। इससे इतर और कोई रास्ता नहीं हो सकता। इसीलिए, हम पहले भी कहते रहे हैं कि राजतन्त्र का अन्त और गणतन्त्र की घोषणा नेपाल की जारी राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति की एक महत्त्वपूर्ण विजय और मुकाम है, लेकिन इस क्रान्ति का कोई भी कार्यभार अभी मूलतः और मुख्यतः पूरा नहीं हुआ है। संविधान सभा के रूप में वर्ग–संघर्ष का एक नया दायरा और मंच सामने आया है। इस दौरान संविधान सभा या संसद के भीतर, तथा मिलीजुली सरकार के भीतर, नीतियों–विधानों को लेकर जारी संघर्ष वर्ग–संघर्ष का एक रूप होगा लेकिन निर्णय अभी भी संसद के बाहर जारी वर्ग–संघर्ष में ही होना है।

नेपाल की जनवादी क्रान्ति के साम्राज्यवाद–विरोधी और सामन्तवाद–विरोधी कार्यभार अभी भी पूरे नहीं हुए हैं। इस जारी क्रान्ति की एक ऐतिहासिक उपलब्धि यदि कोई है तो वह है राजतन्त्र की समाप्ति, न कि कॉ. प्रचण्ड का प्रधानमन्त्री बनना, जैसा कि कॉ. लक्ष्मण पन्त मानते हैं। कॉ. लक्ष्मण पन्त (लेख के अन्त में) यह भी कहते हैं कि सरकार में शामिल होना सैद्धान्तिक नहीं बल्कि एक 'टैक्टिकल' सवाल है, इसका क्रान्ति को आगे बढ़ाने में इस्तेमाल किया जा सकता है (या नहीं किया जा सकता)। दूसरी ओर, लेख के शुरू में ही इसे वह एक ऐतिहासिक विजय और नेपाल में एक नये युग की शुरुआत घोषित कर देते हैं। सरकार में शामिल होना मात्र एक 'टैक्टिक्स' है, इसका क्रान्ति को आगे बढ़ाने में इस्तेमाल किया जा सकता है, यह अपनेआप में कोई ऐतिहासिक विजय नहीं है। और कॉ. प्रचण्ड का प्रधानमन्त्री बनना यदि ऐतिहासिक विजय है तो राष्ट्रपति पद पर माओवादी उम्मीदवार की हार इसी तर्क से ऐतिहासिक हार भी मानी जानी चाहिए, लेकिन कॉ. लक्ष्मण पन्त ऐसा नहीं मानते। नेकपा (एमाले)

और मधेसी दल केवल मोल–तोल व जोड़–तोड़ के लिए सरकार में शामिल हुए हैं। इस 'टैक्टिकल' गँठजोड़ के इन घटकों को नेपाली कांग्रेस से रत्ती भर भी कम प्रतिक्रियावादी नहीं माना जा सकता। एक 'टैक्टिक्स' के तहत इस सरकार में शामिल होना तो ठीक है, पर इसे ऐतिहासिक विजय बताना विचारधारात्मक भटकाव है जो जनता में विभ्रम पैदा करके क्रान्तिकारी शिक्षा, प्रचार एवं तैयारी की प्रक्रिया को भारी नुक़सान पहुँचायेगा।

मिलीजुली सरकार एक आरज़ी (प्रॉविज़नल) सरकार है, इसे "दो परस्पर शत्रु वर्गों की संयुक्त तानाशाही" बताना नये इज़ाफ़े के नाम पर मार्क्सवाद की टाँग तोड़ने के समान है। वर्ग–अधिनायकत्व वर्ग–शासन का रूप है, यह सरकार का रूप नहीं है। एक वर्ग अपने शत्रुओं पर अधिनायकत्व लागू करता है। वर्ग–अधिनायकत्व वर्ग–संघर्ष का ही एक रूप और विस्तार है। यदि परस्पर शत्रु वर्ग नेपाल में मिलकर अधिनायकत्व चला रहा है तो यह अधिनायकत्व उन्होंने क़ायम किन वर्गों पर किया है? मिलीजुली सरकार चलाना केवल एक रणकौशल है, संघर्ष का एक मंच और रूप है, इसे आमूलगामी राज्यसत्ता–परिवर्तन अभी क़तई नहीं माना जा सकता। यह प्रक्रिया अभी जारी है।

हो सकता है कि यह हास्यास्पद थीसिस नेकपा (मा) के नेतृत्व की न हो, लेकिन इसके लिए उसकी ही एक स्थापना ज़िम्मेदार है। बहुदलीय संसदीय जनवादी प्रणाली को संघर्ष के दौरान 'टैक्टिकल' इस्तेमाल की एक चीज़ मानने के बजाय जब सर्वहारा जनवाद का 'ऑर्गन' घोषित कर दिया जायेगा, तो इस संशोधनवादी प्रमेय से तमाम सारे भद्दे–भोंडे़, हास्यास्पद, संशोधनवादी उप–प्रमेय पैदा होने लगेंगे। नेकपा (मा) संसद और गत चुनाव में तथा सरकार में भागीदारी को एक ओर तो एक 'टैक्टिकल' कार्रवाई मानती है, फिर उसी सुर में बहुदलीय जनवाद को सर्वहारा शासन का उपकरण भी घोषित कर देती है। तब फिर इसमें भला क्या आश्चर्य कि लक्ष्मण पन्त दो क़दम और आगे बढ़कर मिलीजुली सरकार को परस्पर–विरोधी वर्गों की संयुक्त तानाशाही तथा सरकार और राज्यसत्ता को समानार्थी घोषित कर देते हैं। एक ओर सरकार चलाने को वे 'टैक्टिक्स' बताते हैं तो दूसरी ओर माओवादियों के नेतृत्व में सरकार–गठन को युगान्तरकारी भी घोषित कर देते हैं।

कॉ. लक्ष्मण पन्त द्वारा किया जाने वाला पार्टियों का वर्ग–विश्लेषण भी अत्यन्त भ्रामक है। कॉ. प्रचण्ड के प्रधानमन्त्री बनने को वे इसलिए भी ऐतिहासिक मानते हैं कि वह 50 वर्ष पुराने कोइराला वंश और 'कांग्रेसक्रेसी' का पतन है जो साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और विस्तारवाद का मुख्य प्रतिनिधि व मूर्त रूप रहा है और राजतन्त्र का मुख्य सहारा रहा है। यह मूल्यांकन सिरे से ग़लत है

और नेकपा के मुख्य धड़ों के पुराने मूल्यांकनों से भी क़तई मेल नहीं खाता। आज से पचास या चालीस या तीस वर्षों पहले नेपाली कांग्रेस को सामन्तों या दलाल पूँजीपतियों का प्रतिनिधि कदापि नहीं कहा जा सकता था। इन वर्गों का प्रतिनिधित्व राजा और राजतन्त्रवादी दल कर रहे थे। तब नेपाली कांग्रेस के चरित्र का राष्ट्रीय पहलू प्रधान था (हालाँकि गौणतः प्रतिक्रियावादी और आत्मसमर्पणवादी पहलू भी उसमें मौजूद था)। कॉ. पुष्पलाल द्वारा राजशाही के विरुद्ध नेपाली कांग्रेस के साथ संयुक्त मोर्चे की लाइन बिल्कुल सही थी (यह माओवादी पार्टी भी मानती है)। ग़लती यह थी कि उनके नेतृत्व में पार्टी अपनी स्वतन्त्र पहलक़दमी खोकर नेपाली कांग्रेस की पिछलग्गू हो गयी। नेपाली कांग्रेस मुख्यतः नेपाल के राष्ट्रीय और निम्नपूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी, 1990 के बाद सत्तासीन होने पर और क्रान्तिकारी वाम के आगे बढ़ने के साथ ही नेपाली कांग्रेस व उससे जुड़े नेपाली राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग के चरित्र का प्रतिक्रियावादी पहलू प्रधान होता चला गया। राजा और राजतन्त्रवादी दलों का पतन सुनिश्चित होने के साथ ही साम्राज्यवादी और विस्तारवादी शक्तियों तथा दलाल पूँजीपति और सामन्तों जैसे पराभवशील देशी प्रतिक्रियावादी वर्ग भी अपना दाँव नेपाली कांग्रेस पर लगाने को मजबूर हो गये। लेकिन इसके साथ ही नेकपा (एमाले), मधेसी दल और अन्य बुर्जुआ दल भी आज मुख्यतः प्रतिक्रियावादियों की ही सेवा कर रहे हैं। हाँ, इसके भीतर रैडिकल राष्ट्रीय एवं जनवादी तत्त्वों के धड़े ज़रूर मौजूद हैं।

कॉ. लक्ष्मण पन्त मात्र राजतन्त्र की समाप्ति के साथ ही सामन्तवाद के साथ मुख्य अन्तरविरोध को गौण मान लेते हैं और बताते हैं कि मुख्य अन्तरविरोध अब साम्राज्यवाद और विस्तारवाद के साथ हो गया है। यह थीसिस भी मार्क्सवादी पहुँच–पद्धति के पूर्ण निषेध पर आधारित है। राजतन्त्र की समाप्ति और जनवादी संघात्मक गणराज्य की औपचारिक घोषणा के बावजूद, अभी नेपाल में रैडिकल भूमि सुधार का एक भी क़दम नहीं उठाया गया है, राज्य और समाज के पुनर्गठन का प्रश्न भी अभी मात्र एजेण्डा पर उपस्थित ही हुआ है (और यह भी तय है कि मौजूदा अन्तरिम ढाँचे में यदि यह काम होगा भी तो आंशिक या अत्यन्त न्यून रूप में ही होगा)। ऐसे में, मात्र राजा के शासन के ख़ात्मे से ही सामन्तवाद–विरोधी मुख्य अन्तरविरोध को गौण बना देना एक रूपवादी, अधिरचनावादी पहुँच–पद्धति के अतिरिक्ति और कुछ भी नहीं है। इसी रूपवादी पहुँच से कॉ. लक्ष्मण पन्त गिरिजा प्रसाद कोइराला की सरकार के पतन को साम्राज्यवाद और विस्तारवाद के विरुद्ध नेपाली जनता के संघर्ष की एक अहम जीत भी मानते हैं। यानी कुल मिलाकर, उनके अनुसार सामन्तवाद और साम्राज्यवाद दोनों के विरुद्ध महत्त्वपूर्ण

ऐतिहासिक जीतें हासिल हो चुकी हैं। यह स्थापना जनता के बीच बुर्जुआ सुधारवादी विभ्रम और मिथ्या आशा को मजबूत बनाकर नेपाल में जारी क्रान्ति के अग्रवर्ती विकास पर प्रतिकूल प्रभाव ही छोड़ेगी।

ग़ौरतलब यह भी है कि अभी तक किसी देश के उपनिवेश, नव–उपनिवेश होने या उस पर हमले की स्थिति में ही साम्राज्यवाद–विस्तारवाद के विरुद्ध मुख्य अन्तरविरोध की स्थापना दी जाती रही है। नेपाल न तो उपनिवेश है, न ही नव–उपनिवेश और न ही उस पर किसी साम्राज्यवादी या विस्तारवादी देश ने सीधे हमला ही किया है। साम्राज्यवाद वहाँ देशी प्रतिक्रियावादी वर्गों और उनकी पार्टियों के माध्यम से ही क्रियाशील है। ऐसे में साम्राज्यवाद के विरुद्ध जनता की सीधे लामबन्दी के बजाय अभी भी जनवादी कार्यभारों को पूरा करने के लिए (एक जनवादी संविधान, जनवादी कानून व्यवस्था, क्रान्तिकारी भूमि सुधार आदि के लिए) जनता को लामबन्द करना ही वहाँ क्रान्तिकारी शक्तियों का मुख्य कार्यभार है।

नेपाल में गणतन्त्र की अभी मात्र औपचारिक घोषणा हुई है। जब तक, कम से कम रैडिकल बुर्जुआ अर्थों में भी एक संघात्मक जनवादी गणराज्य स्थापित नहीं हो जाता, यानी ऐसा प्रावधान देने वाले संविधान के तहत नयी सरकार काम नहीं करने लगती और जब तक रैडिकल बुर्जुआ हदों तक भी भूमि सुधार नहीं हो जाते, तब तक वहाँ क्रान्ति के जनवादी कार्यभार ही प्रधान रहेंगे। हाँ, इसी बीच यदि किसी रूप में प्रत्यक्ष साम्राज्यवादी दखलन्दाज़ी हो जाये तो मुख्य अन्तरविरोध अवश्य बदल जायेगा। ज़्यादा सम्भावना इसी बात की है कि यदि नेपाल की क्रान्तिकारी वाम शक्तियाँ वहाँ भूमि–क्रान्ति के कार्यभारों को रैडिकल तरीके से पूरा नहीं कर पाती हैं और विचारधारात्मक कारणों से क्रान्ति की विकास प्रक्रिया पर यदि कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो वहाँ का सत्तासीन बुर्जुआ वर्ग (ज़्यादा सटीक शब्दों में, राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग का प्रतिक्रियावादी हिस्सा) एक ग़ैर–क्रान्तिकारी क्रमिक प्रक्रिया से (जुंकर टाइप–रूपान्तरण से) बुर्जुआ भूमि सुधारों को लागू करने का लम्बा रास्ता अपनायेगा (आज का साम्राज्यवाद भी इसमें सहयोगी भूमिका निभायेगा) और धीरे–धीरे समाज के पूँजीवादीकरण के साथ ही, श्रम और पूँजी के बीच का अन्तरविरोध वहाँ प्रधान बनता चला जायेगा। बहरहाल, यह आकलन अलग से विस्तृत चर्चा–विवेचना की माँग करता है।

यहाँ हम कॉ. लक्ष्मण पन्त के लेख में विश्लेषण की रूपवादी पद्धति और इसमें निहित संशोधनवादी और संसदीय भटकावों को इंगित करना चाहते हैं। इसके पहले 'बिगुल' में प्रकाशित लम्बे निबन्ध में हम नेकपा (मा) के नेतृत्व के

विचारधारात्मक विचलन से जुड़ी समस्याओं का उल्लेख कर चुके हैं। कॉ. लक्ष्मण पन्त के दृष्टिकोण को यदि पूरे पार्टी नेतृत्व का दृष्टिकोण न भी माना जाये तो भी यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि इस भटकाव का मूल स्रोत पार्टी नेतृत्व के विचारधारात्मक विभ्रमों और विचलनों में ही मौजूद है।

हम इस मुद्दे पर नेपाल के साथियों से विचार करने और खुलकर बहस करने का आग्रह करते हैं। पूरी दुनिया के सच्चे कम्युनिस्ट नेपाली क्रान्ति को आगे बढ़ते देखना चाहते हैं। इसलिए नेपाल के क्रान्तिकारी वाम आन्दोलन के भीतर के विचारधारात्मक विचलनों और उनके विरुद्ध संघर्ष के प्रति हमारी चिन्ता और हमारे सरोकार स्वाभाविक हैं।

(बिगुल, अगस्त–सितम्बर 2008)

कोइराला वंश का पतन

लक्ष्मण पन्त

सदस्य, विदेश ब्यूरो, नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी)

प्रधानमन्त्री पद पर कॉ. प्रचण्ड की ऐतिहासिक विजय से नेपाल में एक नये युग का सूत्रपात हुआ है। नेपाली जनता ने नेपाली क्रान्ति के उस मॉडल का पुनः समर्थन किया है जिसमें खुली और गुप्त गतिविधियों, क़लम और बन्दूक़, बैलैट और बुलेट एवं जनयुद्ध और जनान्दोलन दोनों का मेल किया गया है। चेयरमैन प्रचण्ड की जीत के साथ ही, हमारी पार्टी अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के एक सौ साठ वर्षों के इतिहास में सत्ता तक पहुंचने वाली पहली ऐसी पार्टी बन गयी है, जिसके पास सर्वहारा वर्ग की अलग सेना है और जो इन अलग-अलग तरीक़ों का प्रयोग करते हुए सत्ता में पहुँची है। नेकपा (माओवादी), 1976 में कॉ. माओ के देहान्त के बत्तीस वर्षों बाद सरकार का नेतृत्व करने वाली पहली कम्युनिस्ट पार्टी है।

समूची दुनिया में एक के बाद एक कम्युनिस्ट सत्ताओं के पतन की पृष्ठभूमि के बरक्स हमारे देश की माओवादी सरकार इस मायने में भी भिन्न है कि यह सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग की संयुक्त तानाशाही पर आधारित है। किसी भी मार्क्सवादी प्रस्थापना में इस प्रकार की संयुक्त तानाशाही का ज़िक्र नहीं मिलता। मार्क्सवादी विचार के अनुसार राज्यसत्ता में दो विरोधी वर्गों की संयुक्त तानाशाही सम्भव नहीं है। हालाँकि, नेपाल के अनुभव ने साबित कर दिया है कि इससे अलग भी कुछ किया जा सकता है। आने वाले दिनों में नेपाल के अनुभव और प्रयोग के दार्शनिक और राजनीतिक आधार का संश्लेषण करना होगा। इतिहास ने राज्य की दोहरी तानाशाही को सही ठहराने का दायित्व इक्कीसवीं सदी के माओवादियों के कन्धे पर डाला है।

चेयरमैन प्रचण्ड की जीत का एक और ऐतिहासिक पहलू भी है। उनकी जीत के साथ ही पाँच दशक पुरानी 'कांग्रेसशाही' और कोइराला वंश का अन्त हो गया, जो विस्तारवाद और साम्राज्यवाद का मुख्य सुरक्षाकवच बना रहा और सामन्तवाद एवं साम्राज्यवाद का मूर्त रूप था। इस अर्थ में भी श्रावण की 30वीं तारीख़ का ऐतिहासिक महत्त्व है। कोइराला वंश का ढहना, साम्राज्यवाद का एक खम्भा गिरने का द्योतक है। यह राजशाही के अन्त से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वस्तुतः नेपाली जनता राजशाही और कोइराला वंश दोनों ही से समान रूप से पीड़ित थी। कोइराला वंश और 'कांग्रेसशाही' आधी सदी तक राजशाही का मुख्य आधार रहे।

राजशाही के अन्त तक नेपाली जनता का प्रधान अन्तरविरोध सामन्तवाद के

साथ था। यह स्पष्ट है कि राजशाही के अन्त के बाद, नेपाली जनता का प्रधान अन्तरविरोध बदल गया है, और अब यह अन्तरविरोध साम्राज्यवाद और विस्तारवाद के साथ है। दूसरे शब्दों में, गिरिजा प्रसाद कोइराला का अन्त, साम्राज्यवाद और विस्तारवाद के ख़िलाफ़ नेपाली जनता के राष्ट्रीय संघर्ष की एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

गणतन्त्र की स्थापना के बाद क्रान्ति का तात्कालिक लक्ष्य बदल गया है और उसी के अनुसार क्रान्ति के मित्रों एवं शत्रुओं का समीकरण भी बदला है। स्पष्टतः, अब मित्र, शत्रुओं में तब्दील हो गये हैं और शत्रु, मित्र बन गये हैं। सामन्तवाद और साम्राज्यवाद के दो विराट पहाड़ों में से एक – सामन्तवाद – के विशाल पहाड़ को नेपाली जनता ने ध्वस्त कर दिया है। अब नेपाली जनता के समक्ष साम्राज्यवाद और विस्तारवाद की भयावह और विराट चट्टान है। गत चार माह के दौरान नेकपा (माओवादी) को सरकार बनाने से रोकने की साज़िशें इसी का परिणाम थीं।

नेपाली जनता ने सामन्तवाद को पराजित करके लोकतन्त्र के संघर्ष को काफ़ी हद तक जीत लिया है, लेकिन अभी इसे संस्थागत स्वरूप देने का काम बाक़ी है। हालाँकि, पूर्ण सम्प्रभु राष्ट्रवाद के लिए संघर्ष शुरू करना और जीतना अभी बाक़ी है। फ़िलहाल यह नहीं बताया जा सकता कि उस संघर्ष की प्रकृति और पद्धति क्या होगी। फिर भी, इसमें कोई दो राय नहीं है कि राष्ट्रवाद के संघर्ष की प्रकृति राष्ट्रीय ही होगी और यह अधिक जटिल एवं अधिक तीखा होगा। ऐसे में पार्टी की राजनीतिक लाइन भी उसी दिशा में निर्देशित होगी।

साम्राज्यवाद-विस्तारवाद और उनके सहयोगियों के समर्थन के बिना लोकतन्त्र के लिए संघर्ष में विजय प्राप्त करना सम्भव नहीं था। इसलिए, बारह-सूत्री समझौते को मील का पत्थर कहा गया है। राजशाही के अन्त तक, नेपाली कांग्रेस – जिसका साम्राज्यवाद और विस्तारवाद के साथ क़रीबी सम्बन्ध है – जैसी माओवाद की कट्टर विरोधी ताक़तों को नेतृत्व देना कोई छोटी सफलता नहीं है। इस सफलता ने, संसदीय पार्टियों के साथ गठबन्धन करने, बातचीत, गोलमेज़ सम्मेलन, अन्तरिम सरकार को आगे बढ़ाने और संविधान सभा के ज़रिये जनवादी गणतन्त्र की प्राप्ति के लिए, दूसरे राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा निरूपित की गई और केन्द्रीय कमेटी की चुनवांग मीटिंग द्वारा निर्धारित की गई राजनीतिक लाइन के सही होने को साबित किया है।

संविधान सभा के चुनाव के बाद तेज़ी से परिवर्तित होती परिस्थितियों के कारण क्रान्तिकारी क़तारों में प्रतिक्रिया के कई स्वर उभरे और एक प्रकार की सनसनी फैल गयी। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव एवं एमाले से गठजोड़ के उपरान्त पार्टी में और अधिक उथल-पुथल एवं सनसनी व्याप्त हो गयी। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न, जिसने पार्टी की आम क़तारों को झकझोरा, यह था कि हमें सरकार में शामिल होना चाहिए या नहीं?

हमें उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर अंश में नहीं, बल्कि सम्पूर्णता में और रूप के बजाय सार में तलाशने होंगे। इन सवालों के जवाब पार्टी द्वारा तय की गयी रणनीति में निहित हैं, उसके रणकौशलों (टैक्टिक्स) में नहीं। क्रान्ति कभी सीधी रेखा में नहीं बढ़ती। क्रान्ति का विकास कई बार आगे-पीछे होते हुए, विजयों-पराजयों, आक्रमणों-सुरक्षा के सिलसिले से गुज़रते हुए होता है। संख्या के हिसाब से, राष्ट्रपति चुनाव में पार्टी के प्रत्याशी की हार को इसी रोशनी में देखा जाना चाहिए। साथ ही, एक पल के लिए भी यह नहीं भुलाया जा सकता कि साम्राज्यवाद थक कर बैठ नहीं गया है। वह हताशा में, क्रान्ति और माओवादी पार्टी को नष्ट करने और पीएलए को निशस्त्र करने की साज़िशें रच रहा है। हमने संविधान सभा के चुनावों में साम्राज्यवाद पर करारा प्रहार करते हुए उसे रक्षात्मक रुख अपनाने को मजबूर कर दिया। इसके बाद, वे हमें धोखा देने में कुछ हद तक सफल भी हुए। उन्होंने आक्रामक रुख अपना लिया था और हम रक्षात्मक स्थिति में आ गये थे। क्रान्ति का यही नियम है। निरन्तर विजय और लगातार पराजय दोनों ही सम्भव नहीं है। हालाँकि, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद के चुनाव में हमारे प्रत्याशियों की हार हुई, फिर भी जीत हमारी विचारधारा की ही हुई है क्योंकि इस घटनाक्रम ने वास्तविक राष्ट्रवादी ताक़तों में नेपाली कांग्रेस के ख़िलाफ़ नफ़रत के बीज डाल दिये हैं। इसने अन्तरविरोध को सतह पर लाने में सहायता की है, मधेश में असली मेहनतकश अवाम का हमारी पार्टी में विश्वास बढ़ाया है और नेपाली कांग्रेस की सत्ता की भूख को भी उजागर किया है। इसी वजह से, संख्या के खेल में पार्टी की हार के बावजूद इसे हम पार्टी की बड़ी विचारधारात्मक जीत कह रहे हैं। आगामी दिनों में यह राष्ट्रवाद के संघर्ष में आधार का काम करेगी। कॉ. प्रचण्ड की जीत ने, एक बार फिर, साम्राज्यवादियों को रक्षात्मक रुख अपनाने को मजबूर करते हुए उनकी रणनीति को निष्फल कर दिया है। इससे हमारी पार्टी आक्रामक स्थिति में आ गयी है।

इस बात से इन्कार नहीं है कि साम्राज्यवाद और विस्तारवाद नेपाली क्रान्ति की राह की रुकावटें हैं। पार्टी ने जनयुद्ध आरम्भ होने के पहले ही क्रान्ति के दो मुख्य शत्रुओं के रूप में साम्राज्यवाद और विस्तारवाद को चिन्हित कर लिया था। पार्टी के इस वैज्ञानिक निरूपण की पुष्टि इस तथ्य से हो जाती है कि अतीत में जनयुद्ध को कुचलने के लिए राजशाही को इन्हीं शक्तियों का समर्थन प्राप्त हुआ था। यदि, 12 सूत्रीय समझौते से लेकर राष्ट्रपति चुनाव तक की अवधि को देखा जाये तो पुनः इसकी पुष्टि हुई है। राजशाही के अन्त के बाद, जोकि विदेशी प्रतिक्रिया का मुख्य ज़रिया था, साम्राज्यवादी ताक़तों ने राज्यसत्ता के शून्य को भरने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रखा है। चुनाव में गिरिजा के परिवार के अधिकांश सदस्यों की हार के बावजूद प्रधानमन्त्री पद नहीं छोड़ने की उनकी इच्छा यही रेखांकित करती है।

केन्द्रीय प्रश्न यह है कि अब क्रान्ति का लक्ष्य क्या है और आन्दोलन किसके ख़िलाफ़ और कैसे शुरू किया जाये। निश्चित तौर पर, राष्ट्रवाद के लिए संघर्ष में संघर्ष का निशाना वे ताक़तें होंगी जो साम्राज्यवाद और विस्तारवाद के बचाव में आगे आयेंगी। गिरिजा को उखाड़ फेंक़ने में प्राप्त हुई सफलता साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष की महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

हम पुराने अन्तरविरोध के निषेध और नये अन्तरविरोध के उभार के संक्रमणकालीन दौर से गुज़र रहे हैं। यह प्रक्रिया एक निश्चित अवधि में पूर्ण होगी। इस अवधि एवं इस प्रक्रिया के पूरा होने तक पेटी–बुर्जुआ उतावलेपन में आन्दोलन या उभार की या शान्ति प्रक्रिया से हटने की बात करना आत्मघाती होगा। आने वाले समय में सम्पूर्ण संघर्ष के साथ–साथ राष्ट्रवाद के संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं बल्कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी व्यापक ध्रुवीकरण और गठबन्धन की आवश्यकता है। यह चरण देशभक्त, जनवादी और वाम ताक़तों के साथ गठबन्धन करने का है। यह सरकार में शामिल होकर या सरकार से बाहर रह कर, दोनों ही तरीक़ों से समान रूप से किया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि पार्टी सरकार में शामिल होगी या शामिल नहीं होगी तो वह 'ख़त्म' हो जायेगी। सरकार में शामिल हुआ जाये या नहीं हुआ जाये इसकी बहस शुरू करने से अधिक महत्त्वपूर्ण और उपयुक्त इस पर चर्चाओं की शुरुआत करना होगा कि भविष्य में हम क्रान्ति के बहु–आयामी मोर्चों की लामबन्दी और मोर्चे की शुरुआत कर सकेंगे या नहीं। सरकार में शामिल होने या नहीं होने के प्रश्न से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हम क्रान्तिकारी ताक़तों और प्रतिक्रियावादी ताक़तों का तीखा ध्रुवीकरण कर पाने में सक्षम होंगे या नहीं।

सरकार में शामिल होने या नहीं होने का प्रश्न सैद्धान्तिक प्रश्न नहीं है। यह एक रणकौशलात्मक प्रश्न है। यदि सरकार में शामिल होने से हमें भावी क्रान्ति को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है, इससे जनतन्त्र को हासिल करने का मार्ग प्रशस्त होता है, राष्ट्रवाद के संघर्ष में जीत सुनिश्चित होती है या इससे क्रान्ति, नवजनवादी क्रान्ति की दिशा में एक क़दम आगे बढ़ती है, तो सरकार में भागीदारी करना सही है, अन्यथा ऐसा करना ग़लत होगा। यदि हम क्रान्ति की नयी योजना, नीति और कार्यक्रम बनाने और बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप नयी राजनीतिक एवं सैन्य लाइन के निरूपण में असफल रहते हैं तो हम सरकार में शामिल नहीं होने पर भी क्रान्ति को आगे नहीं बढ़ा सकते हैं। यदि हम सरकार में रहते हुए भी वर्ग संघर्ष को धारदार और तेज़ कर सकते हैं, तो हम क्रान्ति के मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं।

(बिगुल, अगस्त–सितम्बर, 2008)

नेपाली क्रान्ति : नये दौर की समस्याएँ और चुनौतियाँ, सम्भावनाएँ और दिशाएँ

दिसम्बर, 2008 और जनवरी, 2009 के महीने नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन और पूरे नेपाल के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रहे। **नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी)** और **नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (एकता केन्द्र–मसाल)** के बीच लम्बे समय से जारी एकता–प्रक्रिया का, विगत 13 जनवरी 2009 को एक जनसभा में एकता की सार्वजनिक घोषणा के बाद, सफल समापन हो गया। नयी पार्टी का नाम **एकीकृत नेकपा (माओवादी)** रखा गया है।

नेकपा (माओवादी) और नेकपा (एकता केन्द्र–मसाल) के बीच मतभेद के मुद्दों, राजनीतिक वाद–विवाद और क़दम–ब–क़दम एकता की ओर अग्रवर्ती विकास की प्रक्रिया की चर्चा, **'बिगुल'** के मई और जून 2008 के अंकों में धारावाहिक प्रकाशित लम्बे निबन्ध में हम कर चुके हैं। नेपाली कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर के इन दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटकों की एकता नेपाल में जारी नवजनवादी क्रान्ति की प्रगति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस महत्त्वपूर्ण घटना के बाद क्रान्तिकारी शिविर में एकता–प्रक्रिया की गति और तेज़ हो गयी है। जल्दी ही कुछ और संगठन एकीकृत नेकपा (माओवादी) में शामिल हो जायेंगे। इसकी चर्चा हम लेख में आगे यथास्थान करेंगे।

नेपाल में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों की एकता ने क़तारों और आम मेहनतकश जनता के भीतर नये उत्साह और नयी आशाओं का संचार किया है। लेकिन जन समुदाय की नयी क्रान्तिकारी आकांक्षाओं–अपेक्षाओं की कसौटी पर नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी किस हद तक खरे उतरेंगे, इस प्रश्न का उत्तर अभी भविष्य के गर्भ में है। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि एकता के पहले नेकपा (माओवादी) के भीतर सामाजिक जनवादी भटकाव और "नववामपन्थी मुक्त चिन्तन" की जो रुझानें मौजूद रही हैं (इनकी चर्चा 'बिगुल' के मई–जून

2008 के अंकों में प्रकाशित लेख में की जा चुकी है), उनसे छुटकारा पाने में एकीकृत नेकपा (माओवादी) किस हद तक सफल होती है! सकारात्मक बात यह है कि न केवल नेकपा (एकता केन्द्र–मसाल) ज़्यादातर सही अवस्थिति अपनाकर दक्षिणपन्थी अवसरवादी विचलनों का विरोध करती रही है, बल्कि 2008 के अन्तिम तीन–चार महीनों के दौरान नेकपा (माओवादी) के भीतर भी सामाजिक जनवादी भटकाव की लाइन के विरुद्ध तीखा संघर्ष चलता रहा है। इस संघर्ष में दक्षिणपन्थी अवसरवादी लाइन को काफ़ी हद तक पीछे हटना पड़ा है, हालाँकि यह लाइन अभी भी पार्टी के भीतर मौजूद है। दो लाइनों के इस संघर्ष की चर्चा भी आगे की जायेगी।

संविधान सभा चुनाव के बाद का राजनीतिक घटनाक्रम : एक संक्षिप्त सिंहावलोकन

10 अप्रैल को सम्पन्न हुए संविधान सभा चुनाव में नेपाली कांग्रेस की भारी पराजय और नेकपा (माओवादी) के सबसे अधिक सीटें हासिल करने के बावजूद गिरिजा प्रसाद कोइराला सत्ता से चिपके रहे। माओवादियों को सत्ता में आने से रोकने के लिए नेपाली कांग्रेस ने नेकपा (एमाले) और मधेसी जनाधिकार फ़ोरम सहित सभी बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों को साथ लेने की हरचन्द कोशिशें कीं, लेकिन भारी जनादेश के दबाव और इन सभी बुर्जुआ दलों के आपसी अन्तरविरोध के कारण इनका कोई टिकाऊ संयुक्त मोर्चा अस्तित्व में नहीं आ सका। इस दौरान नेपाली कांग्रेस सत्ता से हटने के लिए लगातार तरह–तरह की शर्तें रखती रही। उसने पहले अन्तरिम संविधान में संशोधन की शर्त रखी, फिर बारह सूत्री शान्ति समझौते से मुकरते हुए जनमुक्ति सेना को भंग करने और हथियार राज्य को सौंपने या नष्ट करने, यंग कम्युनिस्ट लीग को भंग करने तथा जनयुद्ध के दौरान भूस्वामियों से ज़ब्त सम्पत्ति उन्हें लौटाने की माँग रखी। नेकपा (माओवादी) ने इन नयी शर्तों का पुरज़ोर विरोध करते हुए इन्हें 12 सूत्री शान्ति समझौते के साथ विश्वासघात बताया और फिर से देशव्यापी जनान्दोलन की धमकी दी। 28 मई 2008 को संविधान सभा की पहली बैठक में राजतन्त्र की समाप्ति और संघात्मक जनवादी गणराज्य की घोषणा के बाद भी गतिरोध बना रहा। लेकिन पूरे देश में हवा का रुख़ देखते हुए प्रधानमन्त्री गिरिजा प्रसाद कोइराला को जून 2008 के अन्त में अन्ततोगत्वा अपने इस्तीफ़े की घोषणा करनी पड़ी। लेकिन इसके पहले नेकपा (एमाले) और अन्य बुर्जुआ पार्टियों के सहयोग से नेपाली कांग्रेस दो तिहाई बहुमत से प्रधानमन्त्री को हटाये जाने के प्रावधान को अन्तरिम संविधान से हटाने में सफल रही। यानी अब प्रधानमन्त्री को सामान्य

बहुमत से भी हटाया जा सकता था। माओवादियों को राष्ट्रपति प्रणाली (यानी राष्ट्रपति को प्रधान कार्यकारी पद बनाने) के अपने प्रस्ताव से भी पीछे हटना पड़ा। राष्ट्रपति पद को, भारत की तरह, 'सेरेमोनियल' बनाने और प्रधानमन्त्री पद को मुख्य कार्यकारी पद बनाने की अन्तरिम संवैधानिक व्यवस्था उन्हें स्वीकार करनी पड़ी।

जुलाई, 2008 में राष्ट्रपति पद के लिए नेकपा (माओवादी) ने तराई के प्रसिद्ध राजतन्त्र-विरोधी गणतन्त्रवादी रामराजा प्रसाद सिंह को अपना उम्मीदवार बनाया। उनके विरुद्ध नेपाली कांग्रेस के उम्मीदवार डॉ. रामबरन यादव थे। नेकपा (एमाले) माओवादियों के साथ सौदेबाज़ी करके माधव कुमार नेपाल को साझा उम्मीदवार बनाना चाहती थी। इसमें सफलता नहीं मिलने पर उसने ने.कां. के उम्मीदवार का समर्थन किया और बदले में संविधान सभा के अध्यक्ष की कुर्सी हासिल की। इसी तरह की सौदेबाज़ी करके मधेसी जनाधिकार फ़ोरम ने उपराष्ट्रपति पद के अपने उम्मीदवार परमानन्द झा के लिए उपरोक्त दोनों पार्टियों का समर्थन हासिल किया। राष्ट्रपति पद के लिए रामबरन यादव और उपराष्ट्रपति पद के लिए परमानन्द झा विजयी हुए। इस पराजय के बाद नेकपा (माओवादी) ने सरकार बनाने के बजाय विपक्ष में बैठने का निर्णय लिया। इससे एमाले और म. ज.फो. पर दबाव बढ़ गया। उन्हें फिर से जनयुद्ध का भूत सताने लगा। उनके ख़िलाफ़ जो भारी जनाक्रोश था, उसका नतीजा आगामी चुनावों में सामने आने का भी भय था। तीन महत्त्वपूर्ण पदों पर माओवादी उम्मीदवारों की पराजय के साथ ही उनका तात्कालिक उद्देश्य भी पूरा हो चुका था और सत्ता की बन्दरबाँट को लेकर नेपाली कांग्रेस के साथ उनके अन्तरविरोध उभरने लगे थे। दरअसल इन दोनों दलों का उद्देश्य नेपाली कांग्रेस और नेकपा (माओवादी) के साथ सौदेबाज़ी करके अपना उल्लू सीधा करना था और इसमें वे एक हद तक सफल भी हो चुके थे। अगस्त में नेकपा (माओवादी) के साथ सरकार बनाने के लिए नेकपा (एमाले) और मधेसी जनाधिकार फ़ोरम तैयार हो गये। नेकपा (एकता केन्द्र-मसाल) का क़ानूनी मोर्चा – जनमोर्चा, नेपाल पहले से ही साथ था। सी.पी. मैनाली के नेतृत्व वाला नेकपा (माले), नेकपा (संयुक्त) और सद्भावना पार्टी (राजेन्द्र महतो) भी सरकार में शामिल होने को तैयार हो गये। संविधान सभा के चुनावों के ठीक चार माह बाद, कुल 25 में से 21 पार्टियों के समर्थन से, 80 प्रतिशत मत हासिल करके माओवादी पार्टी के चेयरमैन पुष्प कमल दहल 'प्रचण्ड' संघात्मक जनवादी गणराज्य नेपाल के पहले प्रधानमन्त्री बने।

नेपाल में समाज-विकास की दिशा और संक्रमण-अवधि की चुनौतियाँ : क्रान्तिकारी रणनीतिक लक्ष्य के लिए सही रणकौशल का सवाल

निश्चय ही, राजतन्त्र की समाप्ति और संघात्मक जनवादी गणराज्य की घोषणा के साथ माओवादियों के नेतृत्व में नयी अन्तरिम सरकार का गठन नेपाल में जारी जनवादी क्रान्ति का एक महत्त्वपूर्ण अगला मुक़ाम है। यह उपलब्धि महत्त्वपूर्ण है, लेकिन इसे गुणात्मक रूप से भिन्न, क्रान्ति की अगली मंज़िल या अवस्था घोषित करना भ्रामक होगा और बेहद नुक़सानदेह भी।

राजशाही के ख़ात्मे के बावजूद राज्यतन्त्र के ढाँचे और वर्गचरित्र में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया है। क्रान्तिकारी भूमि सुधार का काम अभी भी पूरा नहीं हुआ है। भूस्वामी वर्ग के हितों की नुमाइन्दगी इस समय नेपाली कांग्रेस और अन्य बुर्जुआ दल कर रहे हैं। साथ ही, आज की विश्व परिस्थितियों और नेपाल की ठोस परिस्थितियों में नेपाली पूँजीपति वर्ग को भी दलाल और राष्ट्रीय के परस्पर-विरोधी प्रवर्गों में नहीं बाँटा जा सकता (जैसा कि नेपाल के सभी कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी दल कर रहे हैं)। नेपाल का बड़ा पूँजीपति वर्ग और बड़ा व्यापारी वर्ग अपने चरित्र से अत्यधिक प्रतिक्रियावादी और साम्राज्यवाद-परस्त है, जबकि छोटा पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद से सीमित आज़ादी की आकांक्षा रखता है और देश में पूँजीवादी विकास का भी पक्षधर है। लेकिन राजशाही की समाप्ति और सबसे बड़ी ताक़त के रूप में माओवादियों के सामने आने के बाद, यह वर्ग भी सर्वहारा क्रान्ति से अत्यधिक भयभीत होकर प्रतिक्रान्ति के पाले में जा खड़ा हुआ है। नेकपा (एमाले) जैसी संशोधनवादी पार्टियाँ और क्षेत्रीय बुर्जुआ पार्टियाँ मध्य वर्ग के साथ ही इन छोटे पूँजीपतियों की भी नुमाइन्दगी कर रही हैं जो कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के ख़िलाफ़ निर्णायक लामबन्दी में, आपसी अन्तरविरोधों के बावजूद, बड़े पूँजीपतियों और भूस्वामियों की नुमाइन्दगी करने वाली नेपाली कांग्रेस, सद्भावना पार्टी आदि के साथ खड़ी होंगी। जहाँ तक भूस्वामियों का प्रश्न है, नेपाली कांग्रेस और तराई की मधेस पार्टियाँ पुराने भूस्वामियों के साथ ही उन नये बुर्जुआ भूस्वामियों का भी प्रतिनिधित्व करती हैं जो सीमित स्तर पर पूँजीवादी भूमि सम्बन्धों के विकास के साथ नेपाल में पैदा हो चुके हैं। इस सन्दर्भ में इन पार्टियों का (सीमित हद तक बिस्मार्क, या ज़ारशाही और उसके मन्त्री स्तॉलिपिन जैसा) दोहरा चरित्र है। यदि सर्वहारा शक्तियों की पराजय की स्थिति में नेपाल में बुर्जुआ जनवादी गणराज्य की स्थिति भी क़ायम होगी, तो वहाँ के भूमि सम्बन्धों में ऊपर से, क्रमिक रूपान्तरण के ज़रिये,

("प्रशियाई मार्ग" से) परिवर्तन होना लाज़िमी होगा। नेपाल में सामन्ती भूस्वामियों के हितों को नुक़सान पहुँचाये बग़ैर उन्हें ही पूँजीवादी भूस्वामी बना देने, एक राष्ट्रीय बाज़ार का विकास करने, और इसके लिए साम्राज्यवाद की मातहती स्वीकार करते हुए भी अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा का लाभ उठाने की नेपाल का बड़ा पूँजीपति वर्ग कोशिश करेगा और छोटे पूँजीपति वर्ग की, आपसी अन्तरविरोधों के बावजूद, इस आम नीति एवं रणनीति पर उसके साथ सहमति होगी। यानी, नेपाली कांग्रेस से लेकर नेकपा (एमाले), नेकपा (मा.ले.) जैसी संशोधनवादी पार्टियों तथा क्षेत्रीय और छोटी बुर्जुआ पार्टियों तक की, पूँजीवादी रास्ते के प्रश्न पर कमोबेश आम सहमति होगी और उनकी हर चन्द कोशिश होगी कि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी भी या तो पतित होकर पूँजीवादी संसदीय जनवाद के इस खेल में शामिल हो जायें, या फिर, संक्रमण अवधि का इस्तेमाल अपनी तैयारी के लिए तथा तरह-तरह से कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का आधार कमज़ोर करने के लिए किया जाये और फिर प्रतिक्रान्ति के द्वारा क्रान्ति को निर्णायक रूप से कुचल दिया जाये।

कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के लिए भी इस संक्रमण-अवधि का एकमात्र सही इस्तेमाल यही हो सकता है कि वे निर्णायक संघर्ष की अगली मंज़िल के लिए तैयारी करें, जनयुद्ध के दौरान हासिल ताक़त को हरचन्द कोशिश करके बचायें और उसका विस्तार करें, बुर्जुआ एवं संशोधनवादी दलों के अन्तरविरोधों का लाभ उठायें, उनके जनाधार को संकुचित करें, तथा बुर्जुआ जनवादी व्यवस्था की सीमाओं और प्रतिगामी चरित्र का भण्डाफोड़ करें। ऐसा करने के बजाय यदि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के बीच ऐसी कोई सोच अंशतः भी अपनी जगह बनाती है कि वर्तमान शान्ति प्रक्रिया एक दीर्घकालिक या स्थायी प्रक्रिया है और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी नया संविधान तैयार करके जनता का जनवादी गणराज्य स्थापित कर लेंगे (और जो कमी रह जायेगी, उसे नये संविधान के तहत होने वाले चुनाव में बहुमत हासिल करके संविधान संशोधन करके पूरी कर लेंगे), तो यह एक भीषण आत्मघाती विभ्रम होगा। बात तब और चिन्तनीय हो जाती है, जब हम पाते हैं कि मार्क्सवाद में सैद्धान्तिक इज़ाफ़ा करने के नाम पर बहुदलीय प्रतिस्पर्द्धात्मक जनवादी प्रणाली को सर्वहारा राज्यसत्ता का घटक बनाने की एक प्रबल लाइन नेकपा (माओवादी) के भीतर पहले से ही मौजूद रही है। इस लाइन के विरुद्ध नेकपा (एकता केन्द्र-मसाल) ने संघर्ष किया था और वर्ष 2008 के अन्तिम तीन-चार महीनों के दौरान नेकपा (माओवादी) के भीतर भी इस दक्षिणपन्थी अवसरवादी भटकाव के विरुद्ध तीखा संघर्ष चला, जिसके कारण इस लाइन को पीछे हटना पड़ा। लेकिन यह दक्षिणपन्थी अवसरवादी लाइन, पीछे

हटने के बावजूद, अभी भी एकीकृत नेकपा (माओवादी) के भीतर मौजूद है और विभिन्न रूपों में प्रकट होती रहती है। इसकी अभिव्यक्तियों की आगे हम सिलसिलेवार चर्चा करेंगे। नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन में एकता की जो प्रक्रिया फ़िलहाल जारी है, वह बेहद सकारात्मक बात है। लेकिन एक नकारात्मक बात यह है कि दक्षिणपन्थी अवसरवादी या सामाजिक जनवादी भटकाव अभी भी मुख्य ख़तरे के रूप में मौजूद है। इस भटकाव का जड़मूल से ख़ात्मा ही नेपाली क्रान्ति की सफलता की सर्वोपरि बुनियादी गारण्टी है।

नेपाली क्रान्ति की विजय की मंज़िल अभी दूर है और वहाँ पहुँचने की बुनियादी गारण्टी है विचारधारात्मक भटकावों से मुक्त पार्टी

नेपाली क्रान्ति का रास्ता अत्यन्त लम्बा है और यह बेहद प्रतिकूल विश्व ऐतिहासिक परिस्थितियों में आगे क़दम बढ़ा रही है। नेपाल मात्र 2 करोड़ 90 लाख आबादी का भूआवेष्ठित (चारों ओर ज़मीन से घिरा) देश है, जहाँ बुनियादी एवं अवरचनागत उद्योगों का विकास अत्यन्त कम हुआ है तथा अर्थव्यवस्था बहुत कम विविधीकृत (डायवर्सिफ़ाइड) है। देश की 85 फ़ीसदी आबादी गाँवों में बेहद विपन्न जीवन बिताती है। साक्षरता 50 प्रतिशत से भी कम है। कुपोषण आम बात है और बाल मृत्यु की दर 1000 में 62 है। एक तिहाई आबादी सरकारी ग़रीबी रेखा के नीचे जीती है और लगभग आधा देश बेरोज़गार है। दसियों लाख ग़रीब नेपाली भारत में, खाड़ी के देशों में और दूसरे देशों में मज़दूरी करते हैं तथा भारत और ब्रिटेन की सेनाओं में भाड़े के सिपाही के तौर पर काम करते हैं। इनकी कमाई और पर्यटन उद्योग नेपाल के विदेशी मुद्रा भण्डार का मुख्य स्रोत है।

आम जनता की इन भीषण जीवन–स्थितियों ने नेपाल में सशस्त्र जनक्रान्ति का अनुकूल वस्तुगत आधार तैयार किया। राजशाही के निरंकुश दमन तन्त्र और राजनीतिक जीवन में सर्वव्याप्त भ्रष्टाचार ने आग में घी का काम किया। लेकिन आज की चुनौती यह है कि विरोधी ताक़तों से घिरे, एक भूआवेष्ठित, बेहद पिछड़े देश में, एक ऐसे समय में जब दुनिया में मदद के लिए एक भी समाजवादी देश मौजूद नहीं है, सर्वहारा क्रान्ति किस प्रकार जीवित रहेगी और आगे बढ़ती रहेगी। हमारी यह स्पष्ट और दृढ़ धारणा है कि प्रतिकूलतम परिस्थितियाँ भी क्रान्ति की राह को दुर्गम, लम्बा और जटिल भले बना दें, पर उसका गला नहीं घोंट सकतीं। इतिहास गवाह है कि सर्वहारा क्रान्तियाँ तभी

पराजित हुई हैं या उन्हें कुचल पाना भी दुश्मनों के लिए तभी सम्भव हो पाया है, जब उनकी नेतृत्वकारी शक्ति विचारधारात्मक कमज़ोरी या भटकाव या किसी गम्भीर ग़लती के कारण भीतर से कमज़ोर हो गयी। इतिहास गवाह है कि बाहर के शत्रु कई बार सर्वहारा क्रान्तियों को नहीं कुचल सके, लेकिन भीतर से पैदा हुए भटकाव ने पूँजीवादी पथगामियों के लिए फलने–फूलने का आधार तैयार कर दिया और फिर इन भितरघातियों के हाथों क्रान्तियाँ पराजित हो गयीं। तात्पर्य यह कि विपरीततम वस्तुगत परिस्थितियों में भी, एक विचारधारात्मक रूप से सुदृढ़ पार्टी क्रान्ति को मृत्यु या विपथगमन से बचा सकती है, भले ही उसका रास्ता कुछ और लम्बा हो जाये। नेपाली क्रान्ति के सामने भी आज यही प्रश्न केन्द्रीय है। नेपाली क्रान्ति लोक जनवादी मंज़िल को निर्णायक रूप से पूरा करके समाजवादी संक्रमण की मंज़िल में प्रविष्ट हो, इसमें अभी लम्बा समय लगेगा। तब तक क्रान्ति की निरन्तरता के लिए पार्टी की विचारधारात्मक मज़बूती पहली शर्त है। यदि यह शर्त पूरी हुई तो कालान्तर में विश्व परिस्थितियाँ नेपाली क्रान्ति के लिए अधिक अनुकूल हो जायेंगी। विश्व पूँजीवाद के अभूतपूर्व ढाँचागत संकट के सुदीर्घ दौर में अभी जो महाध्वंस जैसी विश्वव्यापी मन्दी का विस्फोट हुआ है, इससे पूरी दुनिया में सर्वहारा क्रान्ति की धारा जल्दी भले ही आगे न बढ़े (क्योंकि इसके लिए हरावल दस्तों की वैचारिक–राजनीतिक–सांगठनिक मज़बूती अनिवार्य है), लेकिन कालान्तर में दुनिया के विभिन्न देशों में व्यापक जन उभारों और जनान्दोलनों का उठ खड़े होना अवश्यम्भावी है। साथ ही, अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा का उग्र हो जाना भी वर्तमान संकट की अनिवार्य तार्किक परिणति होगी। ऐसी स्थिति में साम्राज्यवादी शक्तियाँ, भारतीय विस्तारवाद और चीनी “बाज़ार समाजवाद” नेपाली क्रान्ति को कुचलने के लिए अपनी शक्ति उस हद तक नहीं लगा पायेंगी और अन्तर साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा का लाभ उठा पाना भी सम्भव होगा। यदि नेपाली क्रान्ति विचारधारात्मक– राजनीतिक कारणों से भीतर से कमज़ोर या विघटित नहीं हुई तो निकट भविष्य में विश्व परिस्थितियाँ उसके अग्रवर्ती विकास के लिए अधिक अनुकूल होंगी। कहने का मतलब यह कि नेपाल की एकीकृत पार्टी में दक्षिणपन्थी अवसरवादी विचलनों के विरुद्ध समझौताहीन संघर्ष और उस संघर्ष की सफलता पर ही नेपाली क्रान्ति का भविष्य मूलतः और मुख्यतः निर्भर है।

नेपाली क्रान्ति अभी भी रणनीतिक सन्तुलन की ही मंज़िल में है, रणनीतिक आक्रमण की मंज़िल अभी दूर है

1996 से 2006 तक जारी जनयुद्ध के दौरान जनमुक्ति सेना ने देश के लगभग 80 प्रतिशत देहाती क्षेत्र को मुक्त करा लिया था। मुक्त क्षेत्र में समान्तर राज्यतन्त्र खड़ा करने का काम भी गति पकड़ चुका था। सड़क, स्कूल, अस्पताल बनाने, उत्पादन एवं विनिमय के क्षेत्र में सहकारिता–आन्दोलन संगठित करने और क्रान्तिकारी अदालतों द्वारा भ्रष्ट एवं जालिम भूस्वामियों को दण्डित करने का काम नेकपा (माओवादी) के नेतृत्व में सफलतापूर्वक शुरू हो चुका था। जब शाही सेना दमन के लिए आगे आयी, तब तक जनमुक्ति सेना देहातों में अपना आधार मज़बूत बना चुकी थी। इसके बाद 2005 में पार्टी ने रणनीतिक सन्तुलन से रणनीतिक आक्रमण की मंज़िल में प्रवेश की घोषणा तो कर दी, लेकिन गाँवों से शहरों को घेरकर और शहरों में जन–विद्रोह संगठित करके राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा करने की स्थिति सम्भव नहीं हो सकी। कारण कि नेपाल की राज्यसत्ता अर्द्धऔपनिवेशिक चीन की तरह कमज़ोर और विश्रृंखलित नहीं थी। साथ ही, 1930 और 1940 के दशकों की विश्व परिस्थितियों से भिन्न, नेपाली शासक वर्ग को साम्राज्यवादियों और विश्व पूँजीवाद से अधिक व्यवस्थित ढंग से मदद मिल रही थी। शहरों में उसका आधार अधिक मज़बूत था। साथ ही, क्रान्तिकारी संघर्ष के आगे बढ़ने के बावजूद, आशा के विपरीत, शाही नेपाल सेना में विद्रोह की स्थिति नहीं बन सकी। यह सही है कि जनयुद्ध ने ही एक देशव्यापी क्रान्तिकारी उभार की स्थिति पैदा की थी, जिसके चलते संसदीय बुर्जुआ पार्टियों को भी अप्रैल 2006 में देशव्यापी जनान्दोलन में शामिल होने और माओवादियों के साथ संयुक्त मोर्चा बनाने के लिए बाध्य होना पड़ा। लेकिन यह भी सही है कि तब की स्थिति में जनयुद्ध की निर्णायक विजय के ज़रिये राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा सम्भव नहीं था। स्थिति यह थी कि न तो क्रान्ति की विजय सम्भव थी और न ही शासक वर्ग उसे कुचल सकता था। ऐसे समय में सरकार और माओवादियों के बीच शान्ति वार्ता के लिए नेकपा (एकता केन्द्र) ने जो प्रयास किये, वे सर्वथा समयानुकूल थे।

आज पश्चदृष्टि से देखने पर कहा जा सकता है कि जनयुद्ध के रणनीतिक सन्तुलन की मंज़िल से रणनीतिक आक्रमण की मंज़िल में प्रवेश का नेकपा (माओवादी) का 2005 का आकलन अपरिपक्व एवं समय–पूर्व था। नेपाली क्रान्ति को अगली मंज़िल में जाने के लिए नये सिरे से शक्ति जुटानी थी तथा अनुकूल समय की प्रतीक्षा के लिए कुछ विराम लेना था। सच्चाई यह है कि

नेपाल की नवजनवादी क्रान्ति आज भी रणनीतिक सन्तुलन की ही मंज़िल में है। रणनीतिक आक्रमण की मंज़िल अभी दूर है। न केवल राजा से शान्ति वार्ता के बाद कोइराला के नेतृत्व में बनी सर्वदलीय अन्तरिम सरकार, बल्कि संविधान सभा के चुनाव के बाद प्रचण्ड के नेतृत्व में बनी बहुदलीय सरकार भी वस्तुतः एक आरजी (प्रॉविज़नल) सरकार ही है। मौजूदा संविधान सभा में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी लगातार संघर्ष करके और संविधान सभा के बाहर से जन संघर्षों का दबाव बनाकर ज़्यादा से ज़्यादा जनपक्षधर बुर्जुआ जनवादी संविधान बनाने की कोशिश भर ही कर सकते हैं। लेकिन राजनीतिक पार्टियों के वर्ग–विश्लेषण में विश्वास करने वाला कोई भी व्यक्ति यह सपने में भी नहीं सोच सकता कि मौजूदा संविधान सभा कोई ऐसा संविधान बना सकती है, जिसके अन्तर्गत एक लोक जनवादी गणराज्य क़ायम हो सकता है। ऐसा सोचना प्रकारान्तर से शान्तिपूर्ण संक्रमण की संशोधनवादी थीसिस को मानना होगा।

हमारी स्पष्ट धारणा है कि वर्तमान संविधान सभा जो नया संविधान बनायेगी, उसके द्वारा भी बुर्जुआ जनवादी गणराज्य ही स्थापित होगा। नये संविधान के अन्तर्गत बनने वाली सरकार यदि एकीकृत नेकपा (माओवादी) की होगी, तब भी वह एक 'प्रॉविज़नल' सरकार ही होगी। ऐसी सरकार जैसे ही साम्राज्यवादी विश्व से निर्णायक विच्छेद और क्रान्तिकारी भूमि सुधार के लिए क़दम उठायेगी, वैसे ही सभी बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियाँ लामबन्द होकर उसके विरुद्ध संघर्ष छेड़ देंगी और बुर्जुआ वर्ग और भूस्वामी वर्ग निश्चय ही सशस्त्र प्रतिक्रान्ति की कोशिश करेंगे। तब नेपाली क्रान्ति को निश्चय ही सशस्त्र संघर्ष की नयी मंज़िल में प्रवेश करना होगा। उस नयी मंज़िल में, ज़्यादा सम्भावना यही है कि क्रान्ति–मार्ग के संश्लेषण में, दीर्घकालिक लोकयुद्ध का पहलू गौण होगा और आम बग़ावत (जनरल इन्सरेक्शन) का पहलू प्रधान होगा। वर्तमान संक्रमण काल तथा संविधान सभा और 'प्रॉविज़नल' सरकार के वर्तमान कार्यकाल के बारे में यदि किसी प्रकार का संशोधनवादी विभ्रम न हो, तो इस अवधि का इस्तेमाल कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी बुर्जुआ जनवाद के वास्तविक चरित्र को नंगा करने और भावी निर्णायक संघर्ष के लिए जन–समुदाय को तैयार करने के लिए कर सकते हैं।

चिन्ता की बात यह है कि नेकपा (माओवादी) का अब तक का व्यवहार इस कसौटी पर खरा नहीं उतरा है। सकारात्मक बात यह है कि नेकपा (एकता केन्द्र–मसाल) पहले से ही नेकपा (माओवादी) के भीतर के संशोधनवादी विचलनों के विरुद्ध संघर्ष करती रही है। हाल के दिनों में नेकपा (माओवादी) के भीतर भी इस प्रश्न पर दो लाइनों का संघर्ष उठ खड़ा हुआ। हम आशा करते हैं

कि एकीकृत नेकपा (माओवादी) संशोधनवादी भटकावों–विच्युतियों से छुटकारा पाकर आने वाले दिनों में नेपाली क्रान्ति को आगे बढ़ाने में सफल होगी।

नेकपा (माओवादी) के भीतर संक्रमण काल के कार्यभारों के बारे में ग़लत सोच, रणकौशल को रणनीति बनाने की भूल, और 'प्रतिस्पर्द्धात्मक संघात्मक गणराज्य' की दक्षिणपन्थी अवसरवादी लाइन

प्रचण्ड के नेतृत्व में नयी सरकार के सत्तारूढ़ होने के कुछ समय बाद ही संक्रमण की अवधि के बारे में नेकपा (माओवादी) के भीतर दो दृष्टिकोण उभरकर सामने आये। केन्द्रीय कमेटी के भीतर, प्रचण्ड के नेतृत्व में एक धड़े ने 'प्रतिस्पर्द्धात्मक संघीय गणराज्य' की स्थापना को तात्कालिक लक्ष्य बनाने की बात कही और 'लोक जनवादी गणराज्य' को दूरगामी या रणनीतिक लक्ष्य बताया। मोहन 'किरण' वैद्य, सी.पी. गजुरेल, राम बहादुर थापा 'बादल' आदि के दूसरे शक्तिशाली धड़े ने इस सोच को दक्षिणपन्थी अवसरवादी भटकाव बताते हुए कहा कि राजशाही की समाप्ति और संविधान सभा के चुनाव के साथ ही बुर्जुआ ढंग का संघात्मक गणराज्य संस्थाबद्ध हो चुका है और अब हमारा लक्ष्य है लोक गणराज्य की स्थापना के लिए संघर्ष करना। प्रचण्ड की यह नयी लाइन वस्तुतः बहुदलीय संसदीय जनवादी प्रणाली को सर्वहारा राज्यसत्ता का 'ऑर्गन' मानने की नेकपा (माओवादी) की पुरानी सोच का ही नया विस्तारित रूप थी। इस थीसिस के अनुसार, पार्टी को फ़िलहाल संघीय प्रतिस्पर्द्धात्मक संसदीय व्यवस्था में ही काम करने की दृष्टि से सरकार चलानी थी और संविधान लिखना था। इसमें अन्तर्निहित था कि सरकार चलाते हुए अपनी जनोन्मुख नीतियों के लिए संघर्ष करते हुए तथा ज़्यादा से ज़्यादा जनोन्मुख संविधान–निर्माण के लिए संघर्ष करते हुए नेकपा (माओवादी) जनता के बीच अन्य बुर्जुआ और संशोधनवादी दलों को एक लम्बी प्रक्रिया में अलग–थलग कर देगी और संसदीय चुनावी प्रतिस्पर्द्धा में उन्हें निर्णायक रूप से पीछे छोड़ने के बाद लोक जनवादी गणराज्य की दिशा में आगे क़दम बढ़ायेगी। ज़ाहिर है कि यह शान्तिपूर्ण संक्रमण की लाइन का ही नया रूप था। इस लाइन की जो व्याख्याएँ आ रही थीं, उनसे तथा सरकार में शामिल नेकपा (माओवादी) के मन्त्रियों के कई निर्णयों से इस लाइन का असली चरित्र खुलकर सामने आने लगा था और इसका विरोध भी मुखर होने लगा था।

यह बात स्पष्ट है कि प्रचण्ड के नेतृत्व में 'प्रॉविज़नल' सरकार का गठन, राजशाही के ख़ात्मे के बावजूद, राज्यसत्ता–परिवर्तन नहीं है। राज्यसत्ता का मुख्य

अंग अभी भी वही सेना है, वही नौकरशाही और वही न्यायपालिका है, बुर्जुआ राज्यसत्ता के मुख्य अवलम्ब के रूप में काम करने वाली धार्मिक संस्थाओं की ताक़त भी फ़िलहाल अक्षुण्ण है, मीडिया पर भी मुख्यतः बुर्जुआ ताक़तें ही हावी हैं और यहाँ तक कि मिली–जुली सरकार में भी संशोधनवादी पार्टियाँ और धुर प्रतिक्रियावादी क्षेत्रीय बुर्जुआ दल शामिल हैं। ज़ाहिर है कि वर्तमान संविधान सभा और मिली–जुली सरकार में भागीदारी एक कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी पार्टी के लिए अन्तरिम अवधि के अल्पकालिक रणकौशल (टैक्टिक्स) से अधिक कुछ नहीं हो सकता। इसे राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा क़तई नहीं कहा जा सकता। लेकिन पार्टी के विदेश ब्यूरो के सदस्य लक्ष्मण पन्त ने *'कोइराला वंश का पतन'* शीर्षक अपने लेख में यह स्थापना दे डाली कि नेपाल में सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग की संयुक्त तानाशाही के रूप में एक नयी राज्यसत्ता अस्तित्व में आ चुकी है, जो मार्क्सवादी विज्ञान में एक इज़ाफ़ा है। इस प्रकार लक्ष्मण पन्त ने सरकार को ही राज्यसत्ता बना दिया और नयी सरकार के गठन को नयी राज्यसत्ता का अस्तित्व में आना बता दिया। इस नग्न संशोधनवादी प्रस्थापना वाले लेख का विस्तृत पोस्टमार्टम हम 'बिगुल' के अगस्त–सितम्बर 2008 के अंक में कर चुके हैं। ग़ौरतलब है कि यह लेख नेकपा (माओवादी) के मुखपत्र 'रेड स्टार' के सितम्बर 21–30, 2008 के अंक में भी प्रकाशित हुआ था और इसके विरोध में कोई टिप्पणी नहीं छपी थी।

'रेड स्टार' के अंकों में एकाधिक बार यह अहम्मन्यतापूर्ण दावा किया गया है कि लेनिन ने संविधान सभा का जो नारा दिया था, वह अक्टूबर क्रान्ति के बाद पूरा नहीं हुआ था, लेकिन नेपाली क्रान्ति ने उसे पूरा कर दिखाया। लेनिन के समय में संविधान सभा के चुनाव में बहुमत हासिल नहीं कर पाने के बाद उसे भंग कर दिया गया था, लेकिन नेपाल में हमने संविधान सभा में भी जीत हासिल करके सर्वहारा जनवाद की अवधारणा को व्यवहार में आगे विकसित किया है। इस बड़बोलेपन के दिवालियेपन और संशोधनवादी चरित्र पर ग़ौर करना ज़रूरी है। लेनिन के समय में संविधान सभा बनाम सोवियत का प्रश्न बुर्जुआ राज्यसत्ता के बलपूर्वक ध्वंस के बाद पैदा हुआ था। बोल्शेविकों के सामने प्रश्न था कि नयी सर्वहारा सत्ता का, सर्वहारा जनवाद का, या यूँ कहें कि सर्वहारा अधिनायकत्व का मुख्य 'ऑर्गन' क्या होगा? सैद्धान्तिक तौर पर बहुदलीय संसदीय जनतन्त्र को बोल्शेविक पहले ही ख़ारिज कर चुके थे। संविधान सभा को नयी सर्वहारा सत्ता का एक 'ऑर्गन' बनाने के बारे में कुछ समय तक उन्होंने सोचा था, लेकिन फिर जल्दी ही वे इस नतीजे पर पहुँचे कि सोवियतें ही सर्वहारा सत्ता का मुख्य 'ऑर्गन' होंगी, वे विधायिका और कार्यपालिका दोनों की भूमिका निभायेंगी तथा उनके चुनाव में शोषक वर्गों की कोई भागीदारी नहीं होगी। दो वर्षों के अनुभव के

बाद बोल्शेविक पार्टी इस नतीजे पर पहुँची कि सोवियतों के माध्यम से शासन चलाने या सर्वहारा अधिनायकत्व लागू करने में पार्टी की संस्थाबद्ध नेतृत्वकारी भूमिका होगी तथा ट्रेडयूनियनों की भूमिका राज्यसत्ता की "आरक्षित शक्ति" की या शासन चलाने के प्रशिक्षण केन्द्र की होगी। नेकपा (माओवादी) इस बात को भूल जाती है कि नेपाल में संविधान सभा का प्रश्न राज्यसत्ता के बलात् ध्वंस के बाद नहीं उठा है। यह वर्ग-संघर्ष में रणनीतिक शक्ति-सन्तुलन की संक्रमण-अवधि के दौरान एक अन्तरिम समझौते की व्यवस्था के रूप में सामने आया है और ऐसी संविधान सभा के चुनाव में सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरना इतनी बड़ी क्रान्तिकारी उपलब्धि नहीं है, जिसके आधार पर बोल्शेविक पार्टी के अनुभवों के समाहार को संशोधित करने और मार्क्सवादी विज्ञान में इज़ाफ़ा करने का दावा ठोंक दिया जाये। ऐसा वही कर सकता है जो शान्ति समझौते और संविधान सभा के चुनाव को अक्टूबर क्रान्ति की तरह राज्यसत्ता परिवर्तन की घटना माने। कहना नहीं होगा कि यह बेहद सतही क़िस्म की संशोधनवादी समझ ही हो सकती है।

सरकार में भागीदारी के रणकौशलात्मक इस्तेमाल के बजाय "सरकार चलाने" का दक्षिणपन्थी भटकाव

मिलीजुली अन्तरिम सरकार के भीतर नेतृत्वकारी भूमिका निभाते हुए नेकपा (माओवादी) के प्रतिनिधियों का जो आचरण रहा है, उसमें से भी दक्षिणपन्थी अवसरवादी भटकाव की स्पष्ट दुर्गन्ध आती रही है। सरकार में शामिल होते समय नेकपा (माओवादी) के सामने तीन स्पष्ट कार्यभार थे : **पहला,** ज़्यादा से ज़्यादा जनपक्षधर संविधान बनाना, **दूसरा,** शान्ति-प्रक्रिया को तार्किक परिणति तक पहुँचाना और **तीसरा,** सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक परिवर्तन या राज्य और समाज के पुनर्गठन के लिए प्रयास करना। इन तीनों कार्यभारों की बुनियादी अन्तर्वस्तु एक थी और वह यह कि बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के कार्यभारों को अधिकतम सम्भव तेज़ और रैडिकल ढंग से पूरा करने के लिए बुर्जुआ वर्ग के ऊपर दबाव बनाया जाये, इस प्रक्रिया में उनके चरित्र को और बुर्जुआ जनवाद की सीमाओं को जनता के सामने ज़्यादा से ज़्यादा स्पष्ट किया जाये, बुर्जुआ वर्ग को ज़्यादा से ज़्यादा अलग-थलग किया जाये, जनयुद्ध की उपलब्धियों को और वैकल्पिक सत्ता केन्द्रों को यथासम्भव सुरक्षित रखते हुए अपने सामाजिक आधार का विस्तार किया जाये, जनान्दोलनों के द्वारा मेहनतकश वर्गों की पहलक़दमी और क्रान्तिकारी सक्रियता को बरकरार रखा जाये तथा बुर्जुआ वर्ग के साथ फ़ौरी समझौते की इस अवधि के समाप्त होते ही लोक जनवादी गणराज्य की स्थापना

के निर्णायक संघर्ष की सर्वतोमुखी तैयारी को कमान में रखकर ही अपनी सारी कार्रवाइयाँ संचालित की जायें। लेकिन व्यवहारत: देखने में यह आया कि संविधान निर्माण और भूमि–सुधार, रोज़गार के अधिकार, मज़दूरों के अधिकार, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के अधिकार को मूल नागरिक अधिकार बनाने को लेकर संविधान सभा के भीतर और बाहर प्रयास करने के बजाय माओवादियों ने मुख्य ज़ोर सरकार चलाने पर दिया। उन्होंने बुर्जुआ दलों को 'एक्सपोज़' करके अपना जन–समर्थन मज़बूत करने के बजाय सरकार के बुर्जुआ विकास के क़दमों और शासकीय "कल्याणकारी", "विकास" की कार्रवाइयों द्वारा अपना सामाजिक आधार मज़बूत करने का सुधारवादी रास्ता चुना। प्रधानमन्त्री प्रचण्ड और वित्तमन्त्री बाबूराम भट्टराई लगातार पूँजीपतियों को आश्वस्त करते रहे कि उन्हें पूँजी लगाने (यानी मेहनतकशों को निचोड़ने) का पूरा अवसर मिलेगा क्योंकि नेपाली क्रान्ति का आज का कार्यभार है सामन्ती निरंकुश सामाजिक ढाँचे को पूँजीवादी जनवादी ढाँचे में रूपान्तरित करना। सितम्बर में बाबू राम भट्टराई ने जो बजट पेश किया उसमें भारत और चीन की विकास–परियोजनाओं की तर्ज़ पर 'पब्लिक–प्राइवेट पार्टनरशिप' पर बल दिया गया। वैसे कहने के लिए उन्होंने सहकारिता को अर्थव्यवस्था का दूसरा स्तम्भ बताया, लेकिन ज़ाहिर है कि यह महज़ एक रस्मी बात थी। मौजूदा नौकरशाही तन्त्र और सामाजिक–आर्थिक ढाँचे के अन्तर्गत नेपाल में केवल बुर्जुआ ढंग की सहकारिता ही विकसित हो सकती है। जहाँ तक जनता के क्रान्तिकारी सहकारिता आन्दोलन की बात है, शासकीय कार्रवाइयों पर ही मुख्य बल देने के कारण देहात के पुराने मुक्त क्षेत्रों में लोकसत्ता के जो प्रारम्भिक रूप विकसित हुए थे, जब वे ही आज ठहराव और विघटन का शिकार हो रहे हैं तथा जन पहलक़दमी कुन्द हो रही है, तो आम जनता का सहकारी आन्दोलन भला कैसे आगे विकसित हो सकता है? स्पष्ट है कि नेकपा (माओवादी) के भीतर जो दक्षिणपन्थी धड़ा रहा है, वह संविधान–लेखन और सरकार चलाने की प्रक्रिया में बुर्जुआ जनवाद की सीमाओं को एक्सपोज़ करके नवजनवादी क्रान्ति के लिए जनलामबन्दी को आगे बढ़ाने के बजाय लोकप्रिय सुधारवादी शासकीय क़दमों से लोकप्रियता अर्जित करके आगामी चुनावों में सफलता की गारण्टी चाहता है, वह नीचे से नहीं बल्कि ऊपर से (यानी सरकार के ज़रिये) जनवादी क्रान्ति के कार्यभारों को पूरा करना चाहता है और इस प्रक्रिया में वर्ग–संघर्ष को नहीं बल्कि उत्पादक शक्तियों के विकास को कुंजीभूत कड़ी बनाकर अपनी भूमिका तय कर रहा है। यह माओवाद नहीं, बल्कि देङवाद है।

सरकार में रहते हुए हर सम्भव जनकल्याणकारी क़दम उठाते हुए माओवादी यदि सतत प्रचार की कार्रवाई द्वारा जनता को बुर्जुआ जनवाद की

सीमाओं से अवगत कराते रहते और उनका मुख्य ज़ोर आर्थिक विकास के बजाय यदि जन संघर्षों को आगे बढ़ाने पर होता, तो शायद किसी को आपत्ति नहीं होती। लेकिन यहाँ तो मामला ही उलटा है। कोई आश्चर्य नहीं कि आज ('रेड स्टार' में ही छपी एक रिपोर्ट के मुताबिक़) रोल्पा के पुराने आधार क्षेत्र की जनता यह सोचने लगी है कि माओवादी भी अब अपना क्रान्तिकारी लक्ष्य भूलकर काठमाण्डू की कुलीनतावादी संसदीय पार्टियों के सहयात्री बन चुके हैं। मामले की गम्भीरता तब और बढ़ जाती है, जब पता चलता है कि विगत 27 जनवरी को मन्त्रिमण्डल ने दो अध्यादेश जारी करके एक निवेश बोर्ड का गठन किया और एक विशेष आर्थिक क्षेत्र ('सेज') को मंज़ूरी दे दी। इसके पहले 16 जनवरी को नेपाली कांग्रेस को छोड़कर छह बड़ी राजनीतिक पार्टियों के बीच इस बात पर आम सहमति बनी कि कुछ बुनियादी सेवा क्षेत्रों में हड़ताल पर रोक लगा दी जाये। इन क्षेत्रों में अस्पताल, यातायात और कस्टम ऑफ़िसों के अतिरिक्त उद्योगों को भी रखा गया है। उल्लेखनीय है कि विकास के नाम पर हड़ताल का अधिकार छीनने के निर्णय में माओवादी उस देश में भागीदार बन रहे हैं जहाँ 1995 में पहली बार जो श्रम क़ानून बने वे केवल 6 प्रतिशत मज़दूरों पर लागू होते हैं। विगत दिसम्बर में न्यूनतम वेतन लागू करने की माँग को लेकर नेपाल के 20,000 जूट मिल मज़दूरों ने जुझारू आन्दोलन चलाया था। अब विकास के नाम पर माओवादियों के नेतृत्व वाली सरकार मज़दूरों से यह अधिकार भी छीन लेना चाहती है। सर्वहारा वर्ग की पहलक़दमी को समाप्त करने वाले इस निर्णय को किसी भी रणकौशल के नाम पर जायज़ नहीं ठहराया जा सकता। यहाँ पर नेपाल के कॉमरेडों को इतिहास की एक बहस की याद दिलाना हम ज़रूरी समझते हैं। समाजवादी संक्रमण के दौर में भी लेनिन मज़दूरों को ट्रेडयूनियनों के माध्यम से संघर्ष का अधिकार देने के उत्कट पक्षधर थे। त्रात्स्की और बुखारिन द्वारा ट्रेडयूनियनों के सरकारीकरण के प्रस्ताव का विरोध करते हुए उन्होंने कहा था कि चूँकि सर्वहारा अधिनायकत्व की शासकीय मशीनरी के भीतर बुर्जुआ और नौकरशाहाना विकृतियाँ मौजूद हैं, इसलिए मज़दूर वर्ग को ट्रेडयूनियनों के ज़रिये अपने अधिकारों की हिफ़ाज़त के लिए संघर्ष का अधिकार होना चाहिए। यानी जब ट्रेड यूनियनों के हड़ताल के अधिकार को समाजवादी संक्रमण के दौर में भी नहीं छीना जा सकता, तो नेपाल की मिली-जुली प्रॉविज़नल सरकार में शामिल माओवादियों द्वारा विकास के नाम पर उठाये गये इस क़दम को सही भला कैसे सिद्ध किया जा सकता है? यदि क्रान्ति के व्यापक हित में यह ज़रूरी भी था, तो माओवादियों को मज़दूर वर्ग के बीच पार्टी के राजनीतिक वर्चस्व और साख के आधार पर

उसे हड़ताल न करने के लिए तैयार करना चाहिए था, न कि बुर्जुआ पार्टियों के साथ आम सहमति बनाकर ऊपर से लादे गये किसी शासकीय निर्णय के द्वारा।

सेनाओं के विलय का सवाल : कुछ शंकाएँ और कुछ सवाल

इसी सम्बन्ध में कुछ और अहम मुद्दों पर भी विचार करना ज़रूरी है। नेपाल की वर्तमान सेना (जो भूतपूर्व शाही सेना है) के साथ जनमुक्ति सेना का विलय करके एक राष्ट्रीय सेना के निर्माण पर माओवादी काफ़ी बल देते रहे हैं, जो कि शान्ति समझौते की एक शर्त रही है। लेकिन ज़रूरी नहीं कि यह क़दम क्रान्ति के हक़ में ही हो। परस्पर विरोधी वर्ग–चरित्र वाली इन दोनों सेनाओं की सारभूत एकता सम्भव ही नहीं। यह केवल एक रणकौशलात्मक क़दम ही हो सकता है जिसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि जनमुक्ति सेना की विचारधारात्मक–राजनीतिक तैयारी कितनी पुख़्ता है और बुर्जुआ सेना के ज़्यादा से ज़्यादा आम जवानों को क्रान्ति के पक्ष में जीत लेने में वह किस हद तक सक्षम है! यदि ये दोनों शर्तें पूरी नहीं होती हैं, तो विलय की प्रक्रिया जनमुक्ति सेना के बड़े हिस्से को भी पतित करके एक बुर्जुआ सेना में तब्दील कर सकती है और जनता तथा जनयुद्ध के दौर की सारी उपलब्धियों को अरक्षित करके बुर्जुआ वर्ग के रहमोकरम पर छोड़ सकती है। इस आशंका के पीछे एक मज़बूत आधार है। जनमुक्ति सेना की क़तारों में अतीत में ऐसे सैन्यवादी और अराजकतावादी भटकाव देखने को मिलते रहे हैं जो राजनीतिक शिक्षा के अभाव के प्रमाण रहे हैं। ऐसी सेना के एक बड़े हिस्से का यदि बुर्जुआकरण हो जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। आज पीछे मुड़कर देखने पर इस बात पर भी विचार करना ज़रूरी लगता है कि जिन दिनों जनयुद्ध शिखर पर था उन दिनों में भी शाही सेना की क़तारों में कोई विद्रोह क्यों नहीं हुआ? यह ख़बर भी यदि सही है तो विचारणीय है कि कैण्टोनमेण्ट में रहने के दौरान, विगत एक वर्ष के दौरान जनमुक्ति सेना के एक हिस्से में निराशा भी फैलती रही है और कुछ मुक्ति योद्धा घरों को वापस भी लौटते रहे हैं।

हमारा मानना है कि शान्ति समझौते के दौरान पूरी जनमुक्ति सेना को अपने हथियार संयुक्त राष्ट्र संघ के मिशन की देखरेख में सौंपना और कैण्टोनमेण्ट में रहना यदि ज़रूरी था, तो भी पार्टी को जनता के बीच से आत्मरक्षार्थ स्वयंसेवक दस्तों और जन मिलिशिया के रूप में नये सिरे से जन समुदाय को हथियारबन्द करने की प्रक्रिया चलानी चाहिए थी। अव्वलन तो होना यह चाहिए था कि

जनमुक्ति सेना के एक हिस्से को ऊपरी तौर पर विघटित करके जनता के बीच फैला दिया जाता, लेकिन हम नहीं जानते कि ऐसा सम्भव था या नहीं।

पूरी पार्टी को खुला करने का प्रश्न और हमारी शंकाएँ

हमारा यह भी मानना है कि संविधान सभा चुनावों में भागीदारी से लेकर सरकार में भागीदारी तक के पूरे दौर में, पूरी पार्टी को खुला और क़ानूनी बनाना किसी भी रूप में उचित नहीं है। न केवल नेकपा (माओवादी) चुनाव के समय से खुली रही है, बल्कि विलय के पहले नेकपा (एकता केन्द्र–मसाल) ने भी जनमोर्चा को भंग करके पूरे केन्द्रीय नेतृत्व समेत पूरी पार्टी को खुला करने की घोषणा की। हमारा मानना है कि प्रॉविज़नल सरकार की वर्तमान संक्रमण अवधि का रणकौशल के रूप में इस्तेमाल करते हुए, पार्टी के भूमिगत ढाँचे को बनाये रखा जाना चाहिए तथा उसके एक हिस्से को ही बुर्जुआ जनवाद की परिस्थितियों के भरपूर इस्तेमाल के लिए खुला किया जाना चाहिए।

क्रान्तिकारी वैकल्पिक सत्ता की मौजूदगी और विकास ज़रूरी है!

वेनेज़ुएला में ह्यूगो शावेज़ की सत्ता निश्चय ही कोई समाजवादी सत्ता नहीं है। शावेज़ का "समाजवाद" "पेट्रो डॉलर समाजवाद" है और अब शावेज़ के अनुयाइयों के बीच से भी एक नया नौकरशाहाना बुर्जुआ वर्ग उभर रहा है। लेकिन साम्राज्यवादियों और देशी बड़े पूँजीपतियों की मर्ज़ी के विपरीत, शावेज़ के सत्ता में अब तक टिके रहने का मूल कारण यह है कि नौकरशाही और मीडिया पर बुर्जुआ जकड़बन्दी के बावजूद, ग्रास रूट स्तर पर वहाँ तमाम जन संस्थाएँ वैकल्पिक सत्ता केन्द्र के रूप में मौजूद हैं और सेना के बड़े हिस्से के बीच शावेज़ का मज़बूत समर्थन–आधार है। वहाँ कमोबेश दोहरी सत्ता जैसी स्थिति बनी हुई है। सीमित सन्दर्भों में इस उदाहरण से नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के लिए कुछ ज़रूरी सबक़ निकलते हैं। नेपाली क्रान्ति के अग्रवर्ती विकास के लिए ज़रूरी है कि नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी अन्तरिम सरकार चलाते हुए भी सतत क्रान्तिकारी प्रचार एवं उद्वेलन की कार्रवाई के ज़रिये जन समुदाय को मौजूदा सत्ता–संरचना की सीमाओं से परिचित कराते रहें, जन पहलक़दमी को लगातार जागृत करके, पुराने मुक्त क्षेत्रों के आधार का इस्तेमाल करते हुए, ग्रासरूट स्तर पर तरह–तरह की जनसंस्थाओं के रूप में वैकल्पिक क्रान्तिकारी

सत्ता केन्द्र विकसित करें और दोहरी सत्ता की स्थिति पैदा करने की दिशा में आगे बढ़ें। केवल तभी आने वाले दिनों में आम जनविद्रोह को प्रधान पहलू बनाते हुए राज्यसत्ता पर निर्णायक क़ब्ज़ा किया जा सकेगा और सर्वहारा जनवाद का यदि कोई रूप विकसित होना भी होगा तो वह इसी प्रक्रिया में विकसित होगा।

"कुछ विश्व ऐतिहासिक" करने की बेचैनी पिछड़े समाज की कूपमण्डूकता की उपज है!

बहुदलीय प्रणाली को नेपाली क्रान्ति के अभी तक के अनुभवों के आधार पर सर्वहारा जनवाद का 'ऑर्गन' घोषित कर देना निहायत अपरिपक्व निर्णय है और अधकचरे ढंग से अतीत के महान सामाजिक प्रयोगों के अनुभवों के समाहार को ख़ारिज करना है। वर्तमान मिली-जुली सरकार सर्वहारा अधिनायकत्व या जनता के जनवादी अधिनायकत्व के दौर की सरकार नहीं है। इसमें भागीदारी अल्पकालिक रणकौशल मात्र है। जब तक नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी जनता के जनवादी अधिनायकत्व के अन्तर्गत बहुदलीय व्यवस्था को चलाने का कोई सफल प्रयोग न कर लें, तब तक ऐसे किसी विचारधारात्मक इज़ाफ़े की बात ख़याली पुलाव पकाने के समान है। दरअसल, कुछ "विश्व ऐतिहासिक" करने की बेचैनी नेकपा (माओवादी) में कुछ ज़्यादा ही दीखती रही है। नेतृत्व में मौजूद राजनीतिक कैरियरवाद के साथ ही यह पिछड़े समाज की कूपमण्डूकता की देन है। प्रायः यह देखा जाता है कि पिछड़े समाजों में लोग "दुनिया की सबसे बड़ी", या "सबसे अनूठी" चीज़ों के अपने आसपास होने का दावा करते रहते हैं। 'प्रचण्ड पथ' का आविष्कार भी इसी बेचैनी की देन है, जिसकी आलोचना 'बिगुल' में पहले की जा चुकी है। नेपाली क्रान्ति को इक्कीसवीं शताब्दी की नयी सर्वहारा क्रान्तियों का प्रस्थान बिन्दु बताना और आने वाले दिनों की क्रान्तियों के लिए राह दिखाने का दावा करना भी एक बचकानापन ही है। सामाजिक-आर्थिक संरचना के पिछड़ेपन की दृष्टि से, नेपाली क्रान्ति बीसवीं शताब्दी की सर्वहारा क्रान्तियों की ही अगली कड़ी है। यह गत शताब्दी का छूटा हुआ कार्यभार है जो वर्तमान शताब्दी में पूरा हो रहा है। हर देश की क्रान्तिकारी परिस्थितियों की अपनी कुछ मौलिकता-नवीनता होती है और हर क्रान्ति अपने आप में महान होती है। उसे बलपूर्वक महान सिद्ध करने के लिए 'ट्रेण्ड सेटर' और 'पाथ-ब्रेकिंग' बताना कूपमण्डूकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। सर्वहारा जनवाद की अब तक की अवधारणा में विकास और संविधान सभा के प्रयोग के अनूठेपन का दावा भी इसी कूपमण्डूकता की देन है। इसी कूपमण्डूकता के चलते नेकपा (माओवादी) अतीत की महान क्रान्तियों के अनुभवों की तो

बचकाने ढंग से कमियाँ निकालती है, लेकिन नववामपन्थी "मुक्त चिन्तन" उसे काफ़ी प्रभावित करता है। सर्वहारा क्रान्तियों के इतिहास की हास्यास्पद ढंग से छीछालेदर करने वाला रोशन किस्सून का लेख हो या समीर अमीन का लम्बा साक्षात्कार, पार्टी मुखपत्र में उन्हें छापने के बाद न तो कोई बहस चलायी जाती है, न ही कोई आलोचनात्मक टिप्पणी दी जाती है। इस क़िस्म की "ग़ैरपक्षधर वस्तुपरकता" पार्टी के विचारधारात्मक भटकाव का ही जीता-जागता प्रमाण है।

नेकपा (माओवादी) के मुखपत्र में विचारधारात्मक भटकाव के नमूने

उल्लेखनीय यह भी है कि नेकपा (माओवादी) ने एक वर्ष से भी अधिक समय के दौरान अपने मुखपत्र 'रेड स्टार' में सांस्कृतिक क्रान्ति, माओवाद, देङ के "बाज़ार समाजवाद" या पूँजीवादी पुनर्स्थापना के बारे में कोई भी विचारधारात्मक सामग्री नहीं छापी है। चीन की आर्थिक-सामाजिक प्रगति दर्शाने वाले विवरण या चीनी पार्टी द्वारा नेपाली क्रान्ति की और 'प्रचण्ड की पार्टी' की प्रशंसा की ख़बरें, क्यूबा की क्रान्ति की वर्षगाँठ और प्रगति की ख़बरें ज़रूर देखने को मिलती हैं। किसी भी देश के साथ कूटनीतिक रिश्तों को विचारधारा से सर्वथा अलग करके देखना चाहिए। पार्टी मुखपत्र कूटनीति का नहीं बल्कि विचारधारात्मक प्रचार और संघर्ष का साधन होता है। 'रेड स्टार' में छपी एक रपट में कोरिया में समाजवाद की प्रगति की और "जुछे विचारधारा" की मुक्त कण्ठ से तारीफ़ की गयी है। कोरिया की कम्युनिस्ट पार्टी आज संशोधनवाद के रास्ते पर काफ़ी दूर निकल आयी है। उसके दस्तावेज़ों के अध्ययन से यह बात एकदम स्पष्ट है। लेकिन नेकपा (माओवादी) यदि उसे अभी भी क्रान्तिकारी पार्टी मानती है तो यह या तो स्वयं उसका ही गम्भीर भटकाव है या फिर हद दर्जे की नासमझी है।

नेकपा (माओवादी) के भीतर दक्षिणपन्थी अवसरवादी लाइन के विरुद्ध संघर्ष और उसके सकारात्मक नतीजे

जैसा कि हमने ऊपर भी उल्लेख किया है, सकारात्मक बात यह है कि नेकपा (माओवादी) के भीतर दक्षिणपन्थी अवसरवादी प्रवृत्ति के विरुद्ध केन्द्रीय कमेटी से लेकर नीचे तक तीखा संघर्ष सितम्बर 2008 से लगातार जारी था। हालाँकि दूसरा पक्ष भी कई मसलों पर स्पष्ट नहीं है और कहीं-कहीं खुद भी "वाम" या दक्षिण की विच्युति का शिकार है, लेकिन मुख्य पहलू की दृष्टि से

उसकी अवस्थिति सही रही है।

पार्टी के भीतर दो लाइनों के संघर्ष का शिखर बिन्दु था, काठमाण्डू के निकट खारीपाती में 21 नवम्बर 2008 से शुरू हुआ छह दिवसीय राष्ट्रीय महाधिवेशन। इस महाधिवेशन में प्रचण्ड ने अपने दस्तावेज़ में प्रतिस्पर्द्धात्मक संघात्मक गणराज्य की लाइन रखी, जबकि किरण वैद्य ने लोक गणराज्य की लाइन रखी। लम्बी बहस के बाद 'लोक संघात्मक जनवादी राष्ट्रीय गणराज्य' के नारे पर आम सहमति बनी। संक्षेप में इसे 'लोक गणराज्य' ही कहने का निर्णय लिया गया। हालाँकि यह एक समझौता फ़ार्मूला था, लेकिन मुख्यतः यह दक्षिणपन्थी अवसरवादी लाइन की पराजय थी। प्रचण्ड के नेतृत्व वाला धड़ा संविधान सभा और सरकार में भागीदारी के ज़रिये प्रतिस्पर्द्धात्मक संघात्मक गणराज्य को मज़बूत बनाने पर बल दे रहा था, लेकिन महाधिवेशन ने आधिकारिक पार्टी लाइन यह तय की कि सड़क, संविधान सभा और सरकार – इन तीनों मोर्चों पर व्यापक संघर्ष करते हुए पार्टी लोक गणराज्य की स्थापना की दिशा में आगे बढ़ेगी, जिसमें सड़क का मोर्चा प्रमुख मोर्चा होगा। इस प्रकार संसदीय मार्ग पर जनसंघर्ष के मार्ग को प्रमुखता दी गयी। निश्चय ही, यह क्रान्तिकारी लाइन की एक जीत थी, लेकिन जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, इस महाधिवेशन के बाद भी अध्यादेश द्वारा सेज़ की स्थापना और हड़ताल पर रोक जैसे कई ऐसे क़दम माओवादी नेतृत्व वाली सरकार ने उठाये, जिनमें दक्षिणपन्थी रुझान की मौजूदगी देखी जा सकती है।

खारीपाती राष्ट्रीय महाधिवेशन सकारात्मक दिशा में एक महत्त्वपूर्ण क़दम था। इसके तत्काल बाद नेकपा (माओवादी) और नेकपा (एकता केन्द्र–मसाल) के बीच जारी एकता–प्रक्रिया तेज़ी से आगे बढ़ी। लोक गणराज्य की स्थापना के लिए संघर्ष की लाइन पर एकता केन्द्र–मसाल की भी सहमति थी। मई–जून 2008 में **'बिगुल'** में प्रकाशित लेख में हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि एकता केन्द्र–मसाल माओवादियों के "वामपन्थी" और दक्षिणपन्थी अवसरवादी भटकावों के विरुद्ध पहले भी संघर्ष करता रहा था। इस तथ्य का उल्लेख भी किया गया है कि बुनियादी मतभेदों के हल होने के साथ ही दोनों पार्टियों के बीच एकता की प्रक्रिया संविधान सभा चुनावों के पहले ही शुरू हो चुकी थी, पर चुनाव और उसके बाद की परिस्थितियों में इसकी गति शिथिल पड़ गयी थी।

नेकपा (माओवादी) और नेकपा (एकता केन्द्र–मसाल) के बीच एकता और क्रान्तिकारी ध्रुवीकरण की प्रक्रिया की तेज़ गति

विगत 8–9 दिसम्बर को नेकपा (माओवादी) ने एक और राष्ट्रीय सम्मेलन किया, जिसमें कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को एक पार्टी में एकताबद्ध करने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए, एकता केन्द्र–मसाल के साथ एकता का प्रस्ताव पारित किया गया, लेकिन साथ ही उससे माओवाद को पार्टी के मार्गदर्शक सिद्धान्त के रूप में स्वीकारने का आग्रह भी किया गया। नेकपा (एकता केन्द्र–मसाल) का दूसरा राष्ट्रीय महाधिवेशन 30–31 दिसम्बर 2008 और 1 जनवरी 2009 को सम्पन्न हुआ। महाधिवेशन ने सर्वसम्मति से राजनीतिक रिपोर्ट के साथ ही पार्टी एकता का प्रस्ताव भी पारित किया। उक्त महाधिवेशन के निर्णय के अनुसार 3 जनवरी को पार्टी के क़ानूनी मोर्चा – जनमोर्चा, नेपाल को भंग कर दिया गया और 6 जनवरी को पोलित ब्यूरो और केन्द्रीय कमेटी सहित पूरी पार्टी को सार्वजनिक करने की घोषणा एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में की गयी (पूरी पार्टी को खुला करने के प्रश्न पर हम अपनी राय ऊपर दे चुके हैं)। इस प्रेस कॉन्फ्रेंस में नेकपा (माओवादी) के साथ एकता के निर्णय की घोषणा भी की गयी। उपरोक्त महाधिवेशन के पहले ही एकता केन्द्र ने नेकपा (माओवादी) को सूचित कर दिया था कि वह पहले की साझा सहमति की इस अवस्थिति पर अभी भी क़ायम है कि नयी एकीकृत पार्टी के मार्गदर्शक सिद्धान्त के रूप में माओवाद/माओ विचारधारा लिखा जाना चाहिए।

उल्लेखनीय है कि पार्टी एकता के लिए एक तालमेल कमेटी विगत लगभग एक वर्ष से काम कर रही थी जिसमें नेकपा (माओवादी) की ओर से प्रचण्ड, बाबूराम भट्टराई, किरण, बादल, कृष्णबहादुर महरा, पोस्टबहादुर बोगती और एकता केन्द्र–मसाल की ओर से प्रकाश, अमिक सेरचन, निनु चपागाईं, गिरिराज मणि पोखरेल, लीलामणि पोखरेल और भीम प्रसाद गौतम शामिल थे। इस तालमेल कमेटी की बैठक में एकीकृत पार्टी के लिए अन्तरिम राजनीतिक रिपोर्ट का मसौदा प्रचण्ड ने और आगामी राष्ट्रीय कांग्रेस तक नयी एकीकृत पार्टी के संचालन के लिए सांविधिक नियमावली का मसौदा प्रकाश ने तैयार किया। तालमेल कमेटी ने उन्हें अन्तिम रूप दिया और फिर दोनों पार्टियों की केन्द्रीय कमेटियों ने उन्हें पारित किया।

12 जनवरी 2009 को दोनों पार्टियों की केन्द्रीय कमेटियों की संयुक्त बैठक हुई जिसमें नेकपा (माओवादी) की 106 सदस्यीय केन्द्रीय कमेटी और नेकपा

(एकता केन्द्र–मसाल) की 31 सदस्यीय केन्द्रीय कमेटी को मिला देने के साथ ही एकीकरण की औपचारिक प्रक्रिया पूरी हो गयी। यह तय किया गया कि 137 सदस्यीय नयी केन्द्रीय कमेटी की सदस्य संख्या कुछ और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों के साथ एकता के बाद बढ़ाकर 175 तक की जा सकती है। यह भी निर्णय लिया गया कि वर्तमान केन्द्रीय कमेटी ही आगामी राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए आर्गेनाइज़िंग कमेटी का भी काम करेगी। नयी पार्टी का नाम एकीकृत नेकपा (माओवादी) रखा गया, जिसका मार्गदर्शक सिद्धान्त मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओवाद/माओ विचारधारा बनाया गया। प्रचण्ड पथ को मार्गदर्शक सिद्धान्त से हटा दिया गया लेकिन इस प्रश्न पर तथा माओवाद/माओ विचारधारा के प्रश्न पर पार्टी के भीतर आम सहमति पर पहुँचने की दृष्टि से आन्तरिक बहस का निर्णय लिया गया। प्रचण्ड को सर्वसम्मति से पार्टी–चेयरमैन चुना गया।

13 जनवरी को टुण्डीखेल, काठमाण्डू में हुई एक जनसभा में पार्टी एकता की सार्वजनिक घोषणा की गयी। 15 जनवरी को नयी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी की दूसरी बैठक हुई।

पोलित ब्यूरो और सेक्रेटेरियट के गठन के बाद नयी पार्टी के नेतृत्व के बीच सांगठनिक ज़िम्मेदारियों के बँटवारे, नीचे की कमेटियों तक के एकीकरण तथा सभी जनसंगठनों के एकीकरण की प्रक्रिया जनवरी के पूरे महीने चलती रही और यह सिलसिला अभी भी जारी है।

कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के बीच एकता की यह प्रक्रिया अभी और आगे बढ़ने वाली है। इस क्रम में अगली एकता नवराज शर्मा के नेतृत्व वाले नेकपा (मा–ले, क्रान्तिकारी) से होनी है। यह सी.पी. मैनाली के नेतृत्व वाली संशोधनवादी पार्टी नेकपा (माले) से अलग होकर क्रान्तिकारी अवस्थिति अपनाने वाला एक संगठन है, जो नेकपा (माओवादी) के साथ एकता का निर्णय पहले ही ले चुका था। अब यह एकता भी जल्दी ही सम्पन्न हो जायेगी।

एक दूसरे महत्त्वपूर्ण कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन नेकपा (एकीकृत) के साथ भी एकता की कोशिशें जारी हैं। उक्त संगठन के नेतृत्व के एक सदस्य नवराज सुबेदी इस बात के लिए प्रयासरत हैं कि पूरा संगठन एकीकृत नेकपा (माओवादी) के साथ एकता कर ले। यदि ऐसा सम्भव नहीं हो सका तो भी नवराज सुबेदी कुछ अन्य लोगों के साथ नयी एकीकृत पार्टी में शामिल हो जायेंगे। जो भी होना होगा, वह मार्च तक हो जायेगा।

कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों की एकता की यह जारी प्रक्रिया नेपाली जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप है। नेपाली क्रान्ति के अग्रवर्ती विकास के लिए नेकपा

(माओवादी) के भीतर के दो लाइनों के संघर्ष में दक्षिणपन्थी भटकाव के फ़ौरी तौर पर पीछे हट जाने या कमज़ोर पड़ जाने की घटना और एकीकृत नेकपा (माओवादी) के गठन की घटना – इन दोनों का अत्यधिक महत्त्व है। इस समय नेपाल में दक्षिण और वाम के शिविरों में ध्रुवीकरण की प्रक्रिया काफ़ी तेज़ है। एक माह के भीतर नेकपा (एमाले) भी अपनी राष्ट्रीय कांग्रेस करने वाली है। यह पार्टी अब एकदम खुले तौर पर सामाजिक जनवादी रंग में रँग चुकी है। सी.पी. मैनाली के नेतृत्व वाली नेकपा (माले) व्यवहार में नेपाली कांग्रेस के निकट है। नेपाली कांग्रेस भूतपूर्व राजतन्त्रवादी पार्टियों तक को साथ लेकर तथाकथित जनवादी मोर्चा संगठित करने का नारा दे रही है। एकीकृत नेकपा (माओवादी) सभी राष्ट्रीय और गणराज्यवादी शक्तियों के साथ संयुक्त मोर्चे का नारा दे रही है। भविष्य में बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों की क़तारों से छिटककर कुछ लोग ऐसे मोर्चे में शामिल हो सकते हैं। नेपाली कांग्रेस, एमाले, मधेसी जनाधिकार फ़ोरम – इन सभी पार्टियों में आन्तरिक अन्तरविरोध गहरा रहे हैं।

ज़्यादा से ज़्यादा जनोन्मुख संविधान–निर्माण और रैडिकल भूमि–सुधार जैसे प्रश्नों पर इस ध्रुवीकरण का तीखा होना निश्चित है। ऐसी स्थिति में, ज़ाहिर है कि वर्ग–संघर्ष का मुख्य मंच संविधान सभा और सरकार नहीं, बल्कि सड़क ही बनेगा। सड़कों पर उठने वाला जनान्दोलन का नया ज्वार संसद के भीतर भी प्रतिक्रियावादी ताक़तों पर दबाव बनायेगा। नेपाल की जनवादी क्रान्ति किन चढ़ावों–उतारों से होकर आगे बढ़ेगी, इसका ठीक–ठीक पूर्वानुमान तो अभी से नहीं लगाया जा सकता। लेकिन इतना विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि यदि क्रान्ति के हरावल दस्ते की एकजुटता बनी रही और वह दक्षिणपन्थी और "वामपन्थी" अवसरवादी विचलनों पर दो लाइनों के संघर्ष के ज़रिये विजय हासिल करता रहा तो कठिनतम वस्तुगत परिस्थितियाँ भी क्रान्ति की अग्रगति को कुछ समय के लिए बाधित भले ही कर दें, लेकिन उसका गला नहीं घोंटा जा सकता। विचारधारात्मक रूप से दृढ़, एकीकृत और जनाकांक्षाओं की कसौटी पर खरी उतरने वाली पार्टी के नेतृत्व में क्रान्ति की विजय काफ़ी हद तक सुनिश्चित होती है, चाहे उसका रास्ता जितना भी लम्बा और कठिन क्यों न हो!

(बिगुल, फ़रवरी 2009)

नेपाली क्रान्ति किस ओर?
नयी परिस्थितियाँ और पुराने सवाल

नेपाल विगत एक माह से भी अधिक समय से अनिश्चय और उथल-पुथल के भँवर से गुज़र रहा है। प्रधानमन्त्री पद से एकीकृत नेकपा (माओवादी) के अध्यक्ष पुष्प कमल दहाल 'प्रचण्ड' के इस्तीफ़े (4 मई '09) के बाद से ही देशव्यापी बन्द, हड़तालों और प्रदर्शनों के चलते शासन और प्रशासन की मशीनरी लगभग ठप्प है।

संकट की शुरुआत तब हुई जब जनता द्वारा चुनी गयी नागरिक सरकार की निरन्तर और जानबूझकर अवमानना के आरोप में प्रधानमन्त्री प्रचण्ड ने सेनाध्यक्ष कटवाल को बरखास्त कर दिया। कटवाल ने प्रधानमन्त्री के इस निर्देश को मानने से इनकार कर दिया। राष्ट्रपति रामबरन यादव ने भी प्रचण्ड के निर्देश को ठुकराते हुए और अन्तरिम संविधान की अवहेलना करते हुए कटवाल से पद पर बने रहने को कहा। फिर इस प्रश्न पर सरकार के दो सहयोगी दलों – नेकपा (एमाले) मधेसी जनाधिकार मंच ने भी माओवादियों का साथ छोड़ दिया। नतीजतन सरकार अल्पमत में आ गयी और प्रचण्ड को इस्तीफ़ा देना पड़ा। गत 23 मई को 24 में से 21 पार्टियों के समर्थन से माधव कुमार नेपाल के नेतृत्व में नयी सरकार सत्तारूढ़ हुई जिसमें ने.क.पा (एमाले) और नेपाली कांग्रेस मुख्य भागीदार हैं। नयी सरकार को समर्थन के मसले पर मधेसी जनाधिकार मंच दोफाड़ हो चुका है। विजय कुमार गच्छेदार गुट सरकार में शामिल है और गच्छेदार उप्रधानमन्त्री हैं जबकि उपेन्द्र यादव के नेतृत्व वाला गुट विपक्ष में है।

एकीकृत नेकपा (माओवादी) का कहना है कि सेना पर नागरिक सरकार का नियन्त्रण हर हाल में निर्णायक तौर पर क़ायम होना चाहिए और राष्ट्रपति को सेनाध्यक्ष कटवाल की बहाली सम्बन्धी अपना असंवैधानिक निर्देश वापस लेना चाहिए। उसका यह भी स्पष्ट आरोप है कि एक बड़ा पड़ोसी देश (स्पष्ट इशारा भारत की ओर है) अपने निहित स्वार्थों और विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षाओं के

चलते नेपाल के अन्दरूनी मामलों में दख़लन्दाज़ी कर रहा है और कटवाल–प्रकरण के पीछे भी उसकी अहम भूमिका है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रचण्ड के नेतृत्व वाली सरकार भारत के साथ तमाम असमानतापूर्ण सन्धियों की समीक्षा और समानता के आधार पर नये सम्बन्ध की माँग करती रही है और भारत पर पारम्परिक निर्भरता को छोड़कर चीन के साथ भी सहकार–सम्बन्ध की इच्छा ज़ाहिर करती रही है। साथ ही, भारत सरकार को यह भय भी सताता रहा है कि नेपाल में माओवादियों की सरकार रहते भारत में भी माओवादियों के सशस्त्र संघर्ष को विशेष बढ़ावा मिलेगा।

लेकिन मुख्य बात यह है कि नेपाल के साथ विगत आधी सदी से भी अधिक समय से जारी असमानतापूर्ण सम्बन्धों को भारतीय शासक वर्ग हर क़ीमत पर बनाये रखना चाहता है। सभी छोटे पड़ोसी देशों के प्रति भारतीय शासक वर्ग का विस्तारवादी और "बड़े भाई" जैसा व्यवहार हमेशा से जगज़ाहिर रहा है और चीन के साथ उसकी प्रतिस्पर्द्धा भी कोई छुपी बात नहीं है। ऐसी स्थिति में नेपाल की नयी सरकार द्वारा समानतापूर्ण सम्बन्धों और सभी पड़ोसियों से (यानी चीन से भी) समान रूप से बेहतर सम्बन्धों की बात करना भारतीय शासक वर्ग भला कैसे पसन्द कर सकता था? काठमाण्डू स्थित भारतीय दूतावास लगातार वहाँ के अन्दरूनी मामलों में दख़ल देता रहा है। अपनी इसी स्थिति को बनाये रखने के लिए भारत सरकार ने लोकयुद्ध और जनान्दोलन के दौरान लगातार राजशाही की भरपूर मदद की। नेपाल के क्रान्तिकारी संघर्ष को कुचलने में उसने अमेरिकी साम्राज्यवाद के विश्वस्त सहयोगी की भूमिका निभायी। लेकिन राजशाही का पतन सुनिश्चित होने और संविधान सभा के चुनाव में नेकपा (माओवादी) के सबसे बड़े दल के रूप में उभरने के बाद भारतीय शासक वर्ग ने नेपाली कांग्रेस और नेकपा (एमाले) पर दाँव लगाया और हरचन्द कोशिशें की कि नेकपा (माओवादी) के नेतृत्व में सरकार का गठन न हो सके। उसकी इस भूमिका के चलते नेपाली जनता के भीतर यह धारणा और अधिक मज़बूत हुई है कि भारत एक विस्तारवादी देश है जो हर हाल में सम्प्रभु, स्वतन्त्र, जनवादी नेपाली गणराज्य का विरोध करता रहेगा।

जहाँ तक नेपाल के भीतर वर्ग–शक्ति–सन्तुलन का सवाल है, तमाम आपसी अन्तरविरोधों के बावजूद, वहाँ की क्रान्ति–विरोधी बुर्जुआ और सामन्ती ताक़तें निर्णायक मसलों पर माओवादियों के ख़िलाफ़ एकजुट हैं। सत्तालोलुपता के चलते बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों के बीच जो अन्तरविरोध उठते रहे हैं, उनका लाभ एक हद तक नेकपा (माओवादी) को भी मिलता रहा है। लेकिन जब भी कोई बुनियादी नीतिगत मामला सामने आता है तो माओवादी अपने को एकदम

अलग–थलग पाते हैं।

संविधान सभा के चुनावों में सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरने के बावजूद नेकपा (माओवादी) को सत्ता सँभालने की वैध हक़दार ताक़त के रूप में नेपाल के भीतर और बाहर की प्रतिक्रियावादी ताक़तों ने कभी भी स्वीकार नहीं किया। सरकार में शामिल होने के बाद भी नेकपा (एमाले) और मधेसी पार्टियों ने आंशिक बुनियादी बदलाव के हर सवाल पर नेकपा (माओवादी) का विरोध किया। शान्ति समझौते और अन्तरिम संविधान की तमाम शर्तों को ताक़ पर रख दिया गया। सेना के एकीकरण की तय शर्तों को ठुकराकर नयी–नयी शर्तें लगायी जाती रहीं। तनाव बढ़ता रहा और फिर इसी की तार्किक परिणति प्रचण्ड सरकार के इस्तीफ़े के रूप में सामने आयी।

नेपाल की घटनाओं ने एक बार फिर इस इतिहाससिद्ध धारणा को ही पुख़्ता किया है कि संसदीय चुनावों में बहुमत पाने के बावजूद मेहनतकश जनसमुदाय राज्य मशीनरी का अपने हितों के अनुरूप पुनर्गठन नहीं कर सकता। वह शासक वर्ग की राज्य मशीनरी का ध्वंस करके ही नयी राज्य मशीनरी की स्थापना कर सकता है। बेशक बुर्जुआ संसदीय चुनावों और संसद का (और यहाँ तक कि अन्तरिम या आरज़ी सरकारों का भी) रणकौशलात्मक (टैक्टिकल) इस्तेमाल किया जा सकता है, पर इनके द्वारा व्यवस्था परिवर्तन, या एक वर्ग से दूसरे वर्ग के हाथों सत्ता–हस्तान्तरण, नामुमकिन है। बुर्जुआ सत्ता का ध्वंस ही एकमात्र ऐतिहासिक विकल्प है।

नेकपा (माओवादी) की समस्या यह रही है कि वह अपनी तमाम "नयी स्थापनाओं" और गोलमोल, अस्पष्ट, द्विअर्थी वक्तव्यों से राज्य और क्रान्ति के प्रश्न पर स्वयं ही विभ्रम पैदा करती रही है और ढुलमुलपन का परिचय देती रही है। रणनीति (स्ट्रैटेजी) और बुनियादी विचारधारात्मक प्रश्नों को भी प्रायः वह रणकौशल के रूप में या कूटनीति के रूप में प्रस्तुत करती रही है। सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत पेरिस कम्यून और सोवियतों जैसी किसी ग्रासरूट स्तर की सर्वहारा जनवादी प्रणाली के बजाय वह बहुदलीय संसदीय प्रणाली की बात करती रही है और जनता में इस विभ्रममूलक धारणा को पुख़्ता बनाती रही है कि मौजूदा संविधान सभा के ज़रिये और इसके द्वारा निर्मित संविधान के अन्तर्गत होने वाले चुनाव में जीतकर वह नेपाल में लोक जनवादी गणराज्य और फिर समाजवादी गणराज्य की स्थापना कर सकती है। नेकपा (माओवादी) हालाँकि बीच–बीच में 'नरो वा कुंजरो' की भाषा में जनसंघर्ष की बात भी करती रहती है, पर उसकी कुल बातों का मुख्य ज़ोर संसदीय रास्ते पर ही पड़ता है। चुनाव जीतकर सत्तासीन होने और क्रान्तिकारी अर्थों में सत्ता कब्ज़ा करने के बीच के

फ़र्क़ को नेकपा (माओवादी) के नेतृत्व ने स्वयं ही अपनी कथनी और करनी से जनता की नज़रों में काफ़ी धूमिल कर दिया है। इस तरह उसने जनता और पार्टी क़तारों की वर्ग संघर्ष की तैयारी की प्रक्रिया को स्वयं ही कमज़ोर कर दिया है।

प्रचण्ड सरकार के इस्तीफ़े के बाद नेपाली क्रान्ति के नेतृत्व के सामने एक कठिन चुनौतीपूर्ण लेकिन साथ ही सुनहरा अवसर आया था कि वह बुर्जुआ संसदीय विभ्रमों को तार–तार करते हुए जनता के बीच यह सन्देश लेकर जाये कि केवल जनसंघर्ष ही एकमात्र रास्ता है। एक बार फिर सुदूरवर्ती ग्रामीण अंचलों में आधार इलाक़ों को मजबूत बनाने और शहरी क्षेत्रों में हड़तालों–प्रदर्शनों–जनान्दोलनों के सिलसिले को मजबूत बनाने का अवसर था। शान्ति समझौते और अन्तरिम संविधान के विपक्षी दलों द्वारा कई मामलों में उल्लंघन के बाद संघर्ष के रास्ते को न्यायोचित ठहराने का तर्क भी था। होना यह चाहिए था कि प्रचण्ड सरकार के इस्तीफ़े के बाद सभी माओवादी सांसदों को भी इस्तीफ़ा देकर सड़क के संघर्ष में उतर पड़ते। पर ऐसा नहीं हुआ। इसका मूल कारण यह है कि पार्टी भी अब शायद इसके लिए पूरी तरह तैयार नहीं है और जनता को भी उसने इसके लिए तैयार नहीं किया है। सेना एकीकरण की शर्त को मानने के बाद (इस पर 'बिगुल' में हम अपनी शंका रख चुके हैं) जन सेना का बड़ा हिस्सा कैण्टोनमेण्ट में निश्शस्त्र बैठा है। बाहर युवा कम्युनिस्ट लीग और स्वयंसेवक दस्तों की ताक़त है, पर वह सशस्त्र संघर्ष को आगे बढ़ाने की स्थिति में नहीं है। पुराने आधार इलाक़ों की समानान्तर लोकसत्ता मज़बूत होने के बजाय विगत दो वर्षों के दौरान कमज़ोर हुई है। पार्टी नेतृत्व अपना ध्यान समानान्तर लोकसत्ता को मज़बूत बनाने और बुर्जुआ संसदीय प्रणाली के 'एक्सपोज़र' के बजाय, सरकार चलाने पर और विभिन्न "लोक कल्याणकारी" कार्यों पर केन्द्रित किये रहा है। पार्टी नेतृत्व का एक हिस्सा यह कहता रहा है कि मौजूदा संविधान सभा एक लोक जनवादी संविधान का निर्माण नहीं कर सकती, इसलिए हमारी कोशिश एक ज़्यादा से ज़्यादा जनोन्मुख संविधान बनाने की ही हो सकती है। लेकिन सवाल यह है कि जब अधिकांश बुनियादी मसलों पर सभी बुर्जुआ और संशोधनवादी एकजुट हो जाते हैं, तो सबसे बड़ी पार्टी होने के बावजूद नेकपा (माओवादी) भला अंशतः जनोन्मुख संविधान स्वीकृत करवा पाने में भी सफल कैसे हो सकती है! यह तर्क दिया जा सकता है कि संविधान में बुर्जुआ जनवादी प्रावधानों का दायरा विस्तारित होने की स्थिति जनसंघर्ष के लिए अनुकूल होगी। लेकिन यह तर्क एक वैधिक विभ्रम है। नेपाल का शासक वर्ग आज जिस संकट से गुज़र रहा है, उसमें वह बुर्जुआ जनवाद के दायरे को वास्तव में विस्तारित नहीं होने देगा और यदि संविधान में ऐसे प्रावधान हों भी तो व्यवहार में इनका कोई

मतलब नहीं रह जायेगा। दूसरी बात यह कि नेपाल में वर्ग संघर्ष जिस मंज़िल पर पहुँच चुका है, उस मुक़ाम पर यह प्रश्न काफ़ी हद तक अप्रासंगिक है कि वहाँ बुर्जुआ जनवाद का दायरा कितना विस्तारित या संकुचित होगा। आज यदि नेपाल में बुर्जुआ जनवाद के दायरे को फैलाने के संघर्ष पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है तो यह भी एक सामाजिक जनवादी भटकाव होगा।

ताज़ा समाचारों के अनुसार, नेकपा (माओवादी) और संशोधनवादी नेकपा (एमाले) के बीच समझौता वार्ता सफल होने के क़रीब है। माओवादियों ने आश्वासन दिया है कि सेना पर नागरिक सरकार के नियन्त्रण की गारण्टी और कटवाल प्रकरण में राष्ट्रपति के असंवैधानिक निर्देश के निरस्त होने की स्थिति में वे जनान्दोलन स्थगित करने और संसद में विपक्ष के रूप में बैठकर माधव कुमार नेपाल की सरकार के साथ सहयोग करने तथा संविधान-निर्माण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए तैयार हैं। ज़्यादा उम्मीद यही है कि जल्दी ही कोई समझौता-फ़ार्मूला निकल आयेगा। यानी नेकपा (माओवादी) के नेतृत्व में चलने वाले जनान्दोलन का लक्ष्य क्रान्तिकारी संघर्ष को आगे बढ़ाना नहीं, बल्कि सापेक्षतः अधिक अनुकूल समझौते के लिए दबाव बनाना मात्र था! ऐसे में यह आशंका उठनी स्वाभाविक है कि क्या नेकपा (माओवादी) विचारधारात्मक विभ्रमों, ढुलमुलपन और संसदीय भटकाव के भँवर में उलझकर वर्ग संघर्ष के रास्ते पर आगे बढ़ने की उर्जस्विता और शक्ति खो चुकी है? क्या वह निर्णायक तौर पर संसदीय पक्ष-विपक्ष के खेल में शामिल हो चुकी है? इन प्रश्नों के उत्तर अभी भविष्य के गर्भ में हैं।

लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नेकपा (माओवादी) के नेतृत्व में फ़िलहाल दक्षिणपन्थी अवसरवाद का पर्याप्त प्रभाव है, जो पार्टी को लगातार विपथगमन की दिशा में धकेल रहा है। इसका विरोध करने वाली जो धारा है, उसमें भी विचारधारात्मक सुस्पष्टता और सुसंगति की कमी है, जिसके चलते इस धारा से जुड़े लोग भी निर्णायक स्टैण्ड लेने और प्रतिकूल लहर के विरुद्ध डटकर खड़ा होने का साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। नेपाल की मेहनतकश जनता आज भी एकीकृत नेकपा (माओवादी) को ही अपना नेता और हरावल मानती है। तमाम दक्षिणपन्थी भटकावों की निरन्तरता के बावजूद, इस पार्टी को अभी संशोधनवादी क़तई नहीं कहा जा सकता। बुनियादी मुद्दों पर स्पष्टता की कमी के बावजूद पार्टी में दो लाइनों का संघर्ष अभी भी कई स्तरों पर जारी है और क़तारों का क्रान्तिकारी जुझारूपन अभी भी क़ायम है।

इस स्थिति में विश्व सर्वहारा क्रान्ति और नेपाली क्रान्ति के हर समर्थक-शुभचिन्तक की, स्वाभाविक तौर पर यही कामना है कि एकीकृत नेकपा

(माओवादी) तमाम संसदीय विभ्रमों और दक्षिणपन्थी विचलनों से मुक्त होकर नेपाल की मेहनतकश जनता के सच्चे क्रान्तिकारी नेता और हरावल दस्ते की भूमिका निभाये। हम नेपाल की कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी क़तारों का आह्वान करते हैं कि वे संशोधनवादी भटकाव की हर क़िस्म को जड़मूल से नष्ट कर दें क्योंकि यही सर्वहारा क्रान्ति की प्रथम और सर्वोपरि गारण्टी है।

(बिगुल, जून 2009)

एकीकृत नेकपा (माओवादी) के संशोधनवादी विपथगमन के ख़तरे और नेपाली क्रान्ति का भविष्य : संकटों–समस्याओं–चुनौतियों के बारे में कुछ ज़रूरी बातें

नेपाल के बारे में 'बिगुल' में अन्तिम लेख हमने प्रचण्ड सरकार के इस्तीफ़े (4 मई '09) के एक माह बाद जून '2009 के अंक में लिखा था। उसके पहले फ़रवरी '2009 में प्रकाशित अपने लेख में नेकपा (माओवादी) के दक्षिणपन्थी विपथगमन के लक्षणों–संकेतों की हमने विस्तार से चर्चा की थी। जून के लेख में भी हमने पार्टी के भटकावों का उल्लेख किया था और साथ ही नेपाली क्रान्ति के सामने उपस्थित बेहद प्रतिकूल वस्तुगत स्थितियों की भी चर्चा की थी।

अब विगत सात महीनों के घटनाक्रम–विकास को देखने के बाद हमें लगता है कि नेपाली क्रान्ति के सामने उपस्थित वस्तुगत (ऑब्ज़ेक्टिव) बाधाएँ और मनोगत (सब्ज़ेक्टिव) समस्याएँ – दोनों ही और अधिक गहन–गम्भीर होकर सामने खड़ी हैं। हमारी यह स्पष्ट मान्यता है कि क्रान्तियाँ प्रतिक्रियावादी शक्तियों के दमन, षड्यन्त्र या अन्य बाह्य पारिस्थितिक कारणों से विलम्बित हो सकती हैं, पीछे हट सकती हैं (या वक़्ती तौर पर हार भी सकती हैं); लेकिन ज़्यादातर मामलों पर विघटन, पराजय और विपर्यय का मूल कारण नेतृत्वकारी हरावल शक्ति की विचारधारात्मक कमज़ोरी (संशोधनवादी या उग्र "वामपन्थी" भटकाव) होता है, पार्टी की विचारधारात्मक एकजुटता का अभाव होता है। प्रतिक्रिया की ताक़तों के हमले या कुचक्र भी प्राय: तभी अपने मक़सद में कामयाब होते हैं, जब सर्वहारा क्रान्ति की नेतृत्वकारी पार्टी विचारधारात्मक रूप से एकजुट और परिपक्व नहीं होती। नेपाल की एकीकृत कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) की विचारधारात्मक स्थिति और समस्याओं की चर्चा हम अरसे से करते आये हैं। दुर्भाग्यवश, समय ने हमारी चिन्ताओं–आशंकाओं को सही ठहराया

है और आगे की स्थिति के बारे में भी हम फिलहाल बहुत अधिक आशावादी नहीं हैं। ज़ाहिर है, हम इतिहास के बारे में निराशावादी दृष्टि कत्तई नहीं रखते, न ही "तबाही" की भविष्यवाणी हमारा शौक़ है। हम वैज्ञानिक यथार्थवादी आकलन पर आधारित आशावाद के क़ायल हैं। मिथ्या आशावाद, यथार्थ से परे काल्पनिक आशावाद, अगले ही दौर में जनसमुदाय में मायूसी और नाउम्मीदी की भावना को और अधिक गहरा बनाने का ही काम करता है। इसी दृष्टि से, नेपाली क्रान्ति की नेतृत्वकारी पार्टी की विचारधारात्मक कमज़ोरियों की चर्चा हम उस दौर से ही करते रहे हैं, जब क्रान्तिकारी वामपन्थी धारा के बहुतेरे पर्यवेक्षकों को वहाँ विजय आसन्न लग रही थी। नेपाल में जारी क्रान्तिकारी संघर्ष और उसकी नेतृत्वकारी ताक़तों का समर्थन और क्रान्तिकारी अभिनन्दन करते हुए भी उसके भविष्य को देखना और तदनुरूप अपनी राय रखना हम ज़रूरी अन्तरराष्ट्रीयतावादी दायित्व समझते रहे हैं।

हमारा आज भी मानना है कि नेपाल में जारी वर्ग-संघर्ष में जन-समुदाय की निर्णायक जीत का समय एकीकृत नेकपा (माओवादी) के भीतर दक्षिणपन्थी, मध्यमार्गी और सारसंग्रहवादी (एक्लेक्टिक) प्रवृत्तियों की मौज़ूदगी और विचारधारात्मक एकता के अभाव के चलते कुछ आगे भले ही धकेल दिया जाये, संघर्ष कुछ समय के लिए गतिरोध का शिकार भले ही हो जाये, लेकिन अब न तो पुरानी स्थिति में वापस लौटना मुमकिन है, न ही क्रान्तिकारी वाम धारा को निष्प्रभावी बनाया जा सकता है। अतीत से सबक लेकर, वहाँ का क्रान्तिकारी वाम पुनः अपनी एकजुटता और संघर्ष की प्रक्रिया को आगे बढ़ायेगा। निश्चय ही, वह इस बात को भी समझेगा कि नेपाल में क्रान्ति की प्रगति का मार्ग लम्बा होगा और जटिल भी। विशेषकर, जब पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में क्रान्तिकारी उभार जैसी स्थिति उत्पन्न होगी, तो वह समय नेपाली क्रान्ति के तीव्र अग्रवर्ती विकास और निर्णायक विजय के लिए भी अनुकूल होगा। फिलहाल, नेपाल में जारी कश्मकश का अन्त यदि किसी क़िस्म के बुर्जुआ जनवाद की स्थापना के रूप में भी होता है, तो संसदीय राजनीति के खिलाड़ी अपना खेल चैन से कत्तई नहीं खेल पायेंगे। व्यवस्था के बढ़ते संकट के साथ ही (और विश्व पूँजीवादी व्यवस्था की वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह अवश्यम्भावी है) वर्ग संघर्ष की लपटें फिर से विकराल ज्वाला बनने लगेंगी। बिखरी हुई क्रान्तिकारी वाम शक्तियों में एकजुटता की प्रक्रिया फिर गति पकड़ेगी और तब अतीत की नकारात्मक-सकारात्मक शिक्षाएँ उनके सामने होंगी।

•

गत वर्ष मई के पहले सप्ताह में प्रधानमन्त्री प्रचण्ड के इस्तीफ़े के बाद से नेपाल की राजनीति में अस्थिरता और तरलता की जो स्थिति पैदा हुई है, फिलहाल उसके जल्द ख़त्म होने के आसार नज़र नहीं आते। वर्ष के उत्तरार्द्ध में, प्रशासन चलाने के बुनियादी कामों के अतिरिक्त और जनान्दोलनों को नियंत्रित करने में पूरी ताक़त लगाने के अतिरिक्त माधव कुमार नेपाल के नेतृत्व वाली नेकपा (एमाले), नेपाली कांग्रेस कुछ मधेस पार्टियों और कुछ अन्य छोटे दलों की मिली–जुली सरकार ने लगभग कोई काम नहीं किया। एक तो एकीकृत नेकपा (मा) और उसके नेतृत्व वाले संयुक्त मोर्चे और जनसंगठनों की अगुवाई में पूरे नेपाल में जनान्दोलन लगातार चलते रहे। दूसरे, अन्तरिम संसद/संविधान सभा के सबसे बड़े दल को अलग रखकर सरकार का काम करना वैसे भी मुश्किल था, ख़ास तौर पर तब जबकि सरकार में शामिल और समर्थन देने वाले दलों के बीच भी सत्ता की बन्दरबाँट और भावी राज्य–व्यवस्था और संविधान के स्वरूप को लेकर अन्तरविरोध और खींचतान लगातार जारी हों।

याद रहे कि प्रचण्ड की सरकार को इसलिए इस्तीफ़ा देना पड़ा था क्योंकि उन्होंने सरकारी आदेशों की अवहेलना करने वाले सेनाध्यक्ष कटवाल को बर्ख़ास्त कर दिया था जिन्हें राष्ट्रपति रामबरन यादव ने फिर बहाल कर दिया। एकीकृत नेकपा (मा) राष्ट्रपति को अपना असंवैधानिक फैसला बदलने, खेद प्रकट करने तथा संसद में उनके निर्णय पर बहस की माँग करती रही है, जिसके लिए प्रधानमन्त्री माधव कुमार नेपाल कत्तई तैयार नहीं है। वे हो भी नहीं सकते, क्योंकि कटवाल के मसले पर प्रचण्ड सरकार निहायत साज़िशाना तरीक़े से गिरायी गयी। कटवाल की बर्ख़ास्तगी के प्रश्न पर पहले एमाले, मधेशी फ़ोरम, सद्‌भावना पार्टी आदि ने सहमति दे दी। लेकिन प्रधानमन्त्री प्रचण्ड ने जब घोषणा कर दी तो ये सभी दल एकदम पैंतरापलट करके उसका विरोध करने लगे और कटवाल को फिर से बहाल करने के राष्ट्रपति के निर्णय के साथ खड़े हो गये।

अब यह बात दिन के उजाले की तरह साफ़ हो चुकी है कि इसके लिए नेपाली कांग्रेस, नेकपा (ए.मा.ले) तथा अन्य बुर्जुआ एवं संशोधनवादी पार्टियों का अपना ख़ुद का हित–प्रेरित खेल तो ज़िम्मेदार था ही, पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों, और उनसे भी अधिक, यह भारत के दबाव का भी परिणाम था। एकदम ग़ैरज़रूरी तौर पर, नेपाल के इस ज्वलन्त मसले पर बयान देकर भारतीय राजदूत और भारतीय सेनाध्यक्ष ने अन्दर की सच्चाई को एकदम उजागर कर दिया है। भारतीय राजदूत ने तो नेपाल के अन्दरूनी मामलों में कई बार माओवादियों के प्रतिकूल बयान दिये ही, भारतीय सेनाध्यक्ष ने भी सेनाओं के एकीकरण के निर्णय

का विरोध करके और कटवाल की फिर से बहाली के राष्ट्रपति के निर्णय को उचित ठहराकर आग में घी डालने का काम किया। और भारतीय बुर्जुआ मीडिया के तो कहने ही क्या! ज़्यादातर बुर्जुआ अख़बार लगातार माओवादियों के ख़िलाफ़ तथ्यों से परे आधारहीन ख़बरें गढ़ने, तथ्यों को छुपाने और भ्रामक प्रचार करने का काम करते रहे हैं।

एकीकृत नेकपा (माओवादी) ने दो मुद्दों को लेकर जनमत तैयार करने और जुझारू जनान्दोलन खड़ा करने का काम शुरू किया, जो बिल्कुल सही था। कटवाल-प्रसंग को व्यापक परिप्रेक्ष्य देते हुए उन्होंने नागरिक सर्वोच्चता बनाम सैनिक सर्वोच्चता का सवाल खड़ा किया और नेपाली कांग्रेस, नेकपा (एमाले) और अन्य बुर्जुआ एवं संशोधनवादी पार्टियों के असली चरित्र एवं घटिया अवसरवाद को उजागर करने की कोशिश की। दूसरा उन्होंने 'पड़ोसी देश' (भारत) और बाहरी शक्तियों के हस्तक्षेप के मसले को देश की सम्प्रभुता का सवाल बनाकर उठाया और एक बार फिर 1816 की सुगौली सन्धि से लेकर 1950 के समझौते तक भारत-नेपाल के बीच हुए सभी असमानतापूर्ण समझौतों की पुनर्समीक्षा करके, पूर्ण समानता के आधार पर नये समझौते की माँग की। ये दोनों ही मुद्दे जनता को अपील करने वाले थे। नेपाली कांग्रेस और एमाले की मौक़ापरस्ती जनता के सामने एकदम उजागर थी। मधेस पार्टियों के पालापलट के चलते तराई के इलाक़े में उनकी साख भी जनता के बीच काफ़ी गिरी। जहाँ तक भारत की बात है, नेपालव्यापी भारत-विरोधी लहर को देखते हुए यहाँ की सरकार को बैकफुट पर आना पड़ा और सेनाध्यक्ष तथा राजदूत के बयानों पर सफ़ाई देकर लीपापोती करनी पड़ी। 16 जनवरी 2010 को भारत के विदेश मन्त्री एस.एम. कृष्णा ने अपनी नेपाल-यात्रा के दौरान प्रचण्ड से भी मुलाक़ात की और कहा कि भारत 1950 के समझौते सहित सभी असमानतापूर्ण समझौतों पर पुनर्विचार के लिए तैयार है।

जनसमुदाय को अपील करने वाले मुद्दों और व्यापक जन समर्थन के बावजूद, यदि माओवादी अपनी बुनियादी माँग (नागरिक सर्वोच्चता का प्रश्न, राष्ट्रपति के प्रश्न पर संसद में बहस) मनवाने में सफल नहीं हो सके, तो इसका बुनियादी कारण उनके ढुलमुल रवैये, नेताओं के अन्तरविरोधी बयानों, जनान्दोलन के कार्यक्रम में लगातार बदलाव और आगे-पीछे दोलन करते रहने में निहित है। जनता के बीच लम्बे समय तक यह स्पष्ट ही नहीं हो पाया कि एकीकृत नेकपा (मा) जनसंघर्ष को आख़िर किस दिशा में और कहाँ ले जाना चाहती है।

जैसा कि सरकार में रहते समय हो रहा था, उसी प्रकार मई से जारी आन्दोलन के बाद भी अलग-अलग नेता अलग-अलग बयान देते रहे। कभी कोई

नेता इस आशय का बयान देता कि अब पार्टी को आम बग़ावत के द्वारा राज्यसत्ता–ध्वंस की तैयारी करनी होगी, तो दूसरा नेता यह बयान दे देता कि जल्दी ही माओवादियों के नेतृत्व में नयी सरकार बन जायेगी, तीसरा कोई नेता संविधान–निर्माण में अड़चन न डालने का आश्वासन देते हुए निर्धारित समय सीमा (28 मई 2010) में संविधान तैयार हो जाने की उम्मीद ज़ाहिर करने लगता। 1 नवम्बर 2009 से जब 'जनान्दोलन–तीन' की शुरुआत हुई, उसके बाद भी शीर्ष नेताओं की अन्तरविरोधी अवस्थितियों को दर्शाने वाले वक्तव्यों, साक्षात्कारों आदि का सिलसिला जारी रहा। कुछ ने इसे क्रान्तिकारी जनविद्रोह के द्वारा राज्यसत्ता कब्ज़ा करने की निर्णायक लड़ाई की शुरुआत मानी, कुछ ने इसे केवल नागरिक सर्वोच्चता बहाल करने के मुद्दे पर केन्द्रित बताया, कुछ ने एक लोक संविधान निर्माण के आसन्न प्रश्न पर बल दिया तो कुछ ने इसका लक्ष्य माओवादी नेतृत्व में नयी सरकार का गठन बताया। बाबूराम भट्टराई ने पहले एक साक्षात्कार में बताया कि अनुभव ने सिखाया है कि बुर्जुआ राज्यसत्ता का ध्वंस ही करना होगा (मानो यह बताने के लिए अब तक के विश्व ऐतिहासिक अनुभव और मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धान्त काफ़ी नहीं थे!) फिर कुछ ही दिनों बाद एक वक्तव्य में आश्वासन दिया कि माओवादी आगे फिर कभी हथियार नहीं उठायेंगे। 'जनान्दोलन–तीन' की शुरुआत के बाद पार्टी ने स्थानीय सरकारों के गठन की घोषणा की। फिर तेरह स्वायत्तशासी राज्यों की घोषणा की। लोगों को लगा कि माओवादी समान्तर सत्ता की तैयारी की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। लेकिन फिर पार्टी ने घोषणा कर दी कि यह प्रतिरोध का एक प्रतीकात्मक क़दम है और यह कि माओवादी शान्ति–प्रक्रिया के सुचारु अमल और संविधान–निर्माण के प्रति प्रतिबद्ध हैं। 16 दिसम्बर को सरकार, संयुक्त राष्ट्रसंघ और माओवादियों के बीच जनमुक्ति सेना के अवयस्क सैनिकों को डिस्चार्ज करने की कार्ययोजना पर सहमति बनी और जनवरी में इस पर कार्रवाई भी शुरू हो गयी, जबकि माओवादी सहज ही इस बात को शर्त बना सकते थे कि नागरिक सर्वोच्चता का मसला हल होने तक कोई वार्ता नहीं होगी और शान्ति–प्रक्रिया रुकी रहेगी। इस दौरान एमाले, नेपाली कांग्रेस और मधेसी जनाधिकार फोरम के नेताओं से पर्दे के पीछे की बातचीत का सिलसिला लगातार जारी रहा। प्रचण्ड इस दौरान कभी जल्दी ही माओवादी नेतृत्व वाली सरकार बनने की तो कभी राष्ट्रीय सरकार के गठन की घोषणा करते रहे।

25 दिसम्बर को बिना किसी स्पष्ट महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के, पार्टी ने सहसा यह घोषणा कर दी कि नागरिक सर्वोच्चता क़ायम करने और सभी असमान सन्धियों को समाप्त करने के लिए (ग़ौरतलब है कि ये लक्ष्य भी बुर्जुआ

संवैधानिक दायरे के सीमित और तात्कालिक लक्ष्य हैं और ये भी अभी पूरे नहीं हुए हैं, और यह भी प्रश्न उठता है कि यदि इतना ही उद्देश्य था तो 'जनान्दोलन–तीन' की शुरुआत के समय लम्बी–चौड़ी घोषणाएँ और दावे क्यों किये गये थे?) जारी 'जनान्दोलन–तीन' अपने लक्ष्य में सफल रहा है। अब जनता और पार्टी–क़तारों के बीच यह स्पष्ट संकेत जा चुका था कि जनान्दोलनों का एकमात्र लक्ष्य माओवादी नेतृत्व में सरकार बनाने के लिए दबाव बनाना मात्र है और अब एकीकृत नेकपा (मा) संसदीय चौहद्दी के भीतर ही सारा खेल खेलने के लिए प्रतिबद्ध हो चुकी है। नये साल की घटनाओं ने इस धारणा को और अधिक पुष्ट करने का काम किया। 5 जनवरी 2010 को तीन बड़ी पार्टियों (माओवादी, एमाले और ने.का.) ने संविधान–निर्माण, शान्ति प्रक्रिया और सेनाओं के विलय सहित छह मुद्दों पर आम सहमति की घोषणा की। 7 जनवरी को सरकार और माओवादियों के बीच यह सहमति बनी कि सेनाओं के विलय का काम 112 दिनों में पूरा कर लिया जायेगा। दूसरी ओर, ठीक इसी दिन प्रधानमन्त्री माधव कुमार नेपाल ने बयान दिया कि नये संविधान की घोषणा से पहले माओवादियों को हथियार त्याग देने होंगे। 8 जनवरी को शान्ति प्रक्रिया को आगे बढ़ाने और विवादास्पद मुद्दों को हल करने के लिए प्रचण्ड, गिरिजा प्रसाद कोइराला और एमाले अध्यक्ष झालानाथ खनाल को लेकर एक 'हाई लेवल पोलिटिकल मेकेनिज़्म' (एच.एल.पी.एम.) के गठन की घोषणा की गयी। एक ओर महीनों लम्बी राजनीतिक अनिश्चितता समाप्त होने के दावे किये जा रहे थे, दूसरी ओर न केवल मधेस पार्टियाँ और अन्य दल इसका विरोध कर रहे थे, बल्कि वरिष्ठ एमाले नेता के.पी. शर्मा ओली ने अन्तरिम संविधान में प्रावधान नहीं होने का तर्क देते हुए एच.एल.पी.एम. के गठन को ही असंवैधानिक घोषित कर दिया। फिर पेंच फँसा प्रधानमन्त्री नेपाल के इस निकाय में शामिल होने को लेकर। प्रचण्ड ने पहले इसका विरोध किया फिर 'विशेष आमंत्रित सदस्य' के रूप में उनकी भागीदारी के लिए हामी भी भर दी।

अब आगे घटनाक्रम–विकास इसी दिशा में जारी है। 'जनान्दोलन–तीन' का संवेग क्षीण हो चुका है। क़तारों के बीच और जनता में यह प्रभाव अब स्थापित हो चुका है कि माओवादी नेतृत्व दबाव बनाने और विरोधी दलों की कमज़ोरी एवं अन्तरविरोधों का लाभ उठाकर संविधान सभा में अनुकूल स्थिति बनाने से आगे की बात ही नहीं सोचता। और वास्तविकता भी यही है। एकीकृत नेकपा (मा) के दक्षिणपन्थी अवसरवाद या संशोधनवाद की दिशा में विपथगमन की प्रक्रिया तेज़ हो चुकी है। पार्टी में यदि क्रान्तिकारी जनदिशा की सोच मौजूद भी है तो वह काफ़ी कमज़ोर है और मौजूदा ढाँचे के भीतर उसका निर्णायक वर्चस्व क़ायम हो

पाना मुश्किल है। जो सारसंग्रहवादी (एक्लेक्टिक) और व्यवहारवादी (प्रैग्मेटिक) धड़े हैं, जो कभी गरम तो कभी नरम रुख अपनाते रहते हैं, वे भी सारतः दक्षिणपन्थी अवसरवादी ही हैं। मध्यमार्गियों (सेण्ट्रिस्ट) के धड़े के बारे में भी यही बात लागू होती है। पार्टी के भीतर अधिकांश अन्तरविरोध तो अलग-अलग संशोधनवादी प्रवृत्तियों-रुझानों के बीच ही होता दीख रहा है। बेहतर होगा कि हम यहाँ कुछ प्रतिनिधि अवस्थितियों पर थोड़ी चर्चा कर लें।

मोहन बैद्य (किरण), राम बहादुर थापा (बादल), सी.पी. गजुरेल, नेत्र बिक्रम चन्द आदि का धड़ा पार्टी में दक्षिणपन्थी विचलन का विरोध करता रहा है और संविधान सभा/संसद एवं सरकार के बाहर जनसंघर्षों पर, क्रान्तिकारी जन-विद्रोह की तैयारी पर अधिक बल देता रहा है। लेकिन विचारधारात्मक अपरिपक्वता के कारण उनमें एक वैकल्पिक-व्यावहारिक, सुसंगत कार्ययोजना का लगातार अभाव दीखता रहा है। वर्तमान जटिल राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों में नेपाल में वर्ग-संघर्ष को आगे बढ़ाने का कोई सुसंगत कार्यक्रम वे नहीं दे सके हैं। इसका कारण यह है कि उनका रैडिकलिज़्म वस्तुतः अनुभवसंगत है, उसका विचारधारात्मक आधार काफ़ी कमज़ोर है। स्मरणीय है कि किरण स्वयं "प्रचण्ड पथ" के सूत्रीकरण के अग्रणी समर्थक रहे हैं। रूसी और चीनी क्रान्ति के अनुभवों को अपने अनुभवों से बदलते हुए नेकपा (मा) ने जब सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत बहुदलीय प्रतिस्पर्द्धात्मक संसदीय जनतान्त्रिक व्यवस्था क़ायम करने का "महान सैद्धान्तिक अवदान" दिया (जो वस्तुतः घोर संशोधनवादी स्थापना है) तो किरण आदि भी इस स्थापना से सहमत थे। बुर्जुआ राज्य के ध्वंस की जगह "पुनर्गठन" जैसे ग़ैरमार्क्सवादी जुमले का इस्तेमाल किरण आदि भी करते रहे हैं। संविधान सभा और अन्तरिम सरकार में भागीदारी का सवाल विशुद्ध रणकौशलात्मक प्रश्न है और इसे रणनीति कत्तई नहीं बनाई जानी चाहिए – इस प्रश्न पर इस धड़े की भी समझ स्पष्ट नहीं रही है। इसीलिए, अतीत में सभी अहम प्रश्नों पर दो लाइनों के संघर्ष में यह धड़ा अन्ततः राजनीति के बजाय संगठन को कमान में रखकर पार्टी एकता को बनाये रखने के लिए समझौता-फार्मूले की तलाश करता रहा है। जैसे लोक जनवादी गणराज्य बनाम संघात्मक जनवादी गणराज्य के प्रश्न पर चली बहस में समझौता फार्मूला निकला – लोक जनवादी संघात्मक गणराज्य। इस नये फार्मूले की व्याख्या किरण आदि लोग गणराज्य के रूप में करते रहे, जबकि दूसरा धड़ा बुर्जुआ जनवादी गणराज्य के चरण से गुज़रकर लोक गणराज्य क़ायम करने की बातें करता रहा। हम सभी जानते हैं कि मार्क्सवादी अवस्थिति और संशोधनवादी अवस्थिति में जब मेल-मिलाप कराया जाता है तो नतीजा संशोधनवाद के रूप में ही सामने आता है। और बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं

है, पार्टी के कई ग़लत फैसलों और क़दमों की संशोधनवादी सारवस्तु को किरण आदि समझने में और उन्हें मुद्दा बनाकर संघर्ष चलाने में विफल रहे। केवल कुछ उदाहरण काफ़ी होंगे। सरकार में शामिल होने के बाद जब आधार इलाक़ों की कमेटियाँ भंग की गयीं (जिन्हें वैकल्पिक लोकसत्ता की ग्रासरूट यूनिटों के रूप में क़ायम रखा जाना चाहिए था और जिनका विकास किया जाना चाहिए था) तो इस फैसले पर कोई विरोध नहीं हुआ। यदि संविधान सभा और प्रॉविज़नल सरकार में भागीदारी एक 'टैक्टिकल मूव' था तो किसी भी सूरत में पूरी पार्टी को खुला नहीं किया जाना चाहिए था। पर न केवल पूरी पार्टी खुली कर दी गयी बल्कि पेशेवर क्रान्तिकारी साथियों को घर भेजने जैसे निर्णय भी लिये गये। इस मुद्दे पर भी दो लाइनों का संघर्ष चला हो, ऐसी कोई जानकारी नहीं है। पार्टी नेतृत्व ने, जब तक प्रचण्ड की सरकार थी, तब तक पुराने आधार इलाक़ों में समान्तर लोकसत्ता को मज़बूत बनाने (वस्तुतः उन्हें कमज़ोर एवं निर्जीव बना दिया गया) और नये इलाक़ों (जिनमें शहरी इलाक़े प्रमुख हैं) में वैकल्पिक लोकसत्ता के नये रूप विकसित करने के बजाय, तथा बुर्जुआ संसदीय प्रणाली का 'एक्सपोज़र' करने के बजाय, अपना सारा ध्यान सरकार चलाने पर और "लोककल्याणकारी" कार्यों पर केन्द्रित किया। बार-बार हथियार न उठाने और नया संविधान बनाकर लोक जनवादी गणराज्य स्थापित करने जैसी बातें कहकर जनता की वर्ग चेतना को कुन्द किया जाता रहा। इन प्रत्यक्ष संशोधनवादी भटकावों को पार्टी के रैडिकल धड़े ने कभी भी मुद्दा नहीं बनाया। सेना एकीकरण (जिस पर पूर्व के लेखों में हम अपनी आपत्ति रख चुके हैं) का मुद्दा पार्टी में आम सहमति से लिया गया था और आज भी इस पर कोई बुनियादी मतभेद नहीं है। वर्ष 2009 के प्रारम्भ में (देखें 'रेड स्टार', वॉल्यूम-2, नं.-4, फ़रवरी 2009) प्रचण्ड ने जन मुक्ति सेना को स्पष्ट सन्देश दिया था कि वह अब पार्टी के मातहत नहीं, बल्कि 'आर्मी इण्टिग्रेशन स्पेशल कमेटी' के मातहत है। सेना के एकीकरण तक यह कहना, पार्टी को उसके सशस्त्र बल से काट देना है। इस शर्त को मानना एक ख़तरनाक समझौता था। पूरे संक्रमण काल के दौरान पी.एल.ए. पर पार्टी का नेतृत्व ही होना चाहिए था। यह मसला भी पार्टी की आम सहमति का मसला था। ऐसे दर्जनों और उदाहरण हैं जो बताते हैं कि पार्टी में प्रचण्ड और भट्टराई के दक्षिणपन्थी रुझानों का विरोध करने वाला रैडिकल धड़ा सभी मसलों पर सुसंगति और निरन्तरता के साथ संशोधनवादी भटकाव का विरोध नहीं करता रहा है। वैचारिक अपरिपक्वता के चलते वह कभी भी वैकल्पिक दिशा एवं कार्य योजना प्रस्तुत नहीं कर सका है (केवल रैडिकल नारे देता रहा है) और राजनीति के बजाय संगठन को कमान में रखकर संशोधनवादी लाइन के साथ मेल-मिलाप और सुलह-सफ़ाई का रवैया अपनाता रहा है।

बाबूराम भट्टराई की शुरू से ही एक सुसंगत दक्षिणपन्थी अवस्थिति रही है। माओवादी अब फिर कभी हथियार नहीं उठायेंगे, यह घोषणा वह सबसे अधिक करते रहे हैं। उन्होंने कई बार इस बात पर बल दिया कि नेपाल में अभी बुर्जुआ जनवाद ही क़ायम हो सकता है, पूँजीवाद या उत्पादक शक्तियों के कुछ विकास के बाद ही लोक जनवाद क़ायम होने की परिस्थिति बन सकती है। यह सारतः देङ सियाओ पिङ प्रवर्तित 'उत्पादक शक्तियों के विकास' के सिद्धान्त का ही नया रूप है जो कहता था कि चीन में पूरा पूँजीवादी विकास कर लेने के बाद ही समाजवाद में संक्रमण सम्भव हो सकता है। वित्त मन्त्री रहते हुए भट्टराई "लोक कल्याणकारी" कार्यों और भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन पर सर्वाधिक बल देते रहे और यह अपेक्षा करते रहे कि इससे माओवादियों का आधार मज़बूत होगा। लेकिन प्रकारान्तर से यह बुर्जुआ जनवाद विषयक विभ्रमों को मज़बूत करना था।

प्रचण्ड एक दक्ष और 'प्रैग्मेटिक' कूटनीतिज्ञ के भाँति दाँये-बाँये दोलन करते हुए, अपनी दक्षिणपन्थी अवसरवादी अवस्थितियों पर पर्दा डालते रहे हैं। ऐसा करके वे रैडिकल वामपन्थी क़तारों को दिग्भ्रमित करके अपने साथ लेने की कोशिश करते रहे हैं। क़तारों की राजनीतिक शिक्षा की कमी (राजनीतिविहीन, सैन्यवादी जुझारूपन) के चलते और सांगठनिक जोड़तोड़ के चलते वे इसमें सफल भी होते रहे हैं, लेकिन इस प्रक्रिया में उनका अवसरवाद ज़्यादा से ज़्यादा उजागर होता रहा है। उनका राजनीतिक व्यवहार सर्वथा अप्रत्याशित और अननुमेय होता है। बयान देना और फिर सफ़ाई देना उनकी आम प्रवृत्ति है। चीन-यात्रा से लौटने के बाद उन्होंने 'स्टेट टु स्टेट रिलेशनशिप' के साथ ही 'पार्टी टु पार्टी रिलेशनशिप' की भी बात कही थी। इसमें अन्तर्निहित है कि वे अब चीन की पार्टी को संशोधनवादी नहीं मानते। हम पहले के लेखों में यह चर्चा कर चुके हैं कि माओवादी मुखपत्रों में अब विचारधारात्मक प्रश्नों पर कम से कम लेखन होता है, देङपंथियों की और "बाज़ार समाजवाद" की आलोचना नहीं होती और पार्टी की संशोधनवादी अन्तर्वस्तु की चर्चा किये बग़ैर किम इल सुङ की जुछे विचारधारा और क्यूबा की कम्युनिस्ट पार्टी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए लेख छपते हैं। पार्टी के भीतर के कुछ विश्वस्त सूत्रों के अनुसार, अपनी चीन यात्रा से लौटकर प्रचण्ड वहाँ की भौतिक प्रगति से अत्यधिक प्रभावित थे। वहाँ पूँजीवाद जनित भीषण सामाजिक विषमता, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी आदि पर उनका ध्यान ही नहीं था। यह बताता है कि 'महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति' और देङ सियाओ पिङ के बाज़ार समाजवाद की विचारधारात्मक अन्तर्वस्तु को उन्होंने किस हद तक समझा है! अभी पिछले दिनों प्रचण्ड ने यह भी बयान दे डाला कि न वे नास्तिक हैं, न ही उनकी पार्टी नास्तिक है! यह सर्वहारा वर्ग की पार्टी की

विचारधारात्मक अवस्थिति के बारे में लेनिनवादी समझ के उलट घोर सामाजिक जनवादी अवस्थिति है। प्रचण्ड एक दिन बयान देते हैं कि माधव नेपाल की सरकार भारतीय कठपुतली है, और अगले दिन वे सबकी भागीदारी वाली "राष्ट्रीय सरकार" की बात करने लगते हैं। आज वे नेपाली कांग्रेस को सामन्तों व दलाल पूँजीपतियों की पार्टी बताते हैं, फिर अचानक सिंगापुर में या काठमाण्डू में कोइराला से बातचीत के बाद उनका टोन बदल जाता है। यह विशुद्ध बुर्जुआ कूटनीति है। इसके चलते जनता में काफ़ी विभ्रम पैदा होता रहा है। 'रेड स्टार' में छपने वाले रोशन किस्सून जैसे उत्तर आधुनिक मार्क्सवादी के लेख और लक्ष्मण पन्त के लेख के उदाहरण के ज़रिए पार्टी के संशोधनवादी भटकाव के अनेकों उदाहरण पहले के लेखों में दिये जा चुके हैं। इन दक्षिणपन्थी विचलनों की मुख्य ज़िम्मेदारी पार्टी चेयरमैन प्रचण्ड की ही है।

जहाँ तक नेकपा (मा) में शामिल हुए प्रकाश (नारायण काजी श्रेष्ठ) के नेतृत्व वाले नेकपा (एकता केन्द्र) की बात है, यह धड़ा दुविधा और अनिर्णय की स्थिति में है। अतीत में उसने दक्षिण और वाम के विचलनों के ख़िलाफ़ शानदार संघर्ष किये थे, लेकिन अब वह विरोधी धड़ों के बीच सन्तुलन स्थापित करते हुए पार्टी एकता को बनाये रखने की कोशिश में स्वयं अपनी विचारधारात्मक स्थिति को कमज़ोर करता नज़र आ रहा है। पहले एकता केन्द्र का आकलन था कि एकता क़ायम होने के बाद माओवादी पार्टी के भीतर के दक्षिणपन्थी विचलनों से संघर्ष सुगम होगा। लेकिन अब पीछे मुड़कर देखने पर लगता है कि मुख्य विचारधारात्मक प्रश्नों को हल किये बग़ैर सांगठनिक एकता का निर्णय संगठन को कमान में रखकर निर्णय लेने के ग़लत अप्रोच की देन था। नतीजतन, क़तारों के स्तर तक दोनों संगठनों में व्यावहारिक-सांस्कृतिक एकता आज तक नहीं बन पाई है और पूर्व नेकपा (एकता केन्द्र) की क़तारों में पस्तहिम्मती और किंकर्तव्यविमूढ़ता का आलम है। एकीकृत नेकपा (मा) के भीतर सुख-सुविधा की बुर्जुआ जीवन शैली, (सत्तासीन पार्टी में होने के नाते) भ्रष्टाचार और एमाले की प्रसिद्ध 'पजेरो संस्कृति' के जो नये रूप पैदा हुए, उनसे पार्टी के भीतर सांस्कृतिक क्रान्ति पर बल देने वाले एकता केन्द्र के लोग भी अछूते नहीं रहे हैं। हाल के दिनों में, ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकाश की अवस्थिति ज़्यादातर मामलों में प्रचण्ड के साथ रही है, जबकि एकता केन्द्र धड़े के कई अग्रणी नेताओं की अवस्थिति किरण धड़े के साथ रही है। यानी बुर्जुआ विचारधारात्मक-राजनीतिक प्रश्नों पर एकता बनाये बग़ैर सांगठनिक एकता बनाने का एकता केन्द्र को गम्भीर नुकसान उठाना पड़ा है। नेकपा (मा) के बड़े हिस्से को अपनी विचारधारा और राजनीतिक संस्कृति से प्रभावित करने के बजाय वह

वस्तुतः उसी में घुल-मिल गया है। उसके नेताओं की स्थिति 'बैकबेंचर्स' की और सन्तुलन बनाने वालों की हो गयी है और कार्यकर्ता विभ्रम, निराशा और अनिर्णय के शिकार हो रहे हैं। पार्टी के भीतर दो लाइनों के संघर्ष के लिए अल्पमत में होना कोई मायने नहीं रखता, बशर्ते कि सही लाइन की समझ स्पष्ट हो। नेकपा (एकता केन्द्र) स्वयं सही लाइन को नेतृत्व देते हुए एकीकृत संगठन में उस हद तक भी संघर्ष नहीं चला सका, जितना कि वह बाहर रहकर चला रहा था। इसके कारणों का विश्लेषण ज़रूरी है। यदि पीछे मुड़कर देखें तो पाते हैं कि अपने पूरे इतिहास में माओवादियों के "वाम" और दक्षिण के भटकावों की आलोचना करने के बावजूद, एकता केन्द्र एक वैकल्पिक लाइन को आगे बढ़ा पाने में, मूलतः और मुख्यतः विफल रहा। सही समय पर निर्णय ले पाने की क्षमता में कमी कई मायनों में दीखती रही है। माओवादियों द्वारा लोकयुद्ध की घोषणा के बाद (अब जिस निर्णय के समय के औचित्य पर ही पुनर्विचार की ज़रूरत है) सशस्त्र संघर्ष का दबाव उनके ऊपर भी था क्योंकि अपनी क़तारों को वे सही-सटीक वैकल्पिक कार्यक्रम नहीं दे सके। एकता केन्द्र माओवादियों के बुर्जुआ संवैधानिक विभ्रमों की आलोचना करते हुए प्रॉविज़नल सरकार में भागीदारी को एक 'टैक्टिकल' क़दम मानता था और कहता था कि हम निर्माणाधीन संविधान को ज़्यादा से ज़्यादा जनोन्मुख बनाने (यानी बुर्जुआ जनवाद की चौहद्दी को थोड़ा फैलाने) के अतिरिक्त ज़्यादा कुछ नहीं कर सकते। लेकिन एकता केन्द्र ने भी इस संक्रमण अवधि के दौरान बुर्जुआ जनवाद के 'एक्सपोज़र' का और वैकल्पिक, समान्तर क्रान्तिकारी लोकसत्ता के रूपों एवं संस्थाओं को विकसित करने का, कोई ठोस कार्यक्रम नहीं रखा। पूरी पार्टी के तन्त्र के बड़े हिस्से को संवैधानिक राजनीति से अलग वर्ग-संघर्ष की तैयारी के कामों में लगाने की कोई ठोस योजना उनके पास भी नहीं थी। सेनाओं के विलय के प्रश्न पर उनकी भी सहमति थी। आधार इलाक़ों की कमेटियों को भंग करने, पेशेवर क्रान्तिकारियों को घर भेजने और पूरी पार्टी को खुली करने के निर्णयों का उन्होंने भी कोई विरोध नहीं किया। नेकपा (मा) से पहले ही वे कोइराला के नेतृत्व वाली अन्तरिम सरकार में शामिल थे और उसी दौरान उनके सामने पार्टी के नेतृत्व के कुछ हलकों और क़तारों में सत्ता-संस्कृति (सत्ता की सुविधाओं से लाभ उठाने और भ्रष्टाचार की संस्कृति) के ख़तरे आये थे। जो पार्टी अपने भीतर सांस्कृतिक क्रान्ति पर बल देती हो, उसके भीतर यदि यह समस्या सत्ता में शामिल होते ही गम्भीर होकर सामने आयी तो यह मानने के पर्याप्त आधार मौजूद हैं कि पार्टी के भीतर निम्न बुर्जुआ प्रवृत्तियाँ पहले से मज़बूत रूप में मौजूद रही हैं और उनके विरुद्ध प्रभावी संघर्ष नहीं चलाया जा सका है। बहरहाल, एकता

केन्द्र धड़े की वर्तमान स्थिति के कारणों पर हम निर्णायक ढंग से कुछ नहीं कह सकते, लेकिन इतना ज़रूर कह सकते हैं कि अतीत में "वाम" और दक्षिण के भटकावों के विरुद्ध मूलतः और मुख्यतः सही अवस्थिति अपनाने के बावजूद उनकी विचारधारात्मक समझ की ज़मीन कमज़ोर रही है। इसी के नाते अतीत में भी पहलक़दमी उनके हाथों से निकलकर नेकपा (मा) के हाथों में आ गयी थी। इसी के नाते अन्तरिम सरकार में 'टैक्टिकल' भागीदारी के दौर के कामों के बारे में वे स्वयं भी कोई ठोस वैकल्पिक रूपरेखा नहीं प्रस्तुत कर सके। इसी के नाते संगठन को कमान में रखते हुए उन्होंने एकता का निर्णय लिया और इसी के नाते एकता के बाद वे पार्टी के भीतर दक्षिणपन्थी अवसरवाद के विरुद्ध सुसंगत एवं निर्णायक ढंग से दो लाइनों का संघर्ष चला पाने में विफल रहे। नतीजतन, स्वयं उनकी विचारधारात्मक अवस्थिति विसंगतियों और विघटन का शिकार हो गयी और काफ़ी हद तक वे स्वयं दक्षिणपन्थी विचलन का शिकार हो गये। यह विचलन आज ज़्यादातर व्यवहारवाद (प्रैग्मेटिज़्म) और पराजयवाद के रूप में नज़र आ रहा है।

नेपाली क्रान्ति विगत लगभग दो दशकों के दौरान के सर्वाधिक संकटपूर्ण दौर से गुज़र रही है। बेशक विश्व-ऐतिहासिक और राष्ट्रीय वस्तुगत परिस्थितियाँ भी बेहद प्रतिकूल हैं। संक्रमणकालीन स्थितियों की तरलता भी जटिलता को बढ़ा रही है। ऐसे में, बाहर से बने-बनाये फार्मूले सुझाने का काम तो कत्तई नहीं किया जा सकता। हाँ, डेढ़ सौ वर्षों के सर्वहारा संघर्षों के इतिहास और उनसे निःसृत क्रान्ति के विज्ञान के आधार पर इतनी बातें दृढ़तापूर्वक ज़रूर की जा सकती हैं कि क्रान्ति को सफल अंजाम तक वही पार्टी पहुँचा सकती है, जो विचारधारा के प्रश्न पर और रणनीति एवं आम रणकौशलों (स्ट्रैटेजी ऐण्ड जनरल टैक्टिस) के प्रश्नों पर एकजुट हो। पार्टी में दो लाइनों की मौजूदगी का मतलब यह कदापि नहीं होता कि उसमें संघर्ष के बजाय लाइनों के सहअस्तित्व और सहमेल की स्थिति हो और पार्टी का ढाँचा बुर्जुआ संघात्मक क़िस्म का हो। ऐसी पार्टी कत्तई निर्णायक नहीं होती और वर्ग युद्ध हरावल दस्ते से निर्णायक होने की माँग करता है। विजातीय विचार पार्टी में लगातार आते रहते हैं और उनके विरुद्ध समझौताविहीन संघर्ष भी एक सतत् प्रक्रिया है। जब कोई विजातीय लाइन स्पष्ट रंग-रूप एवं निरन्तरता के साथ सामने आ जाये, तो उसके विरुद्ध अविलम्ब आर-पार की लड़ाई लड़ी जानी चाहिए और इसके लिए सांगठनिक एकता की भी परवाह नहीं की जानी चाहिए। हो सकता है कि इससे तुरत नुकसान होता दीखे, लेकिन अन्ततोगत्वा क्रान्ति के लिए यही हितकर सिद्ध होगा। एक पार्टी में यदि दक्षिणपन्थी अवसरवाद और सही क्रान्तिकारी वामपन्थी लाइन के

साथ-साथ मध्यमार्गी (सेण्ट्रिस्ट) ओर सारसंग्रहवादी (एक्लेक्टिक) लाइनें भी मौजूद हों, तो यह खिचड़ी अन्ततः दक्षिणपन्थी ही बनती है। मध्यमार्गी और सारसंग्रहवादी लाइनें भी सारतः दक्षिणपन्थी ही होती हैं और जो सही वामपन्थी धारा ग़लत लाइनों के साथ सहअस्तित्व क़ायम करती है, वह भी कालान्तर में निष्प्रभावी और विघटित हो जाती है।

न केवल एकीकृत नेकपा (मा) में बल्कि पूरे नेपाल के क्रान्तिकारी वाम आन्दोलन में इस समय दक्षिणपन्थी अवसरवाद का भटकाव हावी है (बेशक संकीर्णतावाद और हरावलपन्थ के रूप में "वामपन्थी" अवसरवाद की धारा भी मौजूद है, पर वह बेहद कमज़ोर है), और इस भटकाव के विरुद्ध लड़कर ही नये सिरे से सर्वहारा क्रान्ति के हरावल दस्ते का पुनर्गठन किया जा सकता है और नेपाली क्रान्ति को उसके सुदीर्घ, जटिल एवं दुश्कर पथ पर आगे बढ़ाया जा सकता है। वैज्ञानिक मिथ्या आशाओं में नहीं जीता और वास्तविकता को स्वीकार करके आगे क़दम बढ़ाता है। जन समुदाय को भी वह यही सिखाता है।

कुछ वर्षों पूर्व नेपाल में क्रान्तिकारी वाम की जो एकता-प्रक्रिया तेज़ी से आगे डग भर रही थी, वह एकीकृत नेकपा (माओवादी) के भीतर दक्षिणपन्थी भटकावों की मौजूदगी तथा संघर्षों और नाना प्रकार के समझौता फार्मूलों पर अमल की भ्रमपूर्ण स्थिति के कारण रुक गयी है। न केवल रुक गयी है, बल्कि उल्टी प्रक्रिया भी ज़ोर पकड़ रही है। पिछले वर्ष जुलाई में एकीकृत नेकपा (मा) से टूटकर 22 नेता और सैकड़ों कार्यकर्ता मातृका यादव के नेतृत्व वाली नेकपा (माओवादी) में शामिल हो गये। उन्होंने पार्टी नेतृत्व पर भ्रष्टाचार और वित्तीय अनियमितता के भी आरोप लगाये। पूर्व में एकता केन्द्र से सम्बद्ध जनमोर्चा के एक हिस्से ने, अभी भी अपना अलग अस्तित्व बनाये रखा है। 2008 के अन्त तक स्थिति यह थी कि संशोधनवादी पार्टियों के रैडिकल कार्यकर्ता भी एकीकृत माओवादी पार्टी में आने को तैयार थे, लेकिन पार्टी की अन्दरूनी स्थिति के कारण यह प्रक्रिया रुक गयी।

यही नहीं, यदि पार्टी विचारधारात्मक और रणनीतिक प्रश्नों पर एकजुट और दृढ़ होती तो एमाले और नेपाली कांग्रेस के भीतर मौजूद ऐसे रैडिकल राष्ट्रीय तत्वों को भी (जैसे एमाले में वामदेव गौतम और ने.कां. में प्रदीप गिरि तथा बड़ी तादाद में मौजूद युवा कार्यकर्ता) साथ लेकर एक राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चा गठित किया जा सकता था, जो माधव नेपाल ऐण्ड कं. और कोइराला-देउबा ऐण्ड कं. की घटिया मौक़ापरस्ती और भारतोन्मुख नीतियों से बेहद नाराज़ थे। पर एकीकृत माओवादी पार्टी के भीतर एकता के अभाव के चलते ऐसा नहीं हो सका।

वर्तमान विश्व-परिस्थितियों में नेपाल जैसे पिछड़े, भूआवेष्ठित देश में

सर्वहारा क्रान्ति की राह बहुत कठिन है, पर इनसे घबराकर यदि कोई पार्टी समझौते का मार्ग चुनती है या बुर्जुआ चौहद्दियों में रहकर सत्ता का भागीदार बनकर बुर्जुआ जनवादी सुधार करते हुए अनुकूल स्थिति के इन्तज़ार का रास्ता चुनती है तो इसका अर्थ यह है कि उस पार्टी का विचारधारात्मक आधार बेहद कमज़ोर है। इतिहास ने हमें बताया है कि यदि विचारधारा भटक जाती है तो "राकेट आसमान में उड़ता है और लाल झण्डा धूल में गिर जाता है" (ख्रुश्चेवी संशोधनवादी शासन के दौर के बारे में चीनी पार्टी की प्रसिद्ध टिप्पणी)। इसलिए बुनियादी सवाल वर्ग संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकत्व के प्रश्न पर अडिग रहने का है। बुनियादी सवाल इस मसले पर स्पष्टता का है कि अन्तरिम सरकार में और संविधान-निर्माण में भागीदारी महज़ एक 'टैक्टिकल' क़दम ही हो सकता है। बहुमत पाकर सरकार बनाकर और संविधान बनाकर लोक जनवाद की स्थापना नहीं की जा सकती। पुरानी राज्यसत्ता का पुनर्गठन नहीं बल्कि ध्वंस करके ही लोक जनवादी अधिनायकत्व की अन्तर्वस्तु वाली नयी राज्यसत्ता क़ायम की जा सकती है। सरकार और राज्यसत्ता के भेद को भी स्पष्ट समझना चाहिए। नेपाल में "नयी चीज़ों" और नयी खोजों के नाम पर राज्य और क्रान्ति विषयक बुनियादी लेनिनवादी शिक्षाओं को "पुराना" घोषित करने वाले लोग स्पष्टतः ख्रुश्चेव और देङ के पदचिह्नों पर चल रहे हैं। उन्हें इतिहास की कचरापेटी के हवाले करके ही नेपाली क्रान्ति आगे डग भर सकती है।

नेपाल में कम्युनिस्ट आन्दोलन के साठ वर्षों के इतिहास ने, विशेषकर विगत दो दशकों ने वहाँ की कम्युनिस्ट क़तारों को काफ़ी कुछ सिखाया है। आज भले ही स्थितियाँ प्रतिकूल लग रही हैं, पर ऐसा कत्तई नहीं हो सकता कि वहाँ के पूरे क्रान्तिकारी वाम आन्दोलन को दक्षिणपन्थी अवसरवाद अपने आगोश में ले ले। इतिहास से शिक्षा लेकर, वहाँ क़तारों के बीच से आगे आने वाले नये नेतृत्व, और अतीत का समाहार करके सही रास्ते पर आने वाले नेतृत्व की पुरानी पीढ़ी के कुछ लोगों की रहनुमाई में, देर-सबेर सही क्रान्तिकारी लाइन एक बार फिर नयी ऊर्जस्विता के साथ अवश्य उठ खड़ी होगी और दृढ़तापूर्वक आगे क़दम बढ़ायेगी।

परिशिष्ट

नेपाल के घटनाक्रम और कम्युनिस्ट आन्दोलन के लिए इसके मायने के बारे में

रिवोल्यूशनरी कम्युनिस्ट पार्टी, यू.एस.ए. की ओर से नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) को लिखे गये पत्र, 2005–2008 (नेकपा (मा) के जवाब, 2006 के साथ)

आज की दुनिया में बहुत से लोग इस बात पर विचार कर रहे हैं कि नेपाली क्रान्ति में हुए हाल के घटनाक्रम का मूल्यांकन कैसे करें – जहाँ नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के नेतृत्व में 10 वर्ष तक चले प्रेरणादायी जनयुद्ध के बाद वह युद्ध समाप्त हो चुका है, नेकपा (मा) अब हाल में चुनी गयी संविधान सभा में सबसे बड़ी पार्टी है और पार्टी के अध्यक्ष, प्रचण्ड, सरकार के प्रधानमन्त्री हैं। क्या नेपाल की वर्तमान दिशा और नेकपा (मा) द्वारा चुना गया रास्ता एक ऐतिहासिक नयी चीज़, एक विजय और इक्कीसवीं सदी में कम्युनिस्ट क्रान्ति को आगे बढ़ाने की राह पर एक पथप्रदर्शक कदम है, जैसाकि कुछ लोगों ने दावा किया है; या – जैसाकि बहुत-से दूसरे लोगों को आशंका है – क्या यह एक धक्का और क्रान्ति के लक्ष्यों तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए हुए बहादुराना संघर्ष के साथ विश्वासघात, और उस कम्युनिस्ट लक्ष्य से गम्भीर प्रस्थान है जिसके लिए लड़ने का नेकपा (मा) दावा करती है?

इसके उत्तर का बहुत अधिक महत्त्व है, और इससे जुड़े विचारधारात्मक और राजनीतिक लाइन के महत्त्वपूर्ण सवालों पर गहराई से विचार करके ही इस उत्तर पर पहुँचा जा सकता है; और इसे उन चुनौतियों के सन्दर्भ में देखना होगा जिनका सामना आज अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन कर रहा है, जो इस बुनियादी सवाल पर केन्द्रित है कि क्या हम भविष्य के हिरावल बनेंगे या अतीत की निशानी बन जायेंगे, जैसाकि 'कम्युनिज़्म : दि बिगनिंग ऑफ़ ए न्यू स्टेज, ए मेनिफ़ेस्टो फ्रॉम दि रिवाल्यूशनरी कम्युनिस्ट पार्टी, यू.एस.ए.' में कहा गया है।

यह लेख रिवाल्यूशनरी कम्युनिस्ट पार्टी, यू.एस.ए. (आर.सी.पी., यू.एस.ए.) और नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी)[1] (नेकपा (मा)) के बीच अक्टूबर

2005 और नवम्बर 2008 के बीच कई वर्षों के दौरान हुए पत्र–व्यवहार की भूमिका के बतौर लिखा गया है – इस अवधि में आर.सी.पी., यू.एस.ए. ने तीन पत्र लिखे और नेकपा (मा) की ओर से एक उत्तर भेजा गया। ये पत्र उत्तरोत्तर बढ़ती असहमतियों के साथ कम्युनिस्ट सिद्धान्त और क्रान्तिकारी रणनीति के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों से सम्बन्धित हैं। (इन पत्रों को revcom.us पर ऑनलाइन देखा जा सकता है।)

इतिहास और पृष्ठभूमि के बतौर कुछ बातें

क्रान्तियाँ, और ख़ासकर सच्चे कम्युनिस्टों के नेतृत्व में उत्पीड़ितों की क्रान्तियाँ, आज की दुनिया में बेहद दुर्लभ हैं – एक ऐसी दुनिया में जो ऐसी क्रान्तियों के लिए मानो व्याकुल है। जब भी कोई ऐसा संघर्ष उभरता है जिसका लक्ष्य दुनिया के छोटे से भाग में भी साम्राज्यवाद की पकड़ का विरोध करना है, और जब उस क्रान्ति का लक्ष्य आज की मानवता को जकड़े हुए बुनियादी सम्बन्धों को बदलना होता है, तो उस संघर्ष की सफलता या असफलता बेहद महत्त्वपूर्ण होती है और इसके गहरे निहितार्थ होते हैं। फ़रवरी 1996 में, नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) ने ऐसा संघर्ष शुरू करने का साहस किया, उसने क्रान्तिकारी जनयुद्ध छेड़ दिया और "दुनिया की छत पर" कम्युनिस्ट क्रान्ति का लाल झण्डा फहरा दिया। इसने न केवल नेपाल और दुनिया के उस हिस्से की जनता की उम्मीदें जगा दीं, बल्कि दुनिया भर में बहुत–सी अन्य जगहों पर उन सबकी उम्मीदें भी जगायीं जो इस प्रकार के मुक्तिदायी संघर्ष और एक नयी क्रान्तिकारी राज्यसत्ता क़ायम करने की कामना करते हैं। एक ऐसे समय में जब लोगों को यह झूठ परोसा जा रहा है कि कम्युनिज़्म ख़त्म हो चुका है, और साम्राज्यवाद (तथा आमतौर पर शोषण और उत्पीड़न के सम्बन्धों) के नागपाश से मुक्त होने की कोई वास्तविक सम्भावना नहीं रह गयी है, जब बार–बार यह दोहराया जाता है कि साम्राज्यवाद–पूँजीवाद की राक्षसी व्यवस्था का कोई क़ारगर विकल्प नहीं है, तब इन क्रान्तिकारियों के साहस और उनके उदात्त लक्ष्यों ने बहुत–से लोगों को प्रेरित किया था।

दस वर्षों तक नेपाल में उतार–चढ़ाव से गुज़रता हुआ युद्ध जारी रहा, लेकिन भीषण दमन के बावजूद, क्रान्तिकारी शक्तियाँ बढ़ती गयीं, उन्होंने पुराने राज्य की सेनाओं को अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र से खदेड़ दिया और लाल आधार क्षेत्र क़ायम किये जहाँ किसानों, जातीय अल्पसंख्यकों, महिलाओं और दसियों लाख अन्य उत्पीड़ित लोगों ने पहली बार वास्तविक आज़ादी का स्वाद चखा। जनयुद्ध का घोषित लक्ष्य था 200 से अधिक वर्षों से नेपाल पर शासन कर रही राजशाही का

विरोध करना और एक नया जनवादी राज्य स्थापित करना – एक ऐसा राज्य जो साम्राज्यवाद और सामन्तवाद को, तथा साम्राज्यवाद और सामन्तवाद से जुड़ी अन्य प्रतिक्रियावादी शक्तियों को उखाड़ फेंकने के बाद क़ायम होगा, और जोकि सर्वहारा के शासन का प्रतिनिधित्व करेगा और उसका मूर्त्त रूप होगा, जिसका नेतृत्व सर्वहारा वर्ग का कम्युनिस्ट हिरावल करेगा, जोकि व्यापक किसान समुदाय तथा साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध संघर्ष में एकजुट हुए अन्य वर्गों और समूहों के संश्रय की अगुवाई करेगा – और फिर क्रान्ति को समाजवाद और कम्युनिज़्म की दिशा में आगे ले जायेगा। नेकपा (मा) स्पष्ट तौर पर इसे विश्व क्रान्ति के एक भाग, और उसमें एक योगदान के रूप में देखती थी।

आर.सी.पी., यू.एस.ए. सहित, पूरी दुनिया के क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों ने इसे राजनीतिक और विचारधारात्मक समर्थन दिया। हमारी पार्टी ने नेकपा (मा) के कॉमरेडों के नेतृत्व में इस बहादुराना संघर्ष और नेपाल के सबसे उत्पीड़ित जनसमुदायों के इस उभार के कम्युनिस्ट लक्ष्यों को प्रचारित-प्रसारित करने के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयास किये। हमने जनयुद्ध के मोड़ों और घुमावों पर और संघर्ष से सामने आने वाली क्रान्तिकारी नयी चीज़ों पर क़रीबी नज़र रखी। और हमने इस बात पर ध्यान दिया कि नेतृत्व अपने सामने उपस्थित होने वाली ठोस परिस्थितियों में मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धान्तों को किस प्रकार लागू कर रहा है, जिसमें यह तथ्य विशेष रूप से केन्द्र में था कि वे कम्युनिज़्म के अन्तिम लक्ष्य और उस अन्तिम लक्ष्य की ओर अनिवार्य अगले क़दम के तौर पर क्रान्तिकारी राज्यसत्ता की स्थापना को प्रचारित कर रहे हैं; किस प्रकार बुर्जुआ जनवाद के बरक्स नव-जनवाद प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है; वे सर्वहारा के नेतृत्व में बनने वाले संयुक्त मोर्चा को कैसे देखते हैं; और क्रान्ति में जीत हासिल करने तथा एक नयी, क्रान्तिकारी राज्यसत्ता स्थापित करने के लिए रणनीति के सवालों पर कैसे सोचते हैं।

जैसे-जैसे क्रान्ति आगे बढ़ी, इसने नयी कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना किया जिनके केन्द्र में यह बात थी कि वास्तव में राज्यसत्ता परिवर्तन का काम कैसे पूरा किया जाये, साम्राज्यवाद के वर्चस्व वाली दुनिया में और ख़ासकर ताक़तवर पड़ोसी देशों भारत और चीन (जोकि अब समाजवादी देश नहीं बल्कि नाम के कम्युनिस्टों और वास्तव में पूँजीवादियों द्वारा शासित प्रतिक्रियावादी राज्य है) से ख़तरों का सामना करने वाले एक पिछड़े देश की अर्थव्यवस्था को कैसे रूपान्तरित किया जाये, और एक ऐसा संयुक्त मोर्चा कैसे गठित किया जाये जो क्रान्तिकारी लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित रखते हुए, तथा कम्युनिस्टों का नेतृत्व बनाये रखते हुए समाज के मध्यम तबकों को भी अपने साथ जोड़ सके। ये ऐसी

चुनौतियाँ हैं जिनका किसी भी सच्चे क्रान्तिकारी संघर्ष में सामना करना ही पड़ेगा, और कभी भी ऐसे सरल समाधान, या रेडीमेड सूत्र नहीं होते जिन्हें इन जटिल समस्याओं को हल करने के लिए लागू किया जा सके। इस सन्दर्भ में, दुनिया में कम्युनिस्ट क्रान्ति के पहले चरण की पराजय (जो 1976 में माओ त्से-तुङ के निधन के कुछ ही समय बाद चीन में क्रान्ति के विपयर्य और पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के साथ समाप्त हुआ) के अधिक व्यापक सन्दर्भ में, और इन चुनौतियों का सामना करने में सक्षम कम्युनिज़्म की नयी मंज़िल को सिद्धान्त और व्यवहार में और अधिक विकसित करने की ज़रूरत के जवाब में, इस बात पर संघर्ष उभर कर आया कि क्रान्ति के वास्तविक लक्ष्य क्या होने चाहिए और उन्हें कैसे हासिल किया जाये।

हमारी पार्टी ने हमारी बुनियादी अन्तरराष्ट्रीयतावाद दिशा के अनुसार इस समस्त घटनाक्रम पर ध्यान दिया, जोकि हमारी इस समझदारी पर आधारित है कि सभी कम्युनिस्टों को क्रान्ति को एक विश्व-ऐतिहासिक संघर्ष की प्रक्रिया के रूप में देखना चाहिए जिसका लक्ष्य और अन्तिम मंज़िल विश्वस्तर पर कम्युनिज़्म की स्थापना होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से, अपने सैद्धान्तिक सूत्रीकरणों और इसी से सम्बन्धित क्रान्ति के मूल उद्देश्यों को छोड़ देने के रूप में नेकपा (मा) के नेतृत्व द्वारा अपनायी जा रही दिशा को लेकर हम अधिकाधिक चिन्तित होते गये। ये असहमतियाँ इन बिन्दुओं पर केन्द्रित थीं : 1) राज्य की प्रकृति, और विशिष्ट रूप से सर्वहारा तथा उसके कम्युनिस्ट हिरावल के नेतृत्व वाले नये राज्य की स्थापना की ज़रूरत, जोकि प्रतिक्रियावादी राज्य (नेपाल के मामले में राजशाही को हटाकर) में भागीदारी करने तथा उसे "मज़बूत बनाने" पर केन्द्रित रणनीति के विपरीत थी; 2) अधिक विशिष्ट रूप में, पुराने ढाँचे को उखाड़ फेंक कर, पहले कदम के तौर पर एक ऐसा नया जनवादी राज्य कायम करने की ज़रूरत, जोकि साम्राज्यवादी वर्चस्व और सामन्ती सम्बन्धों से मुक्त राष्ट्र के आर्थिक आधार और तत्सम्बन्धी संस्थाओं का विकास करेगा, जोकि जनयुद्ध के दौरान सामने आये नये उत्पादक एवं सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होगा, न कि पूँजीवाद का विकास करने तथा विश्व साम्राज्यवाद नेटवर्क में जगह बनाने पर केन्द्रित बुर्जुआ गणतन्त्र की स्थापना करना; 3) सिद्धान्त और दो लाइनों के संघर्ष (आमतौर पर विचारधारात्मक और राजनीतिक लाइन के सवालों पर कम्युनिस्ट पार्टियों के भीतर और कम्युनिस्टों के बीच संघर्ष) की भूमिका बनाम सर्वसंग्रहवाद, प्रैगमैटिज़्म और "रणकौशलात्मक बारीकियों" तथा बुर्जुआ ढंग की राजनीतिक जोड़तोड़ – साम्राज्यवाद (तथा अन्य बड़ी शक्तियों) के वर्चस्व वाले ढाँचे और शोषण तथा उत्पीड़न के मौजूदा सम्बन्धों के भीतर ही रास्ता निकालने

की क़वायद करते रहना।

इन तीनों निर्णायक पहलुओं में से प्रत्येक के सम्बन्ध में नेकपा (मा) का नेतृत्व उत्तरोत्तर ग़लत दृष्टि और पहुँच पर ज़ोर देता रहा है, जिसके चलते वे दुखद रूप से उस लक्ष्य को छोड़ने और उससे विश्वासघात करने तक जा पहुँचे हैं जिसके लिए वे शुरू में लड़ रहे थे। इस बेहद निराशाजनक घटनाक्रम के मद्देनज़र, हमारे सामने इस घातक रास्ते के विरुद्ध तीखा संघर्ष करने की ज़रूरत पेश आयी, और हम नेकपा (मा) और रिवोल्यूशनरी इण्टनेशलिस्ट मूवमेण्ट (रिम) में शामिल अन्य पार्टियों और संगठनों के समक्ष अपनी आलोचना रखने का सबसे बेहतर और उपयुक्त साधन निरन्तर तलाशते रहे हैं – ताकि इस संघर्ष को एक ऐसे ढंग से चलाया जा सके जोकि वास्तव में क्रान्ति की राजनीतिक और विचारधारात्मक सहायता कर सके और साम्राज्यवादियों और प्रतिक्रियावादियों को मदद न पहुँचाये, जोकि उत्पीड़ितों (और अन्ततः पूरी मानवता) की मुक्ति के कट्टर शत्रु हैं और लगातार क्रान्ति तथा कम्युनिज़्म की शक्तियों को बाँटने, पराजित करने तथा कुचलने की कोशिश करते रहते हैं।

लाइनों के इस संघर्ष तक पहुँचने में, आर.सी.पी. ने इस समझदारी से प्रस्थान किया है कि दुनियाभर के कम्युनिस्टों पर पर यह ज़िम्मेदारी है कि वे न केवल "स्वयं अपने" देश में क्रान्ति करने की समस्याओं पर कम्युनिज़्म के विज्ञान को लागू करें बल्कि, लेनिन के शब्दों में "निरपवाद रूप से हर देश में इस संघर्ष, इस, और केवल इसी लाइन" का समर्थन करें। कम्युनिस्टों का यह फ़र्ज़ है कि वे अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सामने आने वाले राजनीति और विचारधारात्मक लाइन के महत्त्वपूर्ण सवालों को अपनी पूरी क्षमता अनुसार समझें, और हर देश में संशोधनवाद (कम्युनिज़्म के नाम पर कम्युनिज़्म से ग़द्दारी) के प्रभाव को नाकाम करने के लिए क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट लाइन की मदद करने की हरसम्भव कोशिश करें, और ऐसा करना तब और भी ज़रूरी है जब विचारधारात्मक और राजनीतिक लाइन पर संघर्ष के परिणाम का एक अत्यन्त उन्नत क्रान्तिकारी संघर्ष पर इतना अधिक फ़ौरी असर पड़ने वाला हो जैसा कि नेपाल में हो रहा है।

दो लाइनों के इस संघर्ष को गम्भीर और अनुशासित ढंग से चलाया गया है। जब नेकपा (मा) ने अपनी अगुवाई में चल रही क्रान्ति को नष्ट करने की दिशा में क़दम बढ़ाए तब भी आ.सी.पी., यू.एस.ए. संघर्ष को निजी तौर पर चलाती रही, क्योंकि नेकपा (मा) ने स्पष्ट कर दिया था कि वह ऐसा ही चाहती है, और इसका लक्ष्य साम्राज्यवादियों तथा अन्य शत्रुओं द्वारा कम्युनिस्ट क़तारों के बीच मतभेदों को लेकर अटकलबाज़ी की क्षमता को सीमित करना तथा नेकपा (मा) द्वारा लाइन के इन सवालों पर स्वयं बहस तथा संघर्ष चलाने के लिए अनुकूलतम

परिस्थितियाँ निर्मित करना भी था। दुर्भाग्यवश, नेकपा (मा) का नेतृत्व इस पूरी अवधि में सामने आए बुनियादी सवालों का वास्तव में उत्तर देने, या उनसे उल्लेखनीय ढंग से जूझने में विफल रहा है, और इसके बजाय इस बात पर बल देता रहा है कि असल मामला रणकौशल (टैक्टिक्स) का है, न कि बुनियादी सिद्धान्तों और रणनीतिक दिशा का, जिसमें से टैक्टिक्स निकलनी चाहिए और निकलती है। वास्तव में, उन्होंने बार बार एक ऐसा सन्देश दोहरा कर इन बुनियादी सवालों पर आलोचना को ख़ारिज किया है जो अपने आप में प्रैगमैटिज़्म और अनुभववाद की भोंडी अभिव्यक्ति है : हम आपकी चिन्ताओं की क़द्र करते हैं, लेकिन चिन्ता की कोई बात नहीं है – हम पर भरोसा रखिये – हम अब तक सफल रहे हैं, इसलिए अब हम जो कर रहे हैं वो सही ही होगा।

लेकिन इस बिन्दु पर, नेकपा (मा) में हुए घटनाक्रम, और ख़ासकर इसकी लाइन के संशोधनवादी पतन में आई तेज़ी के कारण इस नतीजे पर पहुँचना आवश्यक हो गया है कि आर.सी.पी. द्वारा अब तक इस संघर्ष को केवल निजी तौर पर चलाने की नीति अब सही नहीं रह गयी है। हम मानते हैं कि इस बिन्दु पर इस संघर्ष को सार्वजनिक कर देना ज़रूरी है, ताकि दुनियाभर में क्रान्तिकारी आन्दोलन, और क्रान्ति तथा कम्युनिज़्म का समर्थन करने वाले लोग (या इस प्रश्न से जूझते लोग कि क्रान्ति और कम्युनिज़्म केवल ज़रूरी ही नहीं बल्कि सम्भव भी हैं), इस महत्त्वपूर्ण दो लाइनों के संघर्ष की प्रकृति और विकासक्रम की यथासम्भव सटीक और पूरी जानकारी पा सकें।

वर्तमान परिस्थिति

अप्रैल 2008 में हुए चुनावों के परिणामस्वरूप, आज नेकपा (मा) नेपाल में नवगठित संविधान सभा की अग्रणी पार्टी है। पार्टी के केन्द्रीय नेता नये "संघीय जनवादी गणराज्य", यानी नेपाल में प्रतिक्रियावादी वर्ग–सम्बन्धों पर आधारित और उनकी हिफ़ाज़त करने वाले **बुर्जुआ** राज्य के प्रति वफ़ादार रहने के जोरशोर से वायदे करते हैं, और ये नेता "अन्तरराष्ट्रीय समुदाय" (पढ़ें : साम्राज्यवादी और प्रतिक्रियावादी राज्य जैसे अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, भारत और चीन) को बार–बार आश्वासन देते हैं कि वे नेपाल को विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था का अंग बनाये रखेंगे। जनयुद्ध के द्वारा नेपाल के ग्रामीण क्षेत्रों में निर्मित लोकसत्ता के अंगों को भंग कर दिया गया है, पुराने पुलिस बल वापस ले आये गये हैं, जनमुक्ति सेना (पी.एल.ए.) जो रणक्षेत्र में कभी नहीं हारी, उसे निश्शस्त्र करके "बैरकों" के भीतर कर दिया गया है जबकि पुरानी प्रतिक्रियावादी सेना (पहले शाही नेपाल सेना, अब नया नाम नेपाल सेना) जो पहले भारी हथियारबन्द काफ़िलों के

अलावा अपनी बैरकों से दूर जाने से डरती थी, अब नेकपा (मा) के रक्षा मन्त्री की कृपा से देशभर में गश्त लगाने के लिए आज़ाद है। नेकपा (मा) द्वारा कम्युनिस्ट सिद्धान्तों – जैसे पुराने बुर्जुआ राज्य को ख़ारिज करके नयी सर्वहारा सत्ता, सर्वहारा अधिनायकत्व और कम्युनिज़्म के वास्तविक लक्ष्य को स्थापित करने, तथा सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में सभी पारम्परिक सम्बन्धों और पारम्परिक विचारों से निर्णायक विच्छेद करने – को इस नंगे ढंग से छोड़ देने पर नेपाल के भीतर और बाहर बहुत से लोग दंग रह गये हैं। खुद नेकपा (मा) के भीतर बहुत से लोग **संशोधनवाद** की इन खुली अभिव्यक्तियों से भौचक्के हैं – जिसमें वास्तव में पूँजीवादी विश्वदृष्टि और राजनीतिक कार्यक्रम को ढँकने के लिए कम्युनिस्ट नारों और शब्दाडम्बर का प्रयोग किया जाता है। नेपाल के बाहर, दुनियाभर के संशोधनवादी, जिनमें से शायद ही किसी ने जनयुद्ध का समर्थन किया था, इस घटनाक्रम पर फूले न समा रहे हैं और नेकपा (मा) तथा उसकी वर्तमान लाइन की प्रशंसा में लेख पर लेख लिखे जा रहे हैं। दूसरी ओर, जिन्होंने इस आशा के साथ जनयुद्ध का समर्थन किया था कि यह एक नयी सामाजिक व्यवस्था लायेगा और विश्व क्रान्ति को आगे बढ़ाने में मदद करेगा, वे नेपाल के घटनाक्रम से अधिकाधिक हताश और निराश होते जा रहे हैं।

हालाँकि नेकपा (मा) के भीतर भी विरोध हुआ है, लेकिन दुर्भाग्यवश यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है, ख़ासकर नवम्बर 2008 के राष्ट्रीय महाधिवेशन के बाद (जिस पर आगे चर्चा की जायेगी), कि क्रान्ति का रास्ता छोड़ देने से क्षुब्ध नेकपा (मा) के भीतर की मुख्य विरोधी शक्तियाँ स्वयं संशोधनवादी लाइन की सुसंगत आलोचना विकसित करने में अक्षम रही हैं और, परिणामस्वरूप, नेकपा (मा) के वास्तविक कार्यक्रम और प्रकृति के बारे में खुद को छल रही हैं, और कम से कम वस्तुगत तौर पर दूसरों को भी भ्रम में रखने का काम कर रही हैं। अब यह तय है कि नेकपा (मा) कम्युनिज़्म का नाम लेते हुए (कम से कम फ़िलहाल) वास्तव में पूरी तरह कम्युनिज़्म के लक्ष्य को छोड़ देने की दिशा में अग्रसर है।

संशोधनवाद की राह अपनाना, उसकी जड़ें और निहितार्थ

सच तो यह है, कि आज हम नेपाल में जो कड़वी सच्चाइयाँ देख रहे हैं वे कुछ पार्टी नेताओं के विश्वासघात की अचानक कार्रवाई नहीं है – वे एक ऐसी प्रक्रिया का तर्कसंगत और पूर्वानुमेय परिणाम हैं जोकि कुछ वर्षों से नेकपा (मा) में उभरती रही है, एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें नेकपा (मा) के भीतर अनेक प्रश्नों पर (अपनी किन्हीं भी कमज़ोरियों और गड़बड़ियों के बावजूद) जनयुद्ध की

शुरुआत और उसे उन्नत करने तक ले जाने वाली क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट लाइन का स्थान संशोधनवादी लाइन ने ले लिया। "लाइन" से हमारा मतलब है राजनीतिक गतिविधि को एक या दूसरी दिशा में निर्देशित करने वाला दृष्टिकोण और दिशा, रणनीतिक अवधारणा और पद्धति। निर्णायक मोड़ अक्टूबर 2005 में घटित हुआ जब पार्टी के भीतर एक तीखा संघर्ष संशोधनवादी ढंग से "हल किया गया" जिसकी हम आगे चर्चा करेंगे। यह पूरा अनुभव एक बार फिर दर्शाता है कि जब माओ ने इस बात पर बल दिया था कि विचारधारात्मक और राजनीतिक लाइन निर्णायक होती है तो वे कितनी गहरी अन्तर्दृष्टि वाली बात कह रहे थे। माओ के शब्दों में :

अगर किसी की लाइन ग़लत है, तो उसका पतन अपरिहार्य है, भले ही केन्द्रीय, स्थानीय और सेना का नेतृत्व उसके नियन्त्रण में हो। अगर किसी की लाइन सही है, तो अगर शुरू में एक भी सैनिक न हो, तो भी सैनिक हो जाएंगे, और अगर राजनीतिक सत्ता नहीं है तो राजनीतिक सत्ता हासिल कर ली जायेगी। हमारी पार्टी और मार्क्स के समय से अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के ऐतिहासिक अनुभव ने इसे सही साबित किया है। मामले का केन्द्र बिन्दु लाइन होती है। यह एक अकाट्य सत्य है।

जब नेकपा (मा) में लाइनों का संघर्ष पहले-पहल उभरा तो वह जिस चीज़ पर केन्द्रित था उसे बहुत से लोगों ने जनवाद और समाजवादी क्रान्ति के अमूर्त्त प्रश्न समझा होगा, और नेपाल तथा दुनियाभर में बहुत-से कम्युनिस्ट क्रान्ति की दिशा तथा भविष्य के लिए इन प्रश्नों के जीवन-मरण से जुड़े निहितार्थों को समझ पाने में विफल रहे। लेकिन नेपाल में क्रान्ति के सम्बन्ध में विचारधारात्मक संघर्ष से जुड़े सवाल बुनियादी तौर पर और अन्तिम विश्लेषण में इस मुद्दे से जुड़े हैं कि क्या एक कम्युनिस्ट दुनिया के लिए लड़ा जाये या वर्तमान साम्राज्यवाद के वर्चस्व वाली दुनिया का "यथासम्भव लाभ" उठाया जाये। उस व्यवस्था को उखाड़ फेंक कर वर्गों और शोषण से रहित एक बिल्कुल अलग क़िस्म का समाज बनाया जाये या नहीं। इसमें कोई अचरज नहीं कि नेपाल में संघर्ष की शर्तें इस तरह खुले ढंग से प्रकट नहीं हुईं, और संघर्ष की शुरुआती मंज़िलों में तो ऐसा और भी कम हुआ। हालाँकि नेकपा (मा) के कुछ नेताओं, ख़ासकर बाबूराम भट्टराई ने "लोकतन्त्र" – पश्चिमी शैली के बुर्जुआ लोकतन्त्र – के प्रति मुखर रूप में वफादारी प्रदर्शित की है, लेकिन अन्य केन्द्रीय पार्टी नेताओं में से अधिकांश उतनी ही मुखरता से नव-जनवाद, समाजवाद और कम्युनिज़्म स्थापित करने के लक्ष्यों के प्रति अपना समर्थन घोषित करते हैं और साथ ही इस बात पर भी बल देते हैं कि संघर्ष को "संक्रमणकालीन" (पढ़ें बुर्जुआ) गणतन्त्र के लिए

लड़ाई तक सीमित करना महज़ एक "टैक्टिक" है। इसके बजाय, नेकपा (मा) के नेता आमतौर पर लगातार बहस को "टैक्टिक्स" पर केन्द्रित करने का प्रयास करते रहे हैं, जैसेकि मूलभूत प्रश्न यह हो कि "संघीय लोकतान्त्रिक गणतन्त्र" **कैसे** हासिल किया जाये, न कि यह कि **किस प्रकार के** राज्य, और इससे भी अधिक बुनियादी तौर पर किस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था की नेपाल में और दुनिया में ज़रूरत है।

अपने पत्रों में, आर.सी.पी., यू.एस.ए. ने सम्बन्धित विशिष्ट रणकौशलात्मक प्रश्नों पर केन्द्रित करने के बजाय लाइन और आम दिशा के समग्र प्रश्नों पर ध्यान केन्द्रित किया है, और साथ ही इस बारे में नेकपा (मा) की दलीलों को लगातार सुनती और विवेचित करती रही है कि किस तरह उनके रणकौशल, उनकी ठोस परिस्थितियों में, क्रान्ति के सामने उपस्थित वास्तविक समस्याओं के क्रान्तिकारी समाधान तक ले जा सकते हैं। ऐसा नहीं है कि युद्ध-विराम, वार्ताओं, यहाँ तक कि संविधान सभा के चुनावों में भागीदारी के प्रश्न ग़ैर-महत्त्वपूर्ण थे; मगर वास्तविक महत्त्व का बिन्दु यह था कि ऐसे रणकौशलों के सही या ग़लत होने की पड़ताल और मूल्यांकन इस बुनियादी फ़्रेमवर्क के बाहर नहीं किया जा सकता कि पार्टी क्या हासिल करना चाह रही थी और उसके कार्य किस दृष्टिकोण तथा दिशा से निर्देशित हो रहे थे। जो लोग पार्टी द्वारा ली जा रही दिशा का विरोध करते थे मगर रणकौशल के सवालों को ही निर्णायक दायरा मानकर उन पर केन्द्रित कर रहे थे जैसा करने पर नेकपा (मा) का नेतृत्व ज़ोर दे रहा था, वे मानो लकवाग्रस्त थे, पार्टी की लाइन की स्पष्ट आलोचना विकसित करने में अक्षम थे, और नेपाल की राजनीतिक स्थिति में हर आने वाले मोड़ या घुमाव पर या पार्टी नेतृत्व के नवीनतम राजनीतिक दाँवपेच पर बिखराव और विभ्रम के शिकार हो जाते थे।

नेपाल में क्रान्ति के सामने उपस्थित ख़तरों को समझने के लिए ज़रूरी था कि बदलती परिस्थितियों में मुद्दों को गहराई से समझा जाये – कम्युनिज़्म के दृष्टिकोण और पद्धति का प्रयोग करके सतह की परिघटनाओं के पार जाकर मूलभूत प्रश्नों को समझा जाये। अब भी, जबकि पिछले कुछ वर्षों के दौरान नेकपा (मा) के रास्ते के ग़ैर-क्रान्तिकारी नतीजे को देख लेना पहले से आसान लग सकता है – कम से कम उनके लिए जो क्रान्तिकारी दिशा पर क़ायम रहे हैं – अगर कोई भी पार्टी की कार्रवाइयों को न्यायसंगत और तर्कसंगत ठहराने वाले राजनीतिक तर्कों की गम्भीर विवेचना किये बिना उन कार्रवाइयों को सीधे ख़ारिज करके सन्तुष्ट हो जायेगा, तो वह भविष्य में नये रूपों में इसी प्रकार के जाल में फँसने का जोखिम मोल लिये बिना नहीं रह सकता।

संघर्ष की शुरुआत

जब 2005 में लाइनों का संघर्ष पहली बार पूरी तरह फूट पड़ा तो परिस्थिति क्या थी? नेकपा (मा) के नेतृत्व वाली सेना ने नेपाल में अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र को मुक्त करा लिया था और, सैनिक तथा राजनीतिक, दोनों दृष्टि से उस बिन्दु तक बढ़ चुकी थी जहाँ से राष्ट्रव्यापी जीत की सम्भावना क्षितिज पर दिखायी देने लगी थी। इस स्थिति में, सत्तारूढ़ राजा ज्ञानेन्द्र ने समस्त राजनीतिक शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर ली थी और जनयुद्ध को कुचल डालने के लिए नेपाल के समूचे शासक वर्ग को बलपूर्वक एकजुट करने के प्रयास में संसद को भंग करके मुख्यधारा की संसदीय पार्टियों को भी दमन का शिकार बनाया था। ज्ञानेन्द्र की कमान में शाही नेपाल सेना को अमेरिका, भारत, चीन, ग्रेट ब्रिटेन और अन्य प्रतिक्रियावादी राज्यों का समर्थन प्राप्त था। रणक्षेत्र में, भीषण लड़ाई हुई जिसके नतीजे मिलेजुले रहे : कुछ लड़ाइयाँ जनमुक्ति सेना ने जीतीं, लेकिन अन्य मामलों में शाही नेपाल सेना बड़े पैमाने के हमलों का सामना करने में सक्षम रही और पी.एल.ए. को ख़ासा नुक़सान उठा कर पीछे हटना पड़ा। आखिरकार कौन जीतेगा – पुराना राज्य, जिसका प्रतिनिधि राजा था, या नेपाल के मुक्त इलाक़ों में निर्मित हो रहा नया राज्य – यह प्रश्न अत्यन्त वास्तविक और मूर्त्त रूप में उपस्थित था। जैसे ही "शह और मात" की सम्भावित परिस्थितियों पर ध्यान केन्द्रित होने लगा, वैसे ही यह प्रश्न विशेष महत्त्व का हो गया कि नेपाल के मध्यवर्ती वर्ग, ख़ासकर काठमाण्डू घाटी के शहरी मध्यवर्ग क्या करेंगे।

इसमें हैरानी की कोई बात नहीं कि ज़मीनी स्तर पर सैनिक और राजनीतिक संघर्ष पार्टी के भीतर भी सैद्धान्तिक और विचारधारात्मक संघर्ष पर ध्यान केन्द्रित करने में मदद कर रहा था। राजा की सत्ता को परास्त करने के बाद क्रान्ति किस प्रकार की राज्य व्यवस्था को स्थापित करेगी? बीसवीं सदी के समाजवादी राज्यों, लेनिन और स्तालिन के तहत सोवियत संघ और माओ के तहत चीन के लोक गणराज्य से किस रूप में इसकी समानता होगी और किस रूप में यह उनसे भिन्न होगी? ऐसी व्यवस्था में किस प्रकार का जनवाद लागू होगा? राजनीतिक पार्टियों और चुनाव की क्या भूमिका होगी? किस प्रकार के आर्थिक और सामाजिक रूपान्तरण किये जायेंगे, और किन साधनों के द्वारा? नेपाल में जनता की क्रान्तिकारी सरकार तथा साम्राज्यवादी और प्रतिक्रियावादी राज्यों के बीच क्या सम्बन्ध होगा? क्रान्तिकारी नेपाल विश्व क्रान्ति की क्या मदद करेगा – या क्या इससे कोई मदद मिलेगी?

फ़रवरी 2004 में, नेकपा (मा) के अंग्रेज़ी मुखपत्र 'दि वर्कर' के अंक 9 में बाबूराम भट्टराई द्वारा लिखित "एक नये प्रकार के राज्य के निर्माण का सवाल"

शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ। "नये राज्य" ने जनवाद और अधिनायकत्व के बारे में और नेपाल में संघर्ष से उनके सम्बन्ध के बारे में दलीलों की एक शृंखला प्रस्तुत की, जिसके बारे में आर.सी.पी. का कहना था कि, "...अगर उनका पालन किया गया, तो इसका नतीजा सर्वहारा अधिनायकत्व स्थापित नहीं करने या यदि स्थापित किया जाये तो उसे छोड़ देने के रूप में सामने आयेगा।" जिस समय यह लेख प्रकाशित हुआ, उस समय एक ओर भट्टराई और उनके इर्द–गिर्द कुछ लोगों, और दूसरी ओर, अध्यक्ष प्रचण्ड के नेतृत्व में केन्द्रिय पार्टी नेतृत्व के बीच आन्तरिक संघर्ष के भी संकेत मिल रहे थे। आर.सी.पी. को "नये राज्य" वाले लेख में प्रस्तुत अवस्थितियों पर गम्भीर चिन्ता हुई लेकिन साथ ही उसे यह भी उम्मीद थी कि पार्टी का आन्तरिक संघर्ष नेकपा (मा) द्वारा संघर्ष के लक्ष्यों की अपनी समझदारी की पुष्टि करने और उसे स्पष्ट करने का भी एक माध्यम बनेगा, इसलिए उसने नेकपा (मा) का आह्वान किया कि वह "अपनी पिछली समझदारी और राजनीतिक लाइन के उन पहलुओं को दरकिनार करे जो उस मुख्यत: सही दिशा के ख़िलाफ़ हैं" जो उस समय तक नेकपा (मा) की लाइन और नेतृत्व की विशेषता रही थी और जिसकी बदौलत उसने महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायी बढ़तें हासिल की थीं।

"नये राज्य" वाले लेख में बुनियादी तौर पर औपचारिक जनवाद के विस्तार (प्रतिस्पर्द्धी राजनीतिक पार्टियों वाले चुनाव सहित) को समाजवादी संक्रमण का केन्द्रबिन्दु और पूँजीवादी पुनर्स्थापना रोकने की किसी क़िस्म की "गारण्टी" के तौर पर पेश किया गया था। और यह प्रस्ताव किया गया था कि समाजवाद की मंज़िल तक पहुँचने पर स्थायी सेना को भंग कर मिलिशियाओं द्वारा उसका स्थान लिया जा सकता है, और आमतौर पर सोवियत संघ और चीन में सर्वहारा अधिनायकत्व के अनुभव के बजाय, प्रत्यक्ष चुनाव और पदाधिकारियों को वापस बुलाने सहित, पेरिस कम्यून के मॉडल को अधिक सकारात्मक मॉडल के तौर पर दर्शाया गया था।

आर.सी.पी., यू.एस.ए. के अक्टूबर 2005 के पत्र में "नये राज्य" वाले लेख व्यक्त विचारों और नयी राज्यसत्ता की कुंजी के तौर पर औपचारिक जनवाद को बढ़ावा देने को चुनौती दी गयी। बॉब अवाकिएन के हवाले से उसमें कहा गया : गहरे वर्ग–विभाजनों और सामाजिक असमानता से भरी इस दुनिया में, "जनवाद" की बात करना – बिना यह बात किये कि उस जनवाद का **वर्गीय चरित्र** क्या है और वह किस वर्ग की सेवा करता है – अर्थहीन है, और इससे भी बुरा है। जब तक समाज वर्गों में विभाजित है, तब तक "सबके लिए जनवाद" नहीं हो सकता : किसी एक या दूसरे वर्ग का शासन होगा, और वह उस प्रकार के

जनवाद को क़ायम रखेगा और बढ़ावा देगा जो उसके हितों और लक्ष्यों की सेवा करता है। सवाल है : **कौन सा वर्ग** शासन करेगा और क्या इसका शासन, और जनवाद की उसकी व्यवस्था वर्ग–विभाजनों तथा उससे जुड़े शोषण, उत्पीड़न और असमानता के सम्बन्धों को **जारी रखने** का काम करेगी, या अन्ततः उनका **उन्मूलन** करने का काम करेगी।

बेशक आर.सी.पी. के पत्र समाजवादी संक्रमण की गतिकी की गहराई में नहीं जा सके, लेकिन इनमें बॉब अवाकिएन की उन कृतियों के हवाले दिये गये थे जिनमें इन मुद्दों की काफ़ी गहराई से पड़ताल की गयी है और कम्युनिज़्म पर एक ऐसी रैडिकल नयी दृष्टि प्रस्तुत की गयी है जिसमें विश्व सर्वहारा क्रान्ति की पहली लहर की अनेक कमज़ोरियों पर ध्यान दिया गया है। लेकिन इस बात को पुरज़ोर ढंग से इंगित किया गया कि औपचारिक जनवाद (और चुनाव, प्रतिस्पर्द्धी पार्टियों आदि में इसकी अभिव्यक्ति) को समाजवादी संक्रमण का सर्वाधिक बुनियादी प्रश्न बना देना एक गम्भीर गलती थी और इससे सर्वहारा अधिनायकत्व को छोड़ देने की प्रवृत्तियों को बल मिलेगा। "नये राज्य" में प्रस्तुत दलीलें जो कि नेकपा (मा) के समग्र दृष्टिकोण की अभिलाक्षणिकता बन गयी थीं, एक ऐसे शक्तिशाली सर्वहारा राज्य की आवश्यकता को ही नकारती थीं जिसकी मदद से जनता पूरी दुनिया में साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने, शोषण और उत्पीड़न के सभी सम्बन्धों को जड़ से मिटाने और समस्त मानवता को मुक्त करने की बड़ी लड़ाई के एक भाग के तौर पर वास्तव में दुनिया को – और खुद को – रूपान्तरित कर सकती थी।

आर.सी.पी. के पहले पत्र ने यह बिल्कुल सही और महत्त्वपूर्ण नतीजा निकाला कि, "'नये राज्य' में सर्वहारा अधिनायकत्व को अधिक से अधिक एक 'आवश्यक बुराई' के तौर पर प्रस्तुत किया गया है।" और अपरिहार्यतः यह प्रश्न उठा कि इस प्रकार के दृष्टिकोण के होते हुए, क्या नेकपा (मा) के लिए तमाम तक़लीफ़देह कुर्बानियों से भरा वैसा कठिन और दुर्द्धर्ष संघर्ष कर पाना सम्भव होगा जो पुराने राज्य का ध्वंस करने और शोषक वर्गों के हज़ारों साल पुराने वर्चस्व को मिटाने तथा सर्वहारा शासन क़ायम करने के लिए ज़रूरी है? सितम्बर 2008 में प्रकाशित आर.सी.पी., यू.एस.ए. के घोषणापत्र, 'कम्युनिज़्म : एक नयी अवस्था का आरम्भ' में यह विश्लेषण किया गया है कि हालाँकि अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में दो विरोधी प्रवृत्तियाँ – "या तो पिछले तमाम अनुभव और उससे जुड़े सिद्धान्त व पद्धति से आँख मूँदकर चिपके रहना या फिर (अगर शब्दों में नहीं तो साररूप में) उस सबको पूरी तरह ख़ारिज कर देना" – उभरी हैं, लेकिन इसी के साथ, "इन 'एकदम विपरीत' ग़लत प्रवृत्तियों में एक चीज़ साझा है कि

वे किसी ने किसी प्रकार के अतीत के मॉडलों (भले ही विशिष्ट मॉडल अलग अलग हों) से या तो जकड़ी हुई हैं या उन पर वापस जाती हैं। या तो कम्युनिस्ट क्रान्ति की पहली मंज़िल के पिछले अनुभव से – या, बल्कि उसकी अधूरी, एकांगी और अन्ततः ग़लत समझदारी से – कठमुल्लावादी ढंग से चिपकी हुई हैं – या फिर **बुर्जुआ** क्रान्ति के पूरे पिछले युग और उसके सिद्धान्तों पर लौट जाती हैं : उस चीज़ पर लौट जाती हैं जो कि सारतः 18वीं सदी के (बुर्जुआ) जनवाद के सिद्धान्त हैं, ऐसा वे '21वीं सदी के कम्युनिज़्म' के भेस में या उसके नाम पर करती हैं, और इस प्रकार इस '21वीं सदी के कम्युनिज़्म' की बराबरी एक ऐसे जनवाद से करती हैं जो तथाकथित तौर पर 'शुद्ध' या 'वर्ग-विहीन' है – एक ऐसा जनवाद जो वास्तव में, जब तक वर्ग मौजूद रहेंगे, केवल **बुर्जुआ** जनवाद, और बुर्जुआ **तानाशाही** ही हो सकता है।"[2]

सोवियत संघ में (1950 के दशक के मध्य में) और चीन में (20 वर्ष बाद) क्रान्तियों के विपर्यय को यदि सही तरीके से समझा जाये तो वे किसी न किसी रूप में अतीत की ओर इस क़िस्म की वापसी को सही ठहराने के लिए कोई तर्क प्रदान नहीं करते। जैसा कि आर.सी.पी. के अक्टूबर 2005 के पत्र में कहा गया :

निश्चित तौर पर यह सच है कि सर्वहारा राज्य, एक हिरावल सर्वहारा पार्टी, स्थायी सेना आदि सभी अपने विपरीत में – जनता का उत्पीड़न करने वाले बुर्जुआ वर्ग के राज्य में – तब्दील हो सकते हैं। खुद क्रान्ति के बारे में भी ऐसा ही कहा जा सकता है – ऐसी कोई गारण्टी नहीं हो सकती कि वह निरन्तर कम्युनिज़्म की दिशा में बढ़ती ही रहेगी – क्रान्तियाँ बीच में छोड़ी जा सकती हैं या अपने विपरीत में बदली जा सकती हैं और दुर्भाग्यवश बहुतों के साथ ऐसा हुआ भी है। लेकिन क्रान्ति न करने की यह कोई दलील नहीं हो सकती। कोई राज्य कम्युनिज़्म के अन्तिम लक्ष्य, और अन्ततः स्वयं अपने विलोपीकरण की ओर बढ़ता रहता है या नहीं, यह इस बार पर निर्भर करता है कि क्या वह राज्य उन तमाम वस्तुगत भौतिक और विचारधारात्मक स्थितियों को बदले के लिए लड़ रहा है या नहीं जिनके कारण राज्य की मौजूदगी अब भी ज़रूरी है, और कैसे लड़ रहा है। इससे निकलने का कोई आसान रास्ता नहीं है। औपचारिक जनवाद की संस्थाओं और व्यवहार पर भरोसा करने से समस्या हल नहीं होगी – इससे वे अन्तरविरोध दूर नहीं होंगे जो सर्वहारा के अधिनायकत्व को बिल्कुल ज़रूरी बना देते हैं, इससे केवल उन शक्तियों के हाथ मज़बूत होंगे जो सर्वहारा के अधिनायकत्व को उखाड़ फेंकने और खत्म करने की कोशिश कर रही हैं, और जो अपने इन प्रयासों में समाजवादी समाज में बची हुई असमानताओं से और उन

प्रतिक्रियावादी और साम्राज्यवादी राज्यों से ताक़त पा सकते हैं जो कुछ समय तक क्रान्तिकारी संघर्षों से गठित हो रहे समाजवादी राज्यों की "घेरेबन्दी" करने की स्थिति में हो सकते हैं। राजनीतिक शक्ति और, साथ ही सैन्य शक्ति पर सर्वहारा, और उसके हिरावल नेतृत्व के एकाधिकार का किसी भी रूप में उन्मूलन या कमज़ोर किया जाना – जिसमें ऐसे चुनाव शामिल हैं जिनमें हिरावल पार्टी और उसकी भूमिका पर आम चुनावों में निर्णय किया जाता है – ऐसा करने से, उन सभी कारणों के चलते जिनकी यहाँ हमने चर्चा की है, **सर्वहारा की सत्ता छिन** जायेगी और **प्रतिक्रियावादी** राज्यसत्ता और इससे जुड़ी तमाम बातों की बहाली हो जायेगी।

लाइनों के संघर्ष का समाधान और दो का एक में "फ़्यूज़न"

दुर्भाग्यवश, उस समय नेकपा (मा) के भीतर लाइनों के संघर्ष का अक्टूबर 2005 में हुई केन्द्रीय कमेटी (सी.सी.) की बैठक में बहुत बुरे आधार पर समाधान किया गया। इस समय आर.सी.पी. का पत्र अभी पहुँच ही रहा था। भट्टराई के "नये राज्य" वाले लेख की दलीलों को ख़ारिज करने के बजाय, केन्द्रीय कमेटी ने उनके मुख्य तर्कों को स्वीकार कर लिया। नेकपा (मा) की सी.सी. की एक विज्ञप्ति में पार्टी के भीतर लाइनों के मतभेदों को "ग़लतफ़हमी" कह कर ख़ारिज कर दिया गया। पार्टी ने इस प्रावधान के साथ "संक्रमणकालीन गणराज्य" की माँग करने की योजना को स्वीकार किया कि यह केवल एक "टैक्टिक" है जबकि इस बात पर ज़ोर दिया गया कि पार्टी नव-जनवादी क्रान्ति, समाजवाद और कम्युनिज़्म के अपने दीर्घकालिक लक्ष्यों पर क़ायम है। इस आधार पर भट्टराई को पार्टी के नेतृत्व में फिर से शामिल कर लिया गया। दो अन्तरविरोधी विचारों को एक करने की इस पद्धति को एक महान उपलब्धि बताया गया और पूरे अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के लिए एक मॉडल के तौर पर पेश किया गया।

संशोधनवाद का यह विशिष्ट रूप – **सारसंग्रहवाद,** या असमाधेय विपरीतों के समाधान का प्रयास, (शब्दों में) मार्क्सवाद और साररूप में संशोधनवाद का संयोजन – नेकपा (मा) के नेताओं की सोच में लम्बे समय से एक समस्या रहा है लेकिन 2005 के "अन्त:पार्टी संघर्ष" के उपरान्त यह एक सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित हो गया और उसकी हिफ़ाज़त की जाने लगी। और यही वह राजनीतिक लाइन तथा दिशा थी जिसने नेपाल में वर्ग संघर्ष के अगले उथल-पुथल भरे दौर से होकर नेकपा (मा) का मार्गदर्शन किया।

नेकपा (मा) ने आर.सी.पी., यू.एस.ए. को जवाब दिया – व्यवहार में और सिद्धान्त में

नेकपा (मा) के नेतृत्व ने आर.सी.पी. के अक्टूबर 2005 के पत्र का जुलाई 2006 तक उत्तर नहीं दिया; लेकिन उठाये गये तर्कों पर सिद्धान्त के दायरे में जवाब आने के पहले ही नेकपा (मा) की लाइन के व्यावहारिक नतीजे एक के बाद एक आने शुरू हो गये।

"नये राज्य" से बुनियादी अवस्थितियों को अपनाने वाली नेकपा (मा) की केन्द्रीय कमेटी की 2005 की बैठक में प्रस्तुत किये गये मुख्य सिद्धान्तों में से एक यह अवधारणा थी कि नेपाल में तात्कालिक लक्ष्य नव–जनवाद – यानी माओ त्से–तुङ द्वारा प्रवर्तित उत्पीड़ित राष्ट्रों के लिए उपयुक्त सर्वहारा अधिनायकत्व का रूप – नहीं, बल्कि "संक्रमणकालीन गणराज्य" है। नेकपा (मा) के जुलाई 2006 के पत्र में इसके पीछे की सोच की व्याख्या की गयी :

"हमारी पार्टी जनवादी गणराज्य को न तो बुर्जुआ संसदीय गणराज्य के रूप में देखती है और न ही सीधे नव–जनवादी गणराज्य के रूप में। यह गणराज्य, देश में वर्ग, राष्ट्रीयता, क्षेत्र और लिंगभेद से जुड़ी समस्याओं का समाधान करने के लिए राज्यसत्ता के व्यापक पुनर्गठन के साथ संक्रमणकालीन बहुदलीय गणराज्य की भूमिका निभायेगा। निश्चित तौर पर, प्रतिक्रियावादी वर्ग और उनकी पार्टियाँ इस गणराज्य को एक बुर्जुआ संसदीय गणराज्य में तब्दील करने की कोशिश करेंगी जबकि हमारी सर्वहारा वर्ग की पार्टी इसे एक नव–जनवादी गणराज्य में तब्दील करने की कोशिश करेगी।"

जैसा कि आर.सी.पी. के पत्र अधिक गहराई में बताते हैं, जिस गहराई में जाना यहाँ सम्भव नहीं है, "संक्रमणकाली गणराज्य" की यह अवधारणा और इसमें अन्तर्निहित यह धारणा कि यह किसी प्रकार का तटस्थ यन्त्र है जिसे बुर्जुआ राज्य या सर्वहारा राज्य में तब्दील किया जा सकता है, मार्क्सवाद की एक बुनियादी सच्चाई को नकारती है – एक ऐसी सच्चाई जोकि कोई जड़ीभूत कठमुल्ला सूत्र नहीं है, बल्कि शताब्दियों के दौरान वर्ग–समाज में व्यापक, गहरे और अनेकानेक बार तीखे अनुभवों के वैज्ञानिक समाहार की ज़रिये बार–बार स्थापित और सत्यापित हुई है : ऐसा कोई भी राज्य नहीं है जो कि अन्ततः किसी एक या दूसरे वर्ग का औज़ार न होता हो। सेना और संस्थाबद्ध सत्ता के अन्य अंग इस "संक्रमणकालीन गणराज्य" में किस वर्ग की सेवा करेंगे? क्या वे संघर्षरत् जनता के उत्पीड़न की बुनियाद ख़त्म करने और विश्व क्रान्ति की ओर आगे बढ़ने में उसकी मदद करेंगे – या वे प्रतिक्रियावादी वर्गों के हाथों में होंगे, और

उनके हितों को आगे बढ़ायेंगे? आर.सी.पी. के पत्र राज्य की वर्गीय प्रकृति पर ज़ोर देते हैं और कई अलग–अलग कोणों से बताते हैं कि आज की दुनिया में हर राज्य का एक वर्गीय चरित्र होगा और वह सुनिश्चित वर्गीय हितों को लागू करेगा – सर्वहारा के, या फिर किसी प्रतिक्रियावादी वर्ग के (या प्रतिक्रियावादी वर्गों के किसी गठजोड़ के)। इस रोशनी में, ये पत्र नेकपा (मा) की इस दलील की विवेचना करके उसे ख़ारिज करते हैं कि राजशाही की मौजूदगी नेपाल को एक अपवादस्वरूप दर्जा देती है, जो राजशाही के ख़िलाफ़ महज़ एक अस्थायी संयुक्त मोर्चे को ही जायज़ नहीं ठहराता बल्कि राजशाही विरोधी शक्तियों को "संक्रमणकालीन गणराज्य" और "राज्य के पुनर्गठन" में एकजुट करने को भी जायज़ ठहराता है, वो भी पूरी एक अवस्था के दौरान, जो नव–जनवाद से अलग है और अभी नव–जनवाद तक नहीं पहुँची है।

जब नेकपा (मा) ने "नये राज्य" की अवस्थिति और एक "संक्रमणकालीन गणराज्य" के लक्ष्य को स्वीकार करने का निर्णय ले लिया, उसके बाद इसमें कोई हैरानी नहीं थी कि उसकी यह दिशा और प्रतिबद्धता नेपाल की राजनीति में एक प्रमुख कारक बन गयी। राजा ज्ञानेन्द्र द्वारा 1 फ़रवरी, 2005 को संसद भंग किये जाने के बाद सत्ता से बेदख़ल की गयी प्रतिक्रियावादी राजनीतिक पार्टियों के साथ एक के बाद एक समझौते किये गये। आर.सी.पी., यू.एस.ए. ने यह साफ़ कर दिया है कि उसकी दिशा – और उसकी आलोचना का मुख्य पहलू – एक ऐसे बचकाने दृष्टिकोण से सम्बन्धित नहीं है जो विशिष्ट लक्ष्य हासिल करने के लिए प्रतिक्रियावादी राजनीतिक पार्टियों के साथ भी समझौता करने से इनकार करेगा, उदाहरण के लिए, राजतन्त्र का विरोध करने के लिए किये गये समझौते। लेकिन नेकपा (मा) के मामले में यह देखा जा सकता है कि ये समझौते "संक्रमणकालीन गणराज्य" और तत्सम्बन्धी प्रश्नों से जुड़े उन सिद्धान्तों पर आधारित थे और उन्हें प्रतिबिम्बित करते थे जिन्हें उसके नेता अपना रहे थे। दूसरे शब्दों में, प्रतिक्रियावादी पार्टियों के साथ किये गये समझौते **कम्युनिस्ट लक्ष्यों और सिद्धान्तों के परित्याग पर आधारित थे,** जैसा कि ख़ासकर संघर्ष के लक्ष्य के तौर पर (बुर्जुआ) "जनवादी गणराज्य" को स्वीकार करने में प्रकट हुआ, जो एक बार फिर, नव–जनवाद से भिन्न एक पूरी अवस्था से सम्बन्धित होगा।

इन राजनीतिक दलीलों – और ग्रामीण क्षेत्र में केन्द्रित जनयुद्ध की निरन्तर प्रगति के साथ राजा द्वारा जनवादी अधिकारों के हनन के विकसित होते हुए व्यापक विरोध की पृष्ठभूमि में, अप्रैल 2006 में नेपाल के शहरी केन्द्रों में राजशाही के विरुद्ध एक विशाल जनान्दोलन उठ खड़ा हुआ। इस आन्दोलन में न

केवल सर्वहारा और शहरी ग़रीब शामिल थे बल्कि आमतौर पर शहरों में विद्यार्थियों, बुद्धिजीवियों, दुकानदारों और मध्यवर्गीय तत्वों के बड़े हिस्से भी शामिल थे। मुख्य संसदीय राजनीतिक पार्टियों – जैसेकि संशोधनवादी नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी–लेनिनवादी) जोकि कम्युनिस्ट होने की बातें करते हुए भी जनयुद्ध की घोर विरोधी रही थी, और नेपाली कांग्रेस पार्टी, जिसके भारतीय शासक वर्ग से गहरे रिश्ते हैं और जो नेपाल के दलाल पूँजीपति वर्ग (स्थानीय पूँजीपति वर्ग का एक हिस्सा जो साम्राज्यवाद और विदेशी शक्तियों से बँधा है और उनकी सेवा करता है) – ने भी इस आन्दोलन का समर्थन किया और इसका नेतृत्व करने की कोशिश की। शक्तिशाली जनयुद्ध के साथ–साथ, शहरी इलाकों में, और ख़ासकर राजधानी काठमाण्डू में विशाल जनसमुदाय के उभार को देखते हुए, नेपाल के शासक वर्गों और अमेरिका, भारत तथा अन्य स्थानों पर उनके विदेशी समर्थकों ने तय किया कि अब व्यवस्था की बहाली के लिए निरंकुश राजतन्त्र पर भरोसा करने की नीति को छोड़ना ज़रूरी हो गया है। युद्धविराम की घोषणा हो गयी और संसदीय पार्टियों तथा नेकपा (मा) के बीच भी वार्ताएँ शुरू हुईं जिनके बाद उसी वर्ष नवम्बर में हुए व्यापक शान्ति समझौते के तहत नेकपा की भागीदारी के साथ एक अन्तरिम सरकार की स्थापना हुई, पी. एल.ए. को बैरकों में सीमित कर दिया गया, और एक संविधान सभा के चुनाव के लिए नियम तय किये गये जो देश के लिए एक नया संविधान लिखेगी।

स्पष्ट है कि शहरी जनान्दोलन के उभार और निरंकुश राजशाही के ख़ात्मे से नेपाल में क्रान्तिकारी संघर्ष के लिए महत्त्वपूर्ण नयी परिस्थितियाँ निर्मित हुईं, और बेशक कम्युनिस्टों के लिए इन नयी परिस्थितियों को ध्यान में रखना, अपने रणकौशलों और नीतियों में आवश्यक बदला करना और उन ढुलमुल शहरी तबक़ों को अपनी ओर करने का प्रयास करना ज़रूरी था जो राजा के ख़िलाफ़ उठ खड़े हुए थे लेकिन ऐसे विभ्रमों से ग्रस्त थे कि "जनवाद की वापसी" से देश की समस्याएँ हल हो जायेंगी। निरंकुश राजशाही के ख़ात्मे के इसी सन्दर्भ में नेकपा (मा) के नेतृत्व ने अन्ततः एक जुलाई, 2006 की तिथि वाले पत्र में आर. सी.पी., यू.एस.ए. को अपना जवाब भेजा। नेकपा (मा) के जवाब में आर.सी.पी. की दलीलों को महज़ "मार्क्सवाद के ककहरे" का दोहराव कह कर खीझते हुए ख़ारिज कर दिया गया था – यानी यह एक व्यापक और अक्सर कड़वे अनुभव के वैज्ञानिक विश्लेषण और संस्करण के जरिये स्थापित हुई बुनियादी सच्चाई है, और इस सच की अनदेखी करने के त्रासद परिणाम हुए हैं। इस सम्बन्ध में, खुद ही यह प्रश्न खड़ा हो जाता है : अगर यह सच भी होता – जोकि नहीं था – कि आर.सी.पी. द्वारा नेकपा (मा) की आलोचना महज़ मार्क्सवाद के ककहरे का

दोहराव था, जिसमें राज्य की बुनियादी प्रकृति के बारे में बातें भी शामिल थीं, तो भी इससे ऐसे बुनियादी सिद्धान्तों ("ककहरे") को **छोड़ देने** को कैसे जायज़ ठहराया जा सकता है, जैसाकि नेकपा (मा) ने किया है?

अपने जवाब में, नेकपा (मा) यह कहकर इस स्थिति से निकलने की कोशिश करती है कि वह आर.सी.पी. से इस बात पर सहमत है कि "रणनीतिक तौर पर" वर्ग सम्बन्ध ही राज्य की प्रकृति का निर्णय करते हैं, लेकिन फिर वह आगे तर्क देती है कि संक्रमणकालीन गणराज्य की उसकी माँग महज़ एक "रणकौशलात्मक नारा" है। लेकिन यह तर्क एक बार फिर अपना ही पर्दाफ़ाश कर देता है जिससे समस्या और जटिल हो जाती है। अचानक ही, क्रान्तिकारी संघर्ष का लक्ष्य पुराने प्रतिक्रियावादी दलाल-सामन्ती साम्राज्यवाद-समर्थित राज्य का ध्वंस करके सर्वहारा के नेतृत्व में नवजनवादी शासन क़ायम करना नहीं रह जाता, बल्कि किसी ऐसे क़िस्म के जनवादी गणराज्य को स्वीकार करना हो जाता है जिसकी तथाकथित तौर पर कोई स्पष्ट वर्ग प्रकृति नहीं है, एक ऐसा राज्य जिसका बुर्जुआ और सर्वहारा दोनों प्रयोग करना चाहेंगे। लेकिन, क्लासिक सारसंग्रहवादी ढंग से, यह तर्क दिया जाता है कि इससे राज्य की मार्क्सवादी समझदारी का सार संशोधित नहीं होता क्योंकि यह तो महज़ एक "रणकौशल" है! 2005 के बाद की घटनाएँ साफ़ तौर पर दर्शाती हैं कि इस नारे ("संक्रमणकालीन गणराज्य") में परिलक्षित राज्य की सारसंग्रहवादी, भ्रमित समझदारी महज़ "रणकौशलों" से आगे जाती है – और कुछ वर्ष बाद 'रेड स्टार' (नेकपा (मा) के विचारों को अंग्रेज़ी में प्रस्तुत करने वाला ऑनलाइन अख़बार) में ऐसे लेख देखना कोई हैरानी की बात नहीं जो इस बात पर ज़ोर देते हैं कि नेपाल का वर्तमान राज्य "सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग दोनों का संयुक्त अधिनायकत्व" है। ('रेड स्टार' अंक 15, "फ़ॉल ऑफ़ कोइराला डायनेस्टी")* इसे एक महान सैद्धान्तिक नवोन्मेष घोषित किया जाता है। लेकिन वास्तव में एक ऐसे राज्य के सम्बन्ध में कुछ भी महान या नवोन्मेषी नहीं हो सकता, जो कि पुराने समाज पर आधारित है, जिसमें उच्च पदों पर नये चेहरे आ गये हैं जो दावा करते हैं कि वे "जनता" के हितों को पूरा करने के लिए उस राज्य का इस्तेमाल कर सकते हैं। वास्तव में, समाज में वर्ग विभाजनों से परे राज्य की यह अवधारणा वही विभ्रम है जिसका इस्तेमाल शोषक वर्ग अपने वर्ग प्रभुत्व को छिपाने के लिए हमेशा करते हैं। कम्युनिस्ट आन्दोलन में भी, "समूची जनता के राज्य" के पक्ष में सर्वहारा के अधिनायकत्व को छोड़ देना संशोधनवाद की निशानी रही है। अतीत

* देखें, लक्ष्मण पन्त का लेख, 'कोईराला वंश का पतन,' पृष्ठ 63.

में इस क़िस्म के संशोधनवादी प्रयासों की ही तरह, नेपाल में अब ऐसी धारणाओं, और इसके साथ चलने वाले रणकौशलों को लागू करने के प्रयास क्रान्तिकारी लक्ष्य को और अधिक धक्के पहुँचा सकते हैं, क्रान्तिकारी शक्तियों और जनता को विचारधारात्मक और अन्य प्रकार से निश्शस्त्र कर सकते हैं, और उन्हें तबाही की ओर ले जा सकते हैं। बुनियादी सच्चाई यह है, जिसे कोई भी ग़लत ढंग से सोचा गया "रणकौशल" न तो बदल सकता है और न दरकिनार कर सकता है, कि सर्वहारा का शासन केवल पुराने, प्रतिक्रियावादी राज्य को ध्वस्त करके और तोड़कर ही क़ायम किया जा सकता है – न कि उसे "पूर्ण बनाकर" या "पुनर्गठित करके"; और जनता के हितों को केवल वर्ग समाज की जड़ों को खोदकर ही पूरा किया जा सकता है, जबकि साम्राज्यवादियों और अन्य प्रतिक्रियावादियों के हित केवल शोषण और उत्पीड़न की इन जड़ों को मज़बूत करके ही टिके रह सकते हैं और पूरे किये जा सकते हैं।

मार्च 2008 में आर.सी.पी., यू.एस.ए. के दूसरे प्रमुख पत्र ने नेकपा (मा) के तर्कों का जवाब दिया और आर.सी.पी. के पिछले पत्र (अक्टूबर 2005) की अनेक विषयवस्तुओं को नेपाल में विकसित होती हुई राजनीतिक स्थिति के सन्दर्भ में और विकसित किया। नेकपा (मा) और अन्य राजनीतिक पार्टियों के बीच हुए समझौतों को पूरा करने के लिए विभिन्न दाँवपेंचों और प्रयासों के ज़रिये, आख़िरकार नेपाल में संविधान सभा के चुनाव अप्रैल में होना तय हुआ। "संक्रमणकालीन गणराज्य" का सवाल केवल बुनियादी उसूल और सिद्धान्त के सवाल, जैसाकि वह 2005 में था, से एक तात्कालिक व्यावहारिक प्रश्न बनने तक पहुँच गया था क्योंकि पूरा देश अप्रैल 2008 के संविधान सभा के चुनावों की तैयारी में लगा था।

मार्च 2008 का आर.सी.पी. का पत्र "राज्य का पुनर्गठन" करने के नेकपा (मा) के आह्वान की विवेचना करता है और उसका तर्क है कि इसका मतलब (मार्क्स के सूत्रीकरण के अनुसार) प्रतिक्रियावादी राज्य का **ध्वंस** करने के बजाय "मौजूदा राज्य मशीनरी को पूर्ण बनाने" का आह्वान होता है – जो कि वास्तव में प्रतिक्रियावादी वर्गों की सेवा करती है। इस महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर आर.सी.पी. के तर्क में अनेक ऐतिहासिक उदाहरण दिये गये – यूरोप में 18वीं और 19वीं शताब्दियों में बुर्जुआ जनवादी क्रान्तियाँ, रूस, ईरान, स्पेन और अन्य देशों में 20वीं सदी की क्रान्तियाँ (या सत्ता परिवर्तन) – जो यह दिखाते हैं कि बार-बार क्रान्तिकारी संघर्ष उत्पीड़ितों को मुक्त करने में इसलिए नाकाम रह गये क्योंकि वे राज्य मशीनरी को पूरी तरह नष्ट करके पुराने समाज में शोषित और उत्पीड़ित जनों के शासन की स्थापना की ज़मीन तैयार करने के बजाय राज्य मशीनरी से पुराने

पड़ गये ऐसे पक्षों, जैसे राजतंत्र, को हटा देने मात्र पर रुक गये जो कि ऐतिहासिक विकास से – और/या उस वक़्त के प्रतिक्रियावादी वर्गों की ज़रूरतों से अब मेल नहीं खाते थे।

आर.सी.पी. का पत्र आगे इस बात की विवेचना करता है कि क्यों नेपाल जैसे देशों में, जहाँ सामन्तवाद-विरोधी संघर्ष चलाना ज़रूरी है (और जहाँ, ख़ासकर नेपाल में, राजतंत्र के खिलाफ शक्तियों की व्यापक एकजुटता बनाना ज़रूरी है), "दो मंज़िल" की क्रान्ति आवश्यक होगी लेकिन क्यों पहली मंज़िल – जो कि सामन्तवाद को उखाड़ फेंकने (और नेपाल के मामले में, राजतंत्र को ख़त्म करने) जैसे बुर्जुआ-जनवादी कार्यभारों को पूरा करने से सम्बन्धित है – बुर्जुआ शक्तियों के नेतृत्व में नहीं होनी चाहिए, और इसके परिणामस्वरूप (किसी भी रूप में और किसी भी नाम से) बुर्जुआ-पूँजीवादी गणराज्य की स्थापना नहीं होनी चाहिए, बल्कि इसका नेतृत्व सर्वहारा के बुनियादी हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले कम्युनिस्टों को करना चाहिए, और इसके परिणामस्वरूप नवजनवादी राज्य की स्थापना होनी चाहिए, जिसे सचेतन तौर पर विश्व सर्वहारा क्रान्ति के एक अंग के तौर पर निर्मित होना चाहिए। नेपाल में विश्व पूँजीवादी व्यवस्था की शह पर विकसित हुआ पूँजीवाद शोषण और उत्पीड़न के सामन्ती रूपों से घुला-मिला है, और वहाँ पूँजीवादी क़िस्म का जनवाद भी "सामन्तवाद की दुर्गन्ध" के बिना नहीं हो सकता।

इस तरह, नव जनवादी क्रान्ति के बिना किन्हीं भी आधे-अधूरे उपायों का मतलब होगा कि देश और जन साधारण विदेशी प्रभुत्व और साम्राज्यवादी सम्बन्धों के अन्तरराष्ट्रीय तानेबाने के तहत जारी अधीनता से न केवल मुक्त नहीं हो सकेंगे, जिसके तमाम भीषण परिणाम होते रहेंगे, बल्कि सामन्तवाद के भी बहुतेरे उल्लेखनीय पहलू बने रहेंगे – चाहे कोई कुछ भी कहे या उसके इरादे कुछ भी हों। इसके साथ ही, प्रतिक्रियावादी राज्य मशीनरी को पूर्ण बनाने की दिशा में जो भी प्रगति होगी उससे बुर्जुआ गणराज्य को और मज़बूती से स्थापित करने में ही मदद मिलेगी जिससे लेनिन ने पूँजीवाद के विकास के लिए "सबसे उपयुक्त खोल" बताया है।

यह भी एक बुनियादी उसूल है – हाँ, मार्क्सवाद का "ककहरा" है, और एक ऐसा सबक़ है जिसकी अनदेखी करना बार-बार घातक साबित हुआ है – कि प्रतिक्रियावादी वर्गों की जकड़ से मुक्त होना, और शोषण-उत्पीड़न को समाप्त करना किसी क्रमिक विकासवादी दृष्टिकोण से सम्भव नहीं हो सकता, बल्कि केवल एक निर्णायक विच्छेद : राज्यसत्ता के पुराने अंगों को उखाड़ फेंककर और तोड़कर, और समग्र विश्व क्रान्ति के एक अंग के तौर पर, समाज

के हर क्षेत्र का आमूल रूपान्तरण करने वाले राजनीति शासन के आमूलगामी नये अंगों की स्थापना के ज़रिये ही सम्भव हो सकता है।

जैसाकि आर.सी.पी. का मार्च 2008 का पत्र कहता है :

नेकपा (मा) के साथ अपनी बहस में हमारे द्वारा उठाये गये केन्द्रीय राजनीतिक प्रश्नों में से एक यह था कि क्या संघर्ष की वर्तमान अवस्था नवजनवादी गणराज्य, यानी कि नेपाल की स्थितियों में उपयुक्त सर्वहारा अधिनायकत्व के रूप, की स्थापना के लिए है, या क्रान्ति को एक बुर्जुआ जनवादी गणराज्य के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया से होकर गुज़रना होगा। यह प्रश्न जिस पर हम सैद्धान्तिक बहस कर रहे थे, पिछले दो वर्षों के दौरान सजीव हो उठा है। दस वर्ष लम्बे जनयुद्ध के दौरान **दो राज्य** उभरे थे : साम्राज्यवाद से गठबन्धन किये हुए राजशाही के नेतृत्व में पुराना प्रतिक्रियावादी दलाल–नौकरशाह पूँजीवादी सामन्ती राज्य, और जनमुक्ति सेना (पीएलए) की ताक़त के दम पर ग्रामीण क्षेत्र में उभरे नवजनवादी राज्य की भ्रूणावस्था। नेपाल के सामने उपस्थित वस्तुगत सवाल यह है कि इन राज्यों में से **कौन–सा** राज्य विजयी होगा और राष्ट्रव्यापी स्तर पर सुदृढ़ होगा और उनमें से कौन–सा राज्य पराजित होगा। एक भारी त्रासदी यह है कि नेकपा (मा) के कामरेडों की राजनीतिक दिशा और विभ्रमग्रस्त सोच की बदौलत ग्रामीण क्षेत्र में उभरे क्रान्तिकारी राज्य का बहुत हद तक **अवैधीकरण** हो गया है और विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था से जुड़े प्रतिक्रियावादी वर्गों की तानाशाही को **फिर से वैधता** मिल गयी है।

बेशक, जनयुद्ध मुक्त क्षेत्रों में स्थापित लाल राजनीतिक सत्ता के आधार पर वहाँ सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों को रूपान्तरित करने में वास्तविक बढ़त हासिल करने में कामयाब हो चुका था। इन बदलावों ने व्यवहार में यह दिखाया था कि किस तरह नवजनवादी क्रान्ति के ज़रिए पुरानी राजसत्ता को हटाकर ही जाति व्यवस्था समाप्त करने, स्त्रियों और अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं की असमानता और उत्पीड़न को ख़त्म करने की दिशा में क़दम बढ़ाने, "ज़मीन जोतने वाले को" वितरित करने और साम्राज्यवादी प्रभुत्व से वास्तविक राष्ट्रीय आज़ादी हासिल करने जैसे बुनियादी बुर्जुआ जनवादी कार्यभारों को पूरा करना सम्भव है।

यह अन्तिम बिन्दु बहुत महत्त्वपूर्ण है : जन सेना और सर्वहारा के नेतृत्व में नवजनवादी राज्य के बग़ैर, साम्राज्यवादी प्रभुत्व से मुक्त हो पाना असम्भव होगा। और, जैसा कि 8 नवम्बर 2008 का आर.सी.पी. का पत्र कहता है :

उत्पीड़ित देशों में जनता की सामाजिक मुक्ति और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के बीच की अविभाज्य कड़ी को हम बार–बार देख चुके हैं... चूँकि

साम्राज्यवाद एक ऐसी विश्व व्यवस्था है जो सामाजिक–आर्थिक संरचना के सभी पहलुओं में अधिकाधिक गहरी पैठ करता जा रहा है, ठीक इसीलिए साम्राज्यवाद से निर्णायक विच्छेद के बिना कोई सार्थक सामाजिक रूपान्तरण होना असम्भव है। ...

दक्षिण एशिया का स्विट्ज़रलैण्ड, या क्रान्ति का आधार क्षेत्र?

आर.सी.पी. का नवम्बर 2008 का पत्र नेकपा (मा) द्वारा अपनाये जा रहे रास्ते के विरुद्ध तीखे तर्क देता है, जो कि नेपाल को "दक्षिण एशिया का स्विट्रज़रलैण्ड" बनाने के उसके वायदे में संकेन्द्रित है – यह वायदा उसी साल पार्टी के चुनाव अभियान में एक प्रमुख नारा था। अव्वलन तो, यह वायदा इस भ्रम पर टिका हुआ है कि विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था के साथ और अधिक एकीकृत होने से नेपाल की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है (इस वायदे का एक मुख्य आधार नेपाल को चीन और भारत के बीच "व्यापार का केन्द्र" बनाना है), बजाय इसके कि नेपाल को उस व्यवस्था से अलग किया जाये जिसमें वह पीढ़ी दर पीढ़ी साम्राज्यवादियों और अन्य शोषकों के हितों और फ़रमानों के अनुसार अपनी अर्थव्यवस्था और पूरे समाज पर प्रभुत्व और विकृतीकरण को झेलता रहा है। और यह एक ऐसा भ्रम है जो वर्तमान वैश्विक आर्थिक संकट के बीच तेज़ी से टूट रहा है, और नेपाल बिजली तथा अनाज जैसी बुनियादी चीज़ों के दामों में भारी बढ़ोत्तरी का सामना कर रहा है। इससे भी बुनियादी बात यह है कि इस दृष्टि को कम्युनिज़्म से क्या लेना–देना है? स्विट्रज़रलैण्ड एक छोटा–सा साम्राज्यवादी देश है जो साम्राज्यवादी खाद्यश्रृंखला के शीर्ष के निकट स्थित है, और इस परजीवी व्यवस्था की विश्वव्यापी लूट के फल भोगता है। क्या कम्युनिस्टों को इसी दृष्टि से प्रेरणा लेनी चाहिए – या कि उन्हें उस दृष्टि से प्रेरणा लेनी चाहिए जिस पर आर.सी.पी., यू.एस.ए. के चेयरमैन बॉब अवाकिएन ने ज़ोर दिया है : यानी "मानवता के मुक्तिदाता" बनने में?

एक बार फिर, नेपाल में जनयुद्ध के दौरान आधार क्षेत्रों ने स्पष्ट रूप से दर्शाया था कि जब जनता के हाथों में सत्ता होती है तो वह कैसे क्रान्तिकारी रूपान्तरण कर सकती है। कल्पना करें कि नेपाल जैसे एक सापेक्षिक रूप से छोटे और ग़रीब देश में भी क्रान्तिकारी राज्य की स्थापना इस अति प्रचलित दृष्टिकोण को ग़लत सिद्ध करने में कितना बड़ा योगदान कर सकती थी कि आज पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की सेवा करने वाले बुर्जुआ जनवाद का कोई विकल्प नहीं है। नेकपा (मा) ने पूरी तरह खुद को चुनाव अभियान में झोंक दिया और, आर.सी.

पी. सहित, लगभग सभी प्रेक्षकों की उम्मीदों के विपरीत, चुनाव में सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी। अपनी जीत से फूले न समाते हुए नेकपा (मा) ने कई अन्य मुख्य संसदीय पार्टियों के साथ मिलकर अपने नेतृत्व में गठबन्धन सरकार बनायी।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, यह मुक्ति की दिशा में क़दम नहीं बल्कि उससे दूर उठाया गया क़दम था, क्योंकि ये चुनाव वास्तव में पुराने प्रतिक्रियावादी राज्य को नयी वैधता प्रदान करने का एक मज़बूत ज़रिया साबित हुए, जिसे संविधान सभा की पूरी प्रक्रिया द्वारा ध्वस्त या पराजित नहीं किया गया बल्कि **पूर्ण बनाया** गया। अधिक सामान्य तौर पर, नेकपा (मा) की यह घोषणा एक ख़तरनाक विभ्रम है कि वह राजतंत्रात्मक विशेषताओं से रहित नेपाल के वर्तमान राज्य से मुक्ति की दिशा में बढ़ने के लिए आधार का काम ले रही है। जैसा कि बार-बार ज़ोर दिया गया है – और यह जितने घातक विभ्रमों का स्रोत है उसे देखते हुए इस पर जितना भी ज़ोर दिया जाये कम है – प्रतिक्रियावादी राज्य कोई वर्गविहीन उपकरण नहीं है जो कि सर्वहारा या बुर्जुआ की समान रूप से सेवा कर सकता है। राज्य और सरकार, और ख़ासकर संसद एक ही नहीं होते – जिनके बारे में लेनिन ने स्पष्ट इंगित किया था कि यदि मुख्य शासक वर्ग अपने हित में ज़रूरी समझे तो संसदों को कभी भी भंग कर सकता है। दूसरी ओर, राज्य, सैन्य और नौकरशाहाना शक्ति की एक एकीकृत, ऐतिहासिक रूप से विकसित मशीनरी है, जो वर्चस्वशील सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों और उन पर क़ाबिज़ शासक वर्ग (वर्गों) की सेवा करती है। शोषक वर्गों की मशीनरी को ध्वस्त करने या तोड़ने के बजाय उसे ज्यों का त्यों लिया जा सकता है, या उसका "पुनर्गठन" करके उत्पीड़ित मानवता को मुक्त करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है, यह विचार हर राज्य के वर्ग चरित्र के और ऐसे अनगिनत अनुभवों के वैज्ञानिक समाहार के विपरीत है जहाँ इसका ठीक उल्टा घटित हुआ है : जिन्होंने क्रान्तिकारी आकांक्षाओं से शुरुआत की लेकिन राज्य के बारे में विभ्रमों का शिकार हो गये वे बार-बार उसी उत्पीड़क व्यवस्था द्वारा पचा लिये गये और उसके समर्थकों में तब्दील हो गये और/या उन्हें निर्ममतापूर्वक कुचल दिया गया। मार्च 2008 का आर.सी.पी. का पत्र फ्रांस और इटली में कम्युनिस्ट आन्दोलन के कड़वे अनुभवों की विवेचना करता है, और यह नतीजा निकलता है कि, "जैसे ही बुर्जुआ राज्य संस्थाओं के बुनियादी फ्रेमवर्क को वैध मान लिया जाता है, वैसे ही इस फ्रेमवर्क के **भीतर** अपने हितों पर ज़ोर देने (चुनावी और ग़ैर चुनावी दोनों साधनों से) के लिए सर्वहारा और जनता को संगठित करने के कम्युनिस्टों के प्रयासों का वस्तुगत प्रभाव इन प्रतिक्रियावादी संस्थाओं को ही मज़बूत और पूर्ण

बनाने के रूप में सामने आता है।"

यह अनायास नहीं है कि नेकपा (मा) के नेतृत्व वाली सरकार द्वारा जिन बदलावों की कोशिश की जा रही है उनसे जो संस्था लगभग अछूती रही है वह है नेपाल सेना, यानी वह स्तम्भ जिसपर पुराना राज्य टिका हुआ था। लेकिन जहाँ वर्षों तक भीषण प्रतिक्रान्तिकारी युद्ध चलाने वाली नेपाल सेना जो मानवाधिकार हनन के मामले में दुनिया में सबसे ख़राब सेनाओं में रही है, ज्यों की त्यों क़ायम है वहीं पीएलए को निश्शस्त्र करके लगभग तीन वर्षों से संयुक्त राष्ट्र की निगरानी में बैरकों में रखा गया है और अब नेपाल सेना में एकीकरण की प्रक्रिया के ज़रिये उसके विलोपीकरण का ख़तरा सामने है। अक्सर ही, क्रान्तिकारी विभ्रमों हो जाते रहे हैं, बजाय उस बुनियादी सच्चाई का सामना करने के जिसे माओ ने इतने स्पष्ट और सारगर्भित ढंग से प्रस्तुत किया है : "जनसेना के बिना जनता के पास कुछ भी नहीं होता।" दूसरी ओर, प्रतिक्रियावादी और साम्राज्यवादी राज्यसत्ता के इस बुनियादी प्रश्न पर लौह पकड़ बनाये रखने से कभी नहीं चूकते। जिस तरह नेकपा (मा) लगातार दोनों सेनाओं के बारे में इस तरह बात करती है मानो उनका समान दर्जा हो, उससे इस वास्तविक स्थिति का पता चलता है कि नेपाल सेना में पीएलए के विलय के बजाय, पीएलए में नेपाल सेना के एकीकरण का विचार ही सार्वजनिक विमर्श से गायब है, और काठमाण्डू में सत्ता के गलियारों में इस विचार का जवाब केवल हँसी के रूप में ही सामने आयेगा।

संशोधनवाद के साथ समझौता, जबकि ज़रूरत है निर्णायक विच्छेद की

नेकपा (मा) की चुनाव में जीत की कुछ ही समय बाद की अवधि में बहुत से पार्टी कार्यकर्ता पार्टी की दशा से असन्तुष्ट होने लगे जिनकी संख्या बढ़ने लगी। उन्होंने पार्टी के भीतर संघर्ष छेड़ दिया और पार्टी के कुछ वरिष्ठ लोगों के इर्द-गिर्द एक प्रकार का "विरोध" एकजुट होने लगा जिन्होंने यह आलोचना प्रस्तुत की कि पार्टी काठमाण्डू में संसदीय राजनीति में धँसती जा रही है और क्रान्ति जारी रखने को भूलती जा रही है। उन्होंने और भी कुछ गम्भीर सवाल उठाये।[3] 2008 के मध्य नवम्बर में हुए राष्ट्रीय महाधिवेशन में इस संघर्ष का समाधान हो गया। दुर्भाग्यवश, महाधिवेशन में पार्टी में हावी लाइन से निर्णायक विच्छेद **नहीं** किया गया और उस बुर्जुआ जनवाद तथा सारसंग्रहवाद का न तो खण्डन किया गया और न ख़ारिज किया गया जोकि पार्टी की समग्र लाइन की विशेषता बन गया है और जिसके चलते पार्टी उस दलदल में जा धँसी है जिसने बड़ी संख्या में कार्यकर्ताओं को क्षुब्ध किया है।

बेशक, ऐसा लगता है कि विरोधपक्ष की अधिकांश शक्तियाँ आधे-अधूरे उपायों, मध्यमार्ग (कम्युनिज़्म और संशोधनवाद के बीच समझौते की अवस्थिति तलाशना) और सारसंग्रहवाद की इसी पहुँच में फँसी रह गयीं, और एक निर्णायक संघर्ष के बजाय सारसंग्रहवादी समझौते में उलझकर रह गयीं (यह "दो को एक में मिलाने" का एक क्लासिक उदाहरण है, जिसकी आर.सी.पी. की बहस में विवेचना की गयी है)। नेकपा (मा) के अध्यक्ष प्रचण्ड और विपक्ष के नेता किरण द्वारा प्रस्तुत दोनों आलेखों के बुनियादी बिन्दुओं को एक ही साझा दस्तोवज में संयोजित कर दिया गया। इस साझा दस्तावेज के आधार पर पार्टी गठबन्धन सरकार का नेतृत्व करना जारी रखेगी लेकिन पार्टी का कार्य अब एक तिहरे मोर्चे के ज़रिये आगे बढ़ाया जायेगा जिसमें "सरकार, संविधान सभा और सड़क" शामिल होंगे। (यहाँ तक कि उनके द्वारा प्रस्तावित सरकार का नया नाम – संघीय लोकतान्त्रिक राष्ट्रीय लोकगणराज्य – भी इस संघर्ष के सारसंग्रहवादी समाधान को दर्शाता है।)

यह समझौता दिखाता है कि विरोधपक्ष के अधिकांश विपक्षी नेताओं ने इस बात को कितना कम समझा है कि नेकपा (मा) की वर्तमान समग्र लाइन में क्या ग़लत है। चाहे कोई शब्दों में कितना भी कहे कि "सड़क" मुख्य मोर्चा होगा, जबतक राज्यसत्ता नेपाल के प्रतिक्रियावादी वर्गों और उनके साम्राज्यवादी समर्थकों के हाथों में रहेगी, तबतक नेपाली समाज और देश के भावी विकास का निर्धारण "सड़क" से नहीं बल्कि विश्वस्तर पर और नेपाल में पूँजीवादी-साम्राज्यवादी व्यवस्था की कार्रवाइयों से होगा। इस स्थिति में "सड़क" कभी भी संसदीय राजनीति पर दबाव समूह से अधिक से नहीं हो सकती, जिसे इन अधिक बुनियादी कारकों की कर्रवाइयों के आधार पर आगे बढ़ाया या नियन्त्रित किया जा सकता है और समग्र प्रतिक्रियावादी फ्रे़मवर्क के भीतर कुछ सुधार हासिल करने तक सीमित किया जा सकता है। किसी के पास प्रधानमन्त्री का पद हो, तो भी, जिन नियमों का पालन उसे करना ही होगा, जो समझौते उसे करने होंगे, और जिन हितों की उसे हिफ़ाज़त और सेवा करनी ही पड़ेगी वे "सड़क" को महज़ एक दबाव समूह से अधिक कुछ नहीं बनने देंगे।

नवम्बर 2008 का आर.सी.पी., यू. एस. ए. का पत्र कहता है :

मार्क्सवाद और संशोधनवाद के बीच एक स्पष्ट विभाजक-रेखा खींचने से इनकार करना, और इसके बजाय क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट विचारधारा और राजनीति तथा सीधे-सीधे समर्पण और अवसरवाद के बीच की स्थिति अपनाना मध्यमार्ग और सारसंग्रहवाद की एक विशेषता है। नेपाल में मध्यमार्गी संशोधनवाद का यही रूप उन लोगों से भी ज़्यादा बड़ा खतरा बन गया है जोकि बहुदलीय जनवाद की

विचारधारा से अपने लगाव और पूँजीवाद की महिमा का बेशर्मी से बखान करते हैं। एक घिसापिटा जुमला यह है कि "एक ओर" संशोधनवाद और दक्षिणपन्थ से खतरा है लेकिन साथ ही दूसरीओर "कठमुल्लावाद" का भी ख़तरा है, और इन दो बाधाओं के बीच कुशलतापूर्वक राह बनाते हुए पार्टी ने एक के बाद एक जीत हासिल की है। या फिर, बुनियादी उसूलों, "मार्क्सवाद के ककहरे", जैसे कि मौजूदा राज्यतन्त्र को ध्वस्त करने की ज़रूरत को शब्दों में स्वीकार किया जाता है, जबकि पार्टी की वास्तविक नीति इस लक्ष्य से बिल्कुल विपरीत दिशा में जाती है।

ख़ासकर, बाबूराम भट्टराई नेपाल में पूँजीवादी विकास की लम्बी अवधि की खुली वकालत करते रहे हैं, और पिछले कुछ समय से पार्टी की आम क़तारों के बीच असन्तोष के निशाने पर रहे हैं।[4] लेकिन, ज़्यादा बड़ी बाधा वह सारसंग्रहवाद और अधूरे उपाय हैं जो हाल में पार्टी के अध्यक्ष और उनके इर्द-गिर्द की शक्तियों की लाइन की विशेषता बन गये हैं, जो बार-बार आम क़तारों तथा नेतृत्व के असन्तुष्ट हिस्सों को क्रान्ति को विजय तक ले जाने के पार्टी के इरादों के बारे में ज़ुबानी आश्वासन देते रहे हैं, जबकि भट्टराई द्वारा समर्थित बुनियादी संशोधनवादी लाइन और नीतियों को ही लागू करते रहे हैं। दो के एक में इस "फ़्यूज़न" को "फूटों से बचने" के नाम पर मार्क्सवाद में एक महान योगदान बताया जाता है, लेकिन वास्तव में इसका मतलब होता है बुनियादी तौर पर भिन्न और क्रान्तिकारी लाइन पर पहुँचने के लिए आवश्यक तीखे, निर्णायक संघर्ष और विच्छेद से बचना तथा उन सबको एकजुट करना जिन्हें लाइन के **उस** संघर्ष के ज़रिये एकजुट किया जा सकता है। व्यवहार में यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि इस "फूटों से बचने" और अधिक व्यापक सारसंग्रहवाद का वास्तव में मतलब होता है शोषकवर्गों, उनके राजनीतिक प्रतिनिधियों, और उनकी विचारधारा के साथ एकता के नाम पर सर्वहारा और अन्य उत्पीड़ित जनसमुदायों के बुनियादी हितों को त्याग देना और विश्व सर्वहारा क्रान्ति को आगे बढ़ाने के एक अंग के तौर पर नेपाल में साम्राज्यवाद और प्रतिक्रियावाद को जड़ से उखाड़ फेंकने के सर्वहारा वर्ग के मिशन को बीच में ही छोड़ देना।

ऐसी स्थिति में, ख़ासतौर पर नेकपा (मा) में अब हावी हो चुकी संशोधनवादी लाइन का आवश्यक विरोध निर्मित करने की इच्छा रखने वालों के लिए, इस प्रकार के आधे-अधूरे मध्यमार्ग और सारसंग्रहवाद से निर्णायक विच्छेद करना और भ्रामक एवं वर्गविहीन जनवाद की शब्दावली में निरूपित उस दिशा को छोड़ना ज़रूरी था जिसका अर्थ केवल उस प्रकार का बुर्जुआ जनवाद ही हो सकता था जिसकी तरफ पार्टी बढ़ रही थी। इसके बजाय आधे-अधूरे उपाय

करना और संशोधनवाद तथा सारसंग्रहवाद के साथ एक बार फिर समझौता करने का मतलब है उसी ग़लत दृष्टि को मज़बूती प्रदान करना जिसके कारण पार्टी में विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हुई थी।

ऐसी स्थिति में, जो बीमारी के कारण का निर्णायक ढंग से उपचार करने की माँग करती थी, विरोध पक्ष ने एक बार फिर लक्षणों पर ध्यान सीमित करने तक ही अपनेआप को उलझाये रखा। केवल एक उदाहरण की बात करें, "विरोध पक्ष" पार्टी के संसदीय संशोधनवाद के दलदल मे धँसने की संभावना से विचलित हो गया, लेकिन उसने अप्रैल 2008 की चुनावी विजय को महान सफलता बताना जारी रखा। इसके परिणामस्वरूप नवम्बर का राष्ट्रीय सम्मेलन, अप्रैल 2008 की चुनावी "विजय" की तरह, पार्टी को क्रान्तिकारी रास्ते पर ले जाने का प्रयास नहीं था, बल्कि संशोधनवाद के साथ समझौते का सूचक था जिसने एक बार फिर पार्टी के एक बड़े हिस्से में फूट पड़ने वाले गुस्से और विद्रोह को एक समग्र रूप से गलत लाइन के दायरे में समेट लिया। जैसा कि नवम्बर 2008 के आर.सी.पी., यू.एस.ए. के पत्र में कहा गया है, "हमें कॉमरेडों को याद दिलाना चाहिए कि हर संशोधनवादी पार्टी में एक "वाम" पक्ष हमेशा ही मौजूद होता है जिसकी वस्तुगत भूमिका यह होती है कि वह जनता और क़तारों के असन्तोष को व्यक्त करने का एक ज़रिया देता है, और साथ ही इन हिस्सों को पार्टी नेतृत्व के राजनीतिक कार्यक्रम से बाँधे रखता है।"

पार्टी की राह में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ था इसका और अधिक प्रमाण तुरंत ही प्रकाश में आ गया जब जनवरी 2009 में नेकपा (मा) ने नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी–एकता केन्द्र (मसाल) के साथ एकता की प्रक्रिया पूरी की। नेपाल की कम्युनिस्ट पाटी–एकता केन्द्र (मसाल) जनयुद्ध की शुरुआत से पहले नेपाल के कम्युनिस्ट आन्दोलन में हुई एक फूट का नतीजा थी। वास्तव में, इनके और अन्य संशोधनवादियों से अलग होना जनयुद्ध शुरू करने की तैयारी की प्रक्रिया का एक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहा है। नेकपा (मा) का इन घोर संशोधनवादियों के साथ फिर से एकता करना और इसे "नेपाल के सभी कम्युनिस्टों" को एकीकृत करने की राह में एक बड़ी सफलता घोषित करना भी यह दर्शाता है कि वह जिस जनयुद्ध और क्रान्ति को साकार रूप देती थी और जिसकी अगुवाई कर रही थी उसे उसने प्राचीन इतिहास के अजायबघर में रख दिया है। वास्तव में, जनयुद्ध को अब ज्यादा से ज्यादा एक ऐसी कार्रवाई के रूप में देखा जा रहा है, जिसने भले ही पार्टी को समाज के सबसे ग़रीब हिस्सों में मान्यता प्रदान की लेकिन भविष्य में जिसकी प्रासंगिकता नहीं रह गयी है।

'रेड स्टार' का हाल का एक अंक एक अन्य संकेत देता है कि नेकपा

(मा) द्वारा अपनाया जाने वाला रास्ता उसे किस ओर ले जायेगा। अंक 21 में 'रेड स्टार' के एक रिपोर्टर, रोशन किस्सून का 'निषेध का निषेध' शीर्षक एक लेख छपा जो नेकपा (मा) के सारसंग्रहवाद और संशोधनवाद को और गहराई से प्रदर्शित करता है। किस्सून का लेख अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास को और मार्क्स सहित इसके प्रवर्तकों और नेतृत्वकारी व्यक्तियों के पथप्रदर्शक योगदानों को ही ख़ारिज करता है। किस्सून क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति के बीच लगभग सभी प्रमुख संघर्षों के निष्कर्षों को उलट देते हैं। किस्सून के लेख का परिणाम वास्तव में अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के अनुभव में सभी विभाजक रेखाओं को मिटा देता है – मानो इतिहास के रंगमंच पर सर्वहारा वर्ग के आविर्भाव के बाद से कुछ भी सीखा नहीं गया है, मानो पूँजीवादी शोषकों के पंजों से मुक्त कराकर एक नये विश्व का निर्माण करने में लाखों लोगों के संघर्षों और बलिदानों का कोई हासिल ही न रहा हो।

ऐतिहासिक रूप से और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कम्युनिस्ट आन्दोलन की सफलताओं और इतनी कुर्बानियों से प्राप्त शिक्षाओं के प्रति यह तिरस्कार खुले समर्पण की सेवा करता है, क्योंकि किस्सून का निष्कर्ष यह है कि नेपाल में आज पूँजीवाद का निर्माण करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है, और वह सहमति जताते हुए भट्टराई की एक टिप्पणी को दुहराते हैं कि "हमें कम्युनिज़्म को अपने नाती–पोतों के लिए छोड़ देना चाहिए।" हालांकि, यहाँ मुख्य बात यह है कि आने वाली पीढ़ियाँ तब तक कम्युनिज्म का लक्ष्य हासिल नहीं कर सकतीं जब तक कि क्रान्तिकारियों द्वारा समाजवाद और अन्ततः कम्युनिज्म की तरफ ले जाने वाले शुरुआती लेकिन निर्णायक कदम नहीं उठाये जाते। पूरी ताक़त के साथ पूँजीवाद के रास्ते पर चल पड़ने से कम्युनिज़्म के लिए किया जाने वाला संघर्ष बाधित और कमज़ोर होगा, विशेष तौर पर नेपाल के सन्दर्भ में इसका मतलब होगा जनयुद्ध की प्रक्रिया में हासिल समाजवाद और कम्युनिज़्म के भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने के सुनहरे अवसर को हाथ से निकल जाने देना।

कोई आश्चर्य नहीं कि किस्सून का गुस्सा सबसे तीखे ढंग से बॉब अवाकिएन पर प्रकट होता है, क्योंकि कम्युनिज़्म को अजायबघर में रखने की चीज बनने से बचाने के लिए – और क्रान्तिकारी संघर्ष को कम्युनिज़्म के लक्ष्य की ओर ले जाने में सक्षम वैज्ञानिक दृष्टि और तरीके के रूप में इसे पुनर्निर्मित और सुदृढ़ करने के लिए – अवाकिएन द्वारा किये गये काम इस क़िस्म के संशोधनवादी "संशयवादी यथार्थवाद" के लिए सबसे बड़ा ख़तरा हैं। अभी तक स्वयं नेकपा (मा) ने इस प्रकार का सीधा समर्पणवादी रवैया नहीं अपनाया है लेकिन पार्टी के नेतृत्व वाले अखबार में संशोधनवादियों को विषवमन का मंच

प्रदान करना, जैसा कि उन्होंने किस्सून को दिया है, उस लाइन का द्योतक है जिस पर चलते हुए पार्टी अपनी लाइन में कम्युनिस्ट अन्तर्वस्तु को ख़त्म करने की दिशा में पार्टी को काफी आगे बढ़ चुकी है।

इस संघर्ष के मायने और अभी इसे दुनिया के सामने ले जाने की ज़रूरत

आर.सी.पी. अपने इस आकलन के आधार पर इस बिन्दु पर इन पत्रों को सार्वजनिक कर रही है कि नेपाल में क्रान्ति को बचाने के लिए जो भी करना सम्भव है उसके लिए संघर्ष को आगे बढ़ाने का सबसे अच्छा तरीक़ा क्या होगा, और इस अनुभव से सीखने में दुनियाभर में और लोगों की मदद की जा सके ताकि अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में स्पष्ट होती जा रही अलग–अलग लाइनों की समग्र समझदारी को तीक्ष्ण किया जा सके। यह शब्दों में नरमी बरतने का समय नहीं है: नेपाल में क्रान्ति दलदल में धँसती जा रही है और जब तक इस तबाही तक पहुँचाने वाली विचारधारात्मक और राजनीतिक लाइन का सचेत वह ऊर्जस्वी खण्डन नहीं किया जायेगा तब तक यह "अपनेआप" सही नहीं होगी।

इन पत्रों को सार्वजनिक करने के निर्णय के पीछे आर.सी.पी. इस बुनियादी समझदारी से प्रस्थान कर रही है कि कम्युनिस्ट इस या उस राष्ट्र के प्रतिनिधि नहीं, बल्कि विश्व सर्वहारा के प्रतिनिधि हैं, और उनका लक्ष्य समस्त मानवता की मुक्ति का लक्ष्य है। इस दृष्टिकोण से प्रस्थान करते हुए, कम्युनिस्टों को उन संघर्षों पर विशेष ध्यान देना चाहिए और उन संघर्षों पर राजनीतिक और विचारधारात्मक समर्थन और सहायता केन्द्रित करना चाहिए, जहाँ साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्रान्तिकारी ढंग से आगे बढ़ने के सबसे अधिक अवसर हैं। इसलिए आर.सी.पी. ने नेकपा (मा) के भीतर संशोधनवादी विचारों के विकास को बेहद गम्भीरता और चिन्ता के साथ देखा है, और यह तय करने के लिए काफ़ी मेहनत की है कि नेकपा (मा) के साथ संघर्ष किस तरह चलाया जाये जो कि कम्युनिस्ट उसूलों से संगत हो और जिससे सकारात्मक परिणाम की सबसे अधिक उम्मीद हो।

कुछ आलोचकों ने इस समय तक नेपाल पर आर.सी.पी. की "चुप्पी" के लिए उसकी निन्दा की है। लेकिन कम्युनिस्ट पार्टियों और संगठनों के बीच विचारों का आदान–प्रदान – जिसमें कभी–कभी उसूलों के मसले पर तीखे मतभेद भी शामिल होते हैं – भीषण शत्रुओं के विरुद्ध अत्यधिक जटिल संघर्ष के सन्दर्भ में गठित होते हैं, जिसमें बहुत कुछ दाँव पर लगा होता है; इस बात को

ऐसे हर व्यक्ति को लगातार ध्यान में रखना चाहिए जो इस संघर्ष को आगे बढ़ाने के प्रति गम्भीर है। आर.सी.पी. इस समझदारी के आधार पर चलती रही है कि, "कम्युनिस्टों का काम और उनके नेतृत्व में चलने वाले क्रान्तिकारी संघर्ष केवल प्रत्यक्षत: सम्बन्धित देश में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में जन समुदायों के लिए गहरे महत्त्व का मसला होता है" और मतभेदों को प्रकट करने का काम बड़ी सावधानी के साथ सोच–समझकर किया जाना चाहिए क्योंकि ऐसा करना "आसानी से साम्राज्यवादियों और प्रतिक्रियावादियों को मदद पहुँचा सकता है जो क्रान्तिकारी संघर्षों और हिरावल कम्युनिस्ट शक्तियों को कुचलने व ख़त्म कर देने के लिए अनवरत मौक़ा ढूँढ़ते रहते हैं।" ("'भयावह पूँजीवादी वर्तमान' में फँसे रहना या कम्युनिस्ट भविष्य की राह निकालना, माइक एली के नौ पत्रों का जवाब"*)

अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन पुरज़ोर बहसों और संघर्ष से भरपूर रहना चाहिए, लेकिन यह महज़ डिबेटिंग सोसायटी नहीं है और न इसे ऐसा बनाया जाना चाहिए। जब आर.सी.पी. को पूरी तरह यह यक़ीन हो गया कि नेकपा (मा) जिस घातक राह पर चल रही है उससे हटने के लिए उसके नेतृत्व को राज़ी करना आर.सी.पी. को उपलब्ध रास्तों से मुमकिन नहीं रह गया तभी इस संघर्ष को सार्वजनिक करने का निर्णय लिया गया।

बेशक यह सही है कि नेकपा (मा) ने ख़ुद को एक गहरे गड्ढे में धँसा लिया है, और गहरे धँसती जा रही है। साफ़ तौर पर कहे, तो ऐसी गहराइयों से निकल पाना किसी पार्टी के लिए वाक़ई मुश्किल होता है। लेकिन कम्युनिस्टों द्वारा कठिन बाधाओं का सामना करने और ज़बर्दस्त कठिनाइयों को पार कर अभूतपूर्व नई शुरुआतें किये बिना कम्युनिज़्म तक नहीं पहुँचा जा सकता – और आज इसी की ज़रूरत है। सबसे पहले इस तथ्य को स्वीकार करने की ज़रूरत है कि **समस्या वास्तव में पार्टी की बुनियादी लाइन है।** संशोधनवाद, और मध्यमार्ग व सारसंग्रहवाद तथा वर्गविहीन लोग जनवाद के विभ्रमों को आगे बढ़ाने के कारण पार्टी इस दलदल तक पहुँची है, और इससे एक निर्णायक विच्छेद ज़रूरी है। इसका मतलब है कि सबसे पहले कम्युनिज़्म के बुनियादी उसूलों और लक्ष्यों को फिर से पुष्ट किया जाये, जिसका नेपाल में मतलब होता है – क्रान्तिकारी साधनों के ज़रिये न कि क्रम विकासवादी विभ्रमों और सुधारवादी योजनाओं पर भरोसा करके और उन्हें आगे बढ़ाकर – समाजवाद तथा कम्युनिज़्म

* "Stuck in the 'Awful Capitalist Present' or Forging a Path to the Communist Future, Response to Mike Ely's Nine Letters," revcom.us/a/polemics/NineLettersResponse.pdf

के अन्तिम लक्ष्य की ओर पहले क़दम के तौर पर नव जनवादी क्रान्ति को पूरा करने के संघर्ष को आगे ले जाना।

नेपाल के कॉमरेड इस चुनौती का सामना करने में अकेले नहीं हैं, लेकिन आवश्यक विच्छेद करने के लिए राष्ट्रवाद, अनुभववाद और प्रैगमेटिज़्म के साथ एक निर्णायक विच्छेद करना होगा – और उसकी विशिष्ट अभिव्यक्ति के तौर पर, अपने व्यवहार को, चाहे इसमें एक निश्चित बिन्दु तक जो भी सफलताएँ मिली हों, आलोचनाओं से ऊपर उठाना होगा और अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कम्युनिज़्म के बुनियादी उसूलों पर ढालना होगा, जो कि क्रान्ति के क्षेत्र में और मानवीय चिन्तन व व्यवहार के कई अन्य आयामों में मानवीय व्यवहार तथा संघर्ष की व्यापकश्रृंखला के आसवन तथा वैज्ञानिक संश्लेषण का परिणाम हैं। जैसा कि नवम्बर 2008 का आर.सी.पी. का पत्र कहता है :

यह विश्वास कि नेपाली क्रान्ति के उन्नत व्यवहार ने अन्य कॉमरेडों की उन्नत समझदारी से सीखने को अनावश्यक बना दिया है, उसी प्रैगमेटिज़्म और अनुभववाद का अंग है, जो कि दुर्भाग्यवश, कुछ समय से नेकपा (मा) की विचारधारात्मक दिशा में बढ़ता जा रहा है। नेकपा (मा) के संकट को "उसी की शर्तों पर" हल करने और राष्ट्रवादी या अनुभववादी आधार पर अन्य जगहों पर विकसित हो रही उन्नत क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट समझदारी की अनदेखी या उसका प्रतिरोध करने के प्रयास से सही लाइन के लिए संघर्ष में गम्भीर बाधा आयेगी। ख़ासकर, हम ईमानदारी से आशा करते हैं कि बॉब अवाकिएन द्वारा प्रस्तुत की जा रही कृतियों, पद्धति और पहुँच और नये संश्लेषण पर चिन्तन-मनन करने पर नेकपा (मा) के कॉमरेड गम्भीरता से ध्यान देंगे।

●

आर.सी.पी. यू.एस.ए. और नेकपा (मा) के बीच पोलेमिकल विचार-विनिमय की इस भूमिका और संक्षिप्त परिचय में पत्रों में उठाये गये अनेक महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं में से केवल कुछ को छुआ गया है, जिनमें रणनीति और रणकौशल के सम्बन्ध, नेपाल में क्रान्ति की अन्तरराष्ट्रीय आयाम, बुर्जुआ जनवादी कार्यभारों को पूरा करने से नव जनवाद का सम्बन्ध, समाजवाद के तहत औपचारिक जनवाद की भूमिका, नेकपा (मा) का इतिहास, और बहुत से अन्य बिन्दु शामिल हैं। लेकिन एक बात स्पष्ट है : यह पोलेमिकल विचार-विनिमय पिछले अनेक वर्षों के दौरान अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में हुए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दो लाइनों के संघर्षों में से एक है। ऐसे अन्य बड़े संघर्षों की तरह, इनके बहुत गहरे मायने और दूरगामी निहितार्थ हैं, और वे महत्त्वपूर्ण "क्रान्ति की

पाठशाला" है जिससे नयी पीढ़ी को यह सीखने में मदद मिल सकती है कि क्रान्ति की अपरिहार्य रूप से जटिल प्रक्रिया में क्या कुछ होता है और क्रान्ति को वास्तव में जीत तक ले जाने के लिए क्या ज़रूरी होता है – और इस आधार पर नेपाल में क्रान्ति को बचाने के लिए जो कुछ सम्भव है वह करने में योगदान दे सकते हैं। जैसा कि आर.सी.पी. के मार्च 2008 के पत्र के निष्कर्ष में कहा गया है:

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लड़ाई कम्युनिस्ट परियोजना को बचाने की वृहत्तर प्रक्रिया का एक हिस्सा है। इसे केवल एक ही ढंग से बचाया जा सकता है, यानी इक्कीसवीं सदी में क्रान्ति के विचारधारात्मक और राजनीतिक सवालों का सामना करके, अपने सिद्धान्तों और समझदारियों की बार-बार विवेचना का साहस करके तथा मानवता की समस्याओं का समाधान करने का साहस करके। इस प्रक्रिया में हमारे क़दमों ने पहले हमेशा से अधिक हमें कम्युनिस्ट क्रान्ति की व्यवहार्यता और आवश्यकता के प्रति आश्वस्त बनाया है।

टिप्पणियाँ

[1] नेकपा (मा) ने जनवरी 2009 में संशोधनवादी नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी – एकता केन्द्र (मसाल) के साथ विलय के बाद अपना नाम बदलकर एकीकृत नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) कर लिया है।

[2] हम अपने पाठकों को 'कम्युनिज़्म : दि बिगनिंग ऑफ ए न्यू स्टेज, ए मेनिफेस्टो फ्राम दि रिवोल्यूशनरी कम्युनिस्ट पार्टी, यू.एस.ए.' पढ़ने का सुझाव देंगे जो अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के भीतर प्रमुख राजनीतिक प्रवृत्तियों को कम्युनिस्ट क्रान्ति की समूची पहली लहर के समाहार और एक समूची नयी लहर की शुरुआत करने की ज़रूरत के सन्दर्भ में अवस्थित करता है।

[3] सितम्बर से नवम्बर 2008 में 'रेड स्टार' के अंकों में प्रकाशित कॉमरेड किरण और गौरव के लेखों को देखें।

[4] भट्टराई का तर्क है कि नेपाल में क्रान्ति और आगे बढ़ने से पहले उत्पादक शक्तियों को विकसित करना चाहिए, और केवल पूँजीवाद ऐसा कर सकता है। हालाँकि कुछ लोग उनकी तुलना चीन के देङ सियाओ पिङ से करते हैं, लेकिन यह कहा जा सकता है कि नेपाल में, ऐसी परिस्थितियों में जहाँ चीन के विपरीत, समाजवाद अभी क़ायम भी नहीं हुआ है, "उत्पादक शक्तियों के सिद्धान्त" की बात करना, मार्क्स के इस विडम्बनापूर्ण वाक्य का क्लासिक उदाहरण है, पहली बार त्रासदी, दूसरी बार प्रहसन।

• • •

राहुल
फ़ाउण्डेशन

ISBN 978-93-80303-32-1
मूल्य : रु. 50.00